UNIVERSAL LIBRARY
OU_182814
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 81.09 V34P
Acc No. P.G.H 2358
Author : वासुदेव
Title : पन्त की काव्यचेतना: गुञ्जन

Osmania University Library

smania University Library
RGH
09 Accession No. 2358
54P
ासुदेव
... की काव्यचेतना ! ...
ook should be returned on or before the date last
v.

पढ़ाई छोड़ने का दूसरा कारण यह था कि १९२१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में पन्त महात्मा गांधी के भाषण से इतने अधिक प्रभावित हुये कि इन्हें लेज छोड़ देने पर बाध्य होना पड़ा। यह शुरू से ही जागरुक प्रकृति के वि रहे हैं। गांधी जी का जादू इनके सिर पर चढ़कर बोलने लगा। न्दोलन में उन्होंने स्वयं भाग लिया। गांधी जी के रामवाणी भाषण से ावित होकर पन्त जी ने कालिज तो छोड़ा लेकिन राजनीति में कभी श नहीं किया। राजनीतिक संघर्ष उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं जँचा। तिवादी' संघ के सभापति होने पर भी यह अपने हृदय की जन्मजात र सहजात कोमलता और प्रकृति-प्रेम की अनन्यता को भुला न । पन्त ने अपने जीवन की दिशाएँ तो बदली हैं लेकिन अपना हृदय हीं बदला। उनकी रचनाओं के विषय बदले हैं, लेकिन उपादान नहीं ले। उनकी परिवर्तनशीलता में भावों की उच्छृंखलता नहीं वरन् हृदय सहृदयता और संयम की स्थिरता है। समय-समय पर उन्होंने अपनी ता का रूप बदलने की चेष्टा की है, अवश्य लेकिन हृदय-परिवर्तन रने में उन्हें अपने मन की सहज-प्रवृत्तियों से बेतरह उलझना और संघर्ष करना पड़ा है। अतएव पन्त का कवि-व्यक्तित्व और उनका भाव आज भी वही है जो आज से कई वर्ष पहले था।

सन् १९२९ से १९३० तक का समय पन्त के दुर्दिन का काल । १९२८ ई० में कवि के पिताजी का देहान्त हुआ; साथ ही इन्हे ह-तरह की पारिवारिक तथा मानसिक चिन्ताओं और व्यथाओं का कार होना पड़ा। नौबत यहाँ तक आई कि वह स्वयं बीमार पड़ गये। का जीवन मृत्यु और जीवन के बीच घड़ी के पेण्डुलम की तरह ायमान हो उठा। इस घोर रुग्णता ने कवि के मन और मस्तिष्क को ी तरह झकझोर दिया। आग में सोने को तपाने से जिस तरह उसकी क में निखार आता है उसी तरह घोर लम्बी बीमारी की अग्नि में ी तरह दहकने के बाद कवि के मानस-क्षितिज पर नयी आशा की

किरण फूटी। प्रकाश की ये नई किरणें गुंजन के नीलाकाश पर विकीर्ण हो उठीं। प्रकृति का कवि मानवता का पुजारी हो गया।

१९३१ ई० में पन्त के अच्छे दिन फिर लौटे। १९३१ से १९३४ तक यह कालाकाँकर के उदारमना कुँवर सुरेश सिंह के साथ रहे। कुँवर साहब ने कवि को सब तरह की सुविधाएँ दीं। कुँवर साहब के एहसान का बदला चुकाने के लिये 'गुंजन' की प्रसिद्ध कविता 'बिहार' में पन्त जी ने कालाकाँकर के राजभवन को इन पंक्तियों अमर बना दिया है —

'कालाकाँकर का राज भवन सोया जल में निश्चिंत प्रमन,
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।'

इन्हीं दिनों पन्तजी ने कुछ दिनों तक 'रूपाभ' मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। कहा जाता है कि हिन्दी में इस पत्रिका ने एक नई दिशा को जन्म दिया। मद्रास में रहकर उन्होंने प्रसिद्ध नृत्यकार उदय शंकर भट्ट के प्रसिद्ध चित्र 'कल्पना' को सफल और कलात्मक बनाने में पूरा सहयोग दिया। कुछ रोज हुये पत्रों से यह सुखद समाचार मिला। है कि भारत-सरकार ने पन्त जी को उत्तर-भारत में स्थित समस्त रेडियो स्टेशनों के कार्य-क्रमों का संचालन और निर्देशन करने का भार सुप कर दिया है।

पन्त का व्यक्तित्व——पन्त के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुये श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी ने बताया है कि "पन्त का व्यक्तित्व-पूर्ण संस्कृ तथा शालीन है। उनका संगीतमय सुमधुरस्वर, निर्विकार दृष्टि-निक्षे सौजन्य, विनम्र और निश्छल वार्तालाप, चिर मोह के प्रबल बंधन दो श्रेष्ठ गुण पूर्ण मनुष्यत्व के हैं—आत्मविश्वास और निरभिम साथ ही वे दूसरों के स्वाभिमान का सम्मान करते हैं। यही नहीं, अन्तर्भेदिनी दृष्टि में व्यक्तियों के अन्तस्तल तक पहुँचने की

क्षमता है। कवि के साथ ही ये सुललित गायक और मनोहर वाद्यकार भी हैं।"[१] इसके अतिरिक्त श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ ने अपनी पुस्तक, 'आधुनिक' कवियों की काव्य-साधना' में पन्त के उन्नत व्यक्तित्व का शाब्द-चित्र इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है—"हिन्दी-काव्य के उन्नायकों में पन्त का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। उनके रेशम से कोमल कुंचित केश, उनका प्रशस्त ललाट उनकी चमकती हुई आँखें, उनका सुगठित शरीर जहाँ हमें उनके शारीरिक सौन्दर्य का परिचय देता है वहाँ उनकी वेश-भूषा, उनकी रहन-सहन, उनकी चालढाल से हमें उनके आन्तरिक्त सोन्दर्य का, उनकी कला-प्रियता का भी आभास मिल जाता है। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कला-प्रेमी हैं। प्रकृति सुन्दरी की गोद में जन्म लेने के कारण उन्हें प्रकृति से विशेष प्रेम है और यही प्रेम उनकी काव्य-प्रेरणा का रहस्य है। उनमें जो शालीनता, चिन्तनशालीनता, सौम्यता, दार्शनिकता, कल्पनाशीलता और उदारता है वह भी उनके प्रकृति-प्रेम के ही कारण है। उनके प्रकृति-प्रेम ने उनमें जहाँ एक ओर इन विशेषताओं को प्रतिष्ठापित किया है, वहाँ दूसरी ओर उसने उन्हें जन-भीरु भी बना दिया है। यही कारण है जन समूह से अब भी वह दूर रहते हैं।

"पन्त के व्यक्तित्व की एक यह भी विशेषता है कि उनका अन्तः-व्यक्तित्व जितना कोलाहलपूर्ण और गंभीर है उतना ही उनका बहिर्व्यक्तित्व उल्लासपूर्ण है। ...पन्त का व्यक्तित्व असामान्य है। उनका अंतरंग और बहिरंग दोनों सुन्दर हैं। उनमें भावना का सौकुमार्य साधारण व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसलिये वह जीवन के संघर्ष में जमकर खड़े नहीं हो सकते। उनका अब तक अविवाहित रहना, आजीविका की ओर से उदासीन रहना, कभी स्थायी रूप से कहीं न रहना,

---

[१] हमारे साहित्य निर्माता पृ०, १६०

आदि ऐसी बातें हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वह अपने जीवन में किसी प्रकार का संघर्ष सहन नहीं कर पाते। जीवन की बहुरंगी कठिनाइयों से वह उसी प्रकार भागते हैं जिस प्रकार एक साधक; और वस्तुतः वह एक साधक हैं। जीवन का एकाकीपन उनकी साधना में सहायक हुआ है। अतएव, वह निरंतर एकान्त एवं अन्तर्मुखी होती गयी है। इस प्रकार उनका समस्त जीवन ही एक पलायन, एक स्केप है और यही पलायन-वृत्ति उनकी सौन्दर्य-साधना की जननी है। पलायन का मूल है अपने में वर्तमान विषमताओं के समाधान की शक्ति का अभाव देखना। इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य जब अपने में वर्तमान विषमताओं का समाधान नहीं कर पाता और उनसे मानसिक पराजय स्वीकार कर लेता है तब वह पलायनशील हो जाता है। पन्त हिन्दी के पलायनशील कवि हैं और वस्तुतः इसी पलायनशीलता ने उनके व्यक्तित्व का निर्माण किया है।" इसी पलायन-वृत्ति के कारण पन्त अपने काव्य-जीवन में केवल सौन्दर्य और प्रेम के ही अनन्य पुजारी बने रहे।

महाकवि पन्त के व्यक्तित्व का निर्माण गंभीर चिन्तन,-संयत-मनन और व्यापक अध्ययन के बल पर हुआ है। भारतीय दर्शन तथा उपनिषदों के अध्ययन ने कवि को जीवन का गंभीर चिन्तक बना दिया है। चिन्तना पन्त के व्यक्तित्व की अमूल्य निधि है।

पन्त पर वाह्य प्रभाव—संसार के महान कवियों के हिरंग और अंतरंग जीवन पर वाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता ही है। उसके दार्शनिक विश्वासों, सामाजिक मान्यताएँ तथा साहित्यिक विचारधाराओं पर प्राचीन और नवीन विश्वासों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। बचपन से ही पंत के बाल सुलभ कोमल हृदय पर बाहरी दुनिया के स्वच्छंद वातावरण का अमिट प्रभाव पड़ता रहा है। पंत अपनी साहित्य-साधना में कई बातों से बहुत अधिक प्रभावित हुये हैं—

(१) **प्राकृतिक सौन्दर्य**—मैं कह आया हूँ कि पंत का पालन-पोषण प्राकृतिक सुषमा की गोद में हुआ था। ऐसी हालत में प्रकृति के वाह्यरूपों का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। पंत अपने को इससे बचा न सके। जिस तरह अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के कोमल मन पर प्रकृति के वाह्यरुप, सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा था, उसी तरह पंत के कोमल हृदय के तारों को झंकृत करने में प्रकृति बहुत सहायक हुई। अल्मोड़े के अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि पंत का जन्म दिया। ये कहीं भी हों, प्रकृति की रमणीय सुषमा को कभी नहीं भूलते। इसके सिलसिले में उन्होंने 'आधुनिक कवि' संख्या २ के पर्यालोचन में लिखा है "कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिनका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूमाचल-प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, घंटों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।···और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना पर्वत की ही तरह, निश्चय रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन-भीरू भी बना दिया। यही कारण है कि जन-समूह से अब भी मैं भागता हूँ।" 'गुंजन' में कवि ने उस प्रभाव को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है।

(२) **अध्ययन और अनुशीलन**—मैं कह चुका हूँ पन्त शुरु से ही अध्ययनशील और मननशील कवि रहे हैं। भारतीय दर्शन तथा उपनिषदों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था जिसके परिणाम स्वरूप उनकी भावनाएँ क्रमशः परिपक्व होती गयीं। अपने युग के दार्शनिकों से प्रभावित होने के कारण उनकी भावधारायें गतिशील होती गयीं हैं।

पन्त ने आधुनिक कवि, भाग २ में लिखा है कि "स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्यन से, प्रकृति-प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई।" युग के इन दार्शनिकों ने पंत के दार्शनिक विचारों को पुष्ट बनाया और फिर ये अपना एक दर्शन स्थिर कर सके। पन्त के दर्शन का दृढ़, निश्चित और स्थिर रूप हम 'गुंजन' में पाते हैं। कहने का मतलब यह है कि दर्शन के क्षेत्र में इस कवि को स्वामी विवेकानन्द तथा रामतीर्थ के वैदांतिक सिद्धान्तों ने बहुत अधिक प्रभावित किया। अलमोड़े में स्वामी विवेकानन्द के आगमन पर पंत ने अपनी 'कविते- माँ' से एक प्रश्न किया था—

'माँ, अलमोड़े में आये थे,
जब राजर्षि विवेकानन्द,
तब मग में मखमल बिछवाया,
दीपावलि की विपुल अमन्द,
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि! नहीं चल सकते हैं?'

यह उन दिनों की बात है जब पन्त की उमर सिर्फ १८ साल थी। भारत के इतिहास में वह युग जागरण और सुधार का काल था—पंत को संक्रांति-युग की विचार धारा का वाहक बनना पड़ा है। स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस के दार्शनिक विश्वासों ने पन्त के व्यक्तित्व को कसकर झकझोरा। कवि की भावनायें पुराने-विचारों से टकराने लगीं। उसके विशृंखल तथा दोलायमान विचारों को एकता और दृढ़ता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न डा० रवीन्द्र-नाथ ठाकुर तथा महात्मा गांधी के सम्मिलित प्रभाव ने किया। रामकृष्ण और विवेकनन्द ने यदि पन्त में सांस्कृतिक चेतना भरी तो रवि बाबू और गांधी के प्रभाव ने व्यक्ति-जीवन की भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बीच सामंजस्य स्थापित

किया। कवि व्यक्तिगत आशा-निराशा के कुहासे से निकल कर विश्व-चेतना की समतल भूमि पर आ खड़ा हुआ। उसकी चेतना व्यापक हो उठी। १९३२ ई० तक पन्त की भाव-भंगिमा तथा जीवन और जगत को देखने का दृष्टिकोण सामान्यतः बदल चुका था। इस समन्यात्मक विश्वासों की भाव-भूमि पर खड़े होकर पंत ने 'गुञ्जन' की रचना की।

(३) **युग की समस्या**—अध्ययन और अनुशीलन के अतिरिक्त पंत युग की प्रगति और उसको बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियों से भी प्रभावित हुए हैं। मैं कह आया हूँ कि गांधीवाद से प्रभावित होने के पहले पंत को स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के दार्शनिक विचारों से अत्यधिक प्रेरणा मिली थी। उनके वैदान्तिक सिद्धांतों का प्रभाव 'पल्लव' की कविताओं पर स्पष्ट दीख पड़ता है। फिर क्रमशः वे गांधीवाद और समाजवाद की ओर झुके। सच तो यह है 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक की समस्त रचनाओं में पन्त के बदलते हुए विचारों का निदर्शन पाया जाता है। कवि ने अपने परिवर्तित विश्वासों को कविता की प्रयोगशाला में व्यावहारिक रूप देने की चेष्ठा की है। पन्त किसी भी 'वाद' विशेष के दायरे में बँध कर नहीं रहे हैं। इसीलिए उनकी प्रगति स्वच्छंद स्वाभाविक और उन्मुक्त सिद्ध हुई है। ये न तो गांधीवाद की सम्पूर्णता में विश्वास रखते हैं और न तो समाजवाद की इकाई में। अतएव, उन्होंने दोनों वादों को एक रूप देने की आवश्यकता महसूस की। उनके मतानुसार—

'मनुष्यत्व का तत्व दिखाता निश्चय हमको गांधीवाद;
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।'

इस तरह पंत की अब तक की रचनाओं में न तो विशुद्ध गांधीवाद है और न विशुद्ध समाजवाद। इन दोनों का सुन्दर समन्वय इनमें हुआ है। पन्त ने स्वयं लिखा है कि "मैं, अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धातों से प्रभावित हुआ हूँ।...ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय

आध्यात्मा दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है।"[१]

(४) **देशी-विदेशी साहित्य का सौन्दर्य-बोध**— कवि पंत के निर्माण में १९वीं शताब्दी के अंग्रेज कवियों—शेली, वड्र्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन तथा भारतीय कवियों में कालिदास और रविबाबू के साहित्य ने पर्याप्त सहयोग दिया है। इस प्रभाव से प्रभावित होकर कवि में सौन्दर्य-चेतना जगी। १९वीं शताब्दी में यूरोप के साहित्य में सौन्दर्य के नाम पर जिस कलावाद का चलन चल पड़ा था उसका प्रारम्भ हिन्दी साहित्य में पन्त द्वारा हुआ। उनकी रचनाओं में सौन्दर्य की अच्छी झाँकी दी गई है। सौन्दर्य-चयन पन्त की कविता का एक प्रधान गुण है। 'गुञ्जन' तक की रचनाओं में कवि की सौन्दर्य-चेतना काफ़ी सजग मालूम पड़ती है। इन देशी-विदेशी कवियों के प्रभाव का आभार स्वीकार करते हुए पन्त ने लिखा है कि "पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वड्र्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीनयुग की, सौन्दर्य-कल्पना ही में परिधानित किया है।...इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।"[२] इन पंक्तियों में पन्त ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इन देशी-विदेशी कवियों से वे 'पल्लव-काल' में ही प्रभावित हुये थे। सच तो यह है कि 'गुञ्जन' तक की रचनाओं पर उपर्युक्त कवियों का प्रभाव पाया जाता है। जिन दिनों पन्त काशी में पढ़ते थे उन दिनों उन्होंने बंगला का थोड़ा-बहुत

---

[१] आधुनिक कवि भाग २ पृ० २४-२५

[२] वही पृ० १३.

अध्ययन अवश्य किया था। रविबाबू की 'चयनिका' तथा, 'गीताँजलि' की कविताओं का रस वे अच्छी तरह ले चुके थे। 'मम जीवन की प्रमुदित प्रात' गीत पर रविबाबू के 'अन्तर मम विकसित कर' की छाया है। पन्त के प्रार्थनापरक गीतों पर 'गीतांजलि' का प्रभाव पड़ा है। निराला जी ने अपनी पुस्तक 'प्रबंध-पद्य' में पंत की कुछ कविताओं की पंक्तियों की पंखुड़ियों को खोल-खोल कर यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि 'पन्त चौरकला में निगुण हैं।' उन्होंने यह दिखलाया है कि 'पन्त की कविता में मौलिकता का अभाव है; उन्होंने बहुत-सी-पंक्तियों को रवि बाबू की कविताओं से ज्यों-की-त्यों उठा लिया है। उदाहरण में निराला जी ने 'गुञ्जन' की इन पंक्तियों को उद्धृत किया है—

अरे यह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु- उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
मधुरता में-सी भरी अजान,
लाज की छुई-मुई सी म्लान;
प्रिय, प्राणों की प्राण!

—[*गुञ्जन, गीत, १६, पृ०, ४३*]

× × ×

द्विधाय जड़ित पदे कंप्रवदो नम्रनेत्र पाते,[१]
स्मित हास्ये नहीं चल सलज्जित वासरशय्याते स्तब्ध अर्द्धराते।

—*रविबाबू 'उर्वशी में'*

पन्त ने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठा० के प्रभाव को नम्रतापूर्वक स्वीकार

[१] 'प्रबन्ध-पद्य'—निराला, पृ० ७७.

किया है लेकिन यह कहना असंगत और उचित नहीं जँचता, जैसा कि निराला जी ने कहा है कि 'पन्त चौर-कला में निपुण हैं' क्योंकि जिन पंक्तियों में कवि ने रवि बाबू के भावों को अभिव्यंजित किया है, वे शतशः मौलिक मालूम होते हैं। डा० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि "निराला जी की भाँति इधर-उधर से पंक्तियाँ एकत्रित कर उनकी आलोचना करने का कोई अर्थ नहीं।"[१] पंत ने महाकवियों की भावनाओं के प्रभाव को 'Unconscious-Conscious Process' कहा है। 'गुंजन' के बाद कवि की भाव धारा स्वच्छंद होकर अग्रसर हुई।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि कवि पंत के निर्माण-काल में में अध्ययन, मनन, अनुशीलन तथा चिन्तन का पूरा हाथ रहा है।

'गुञ्जन' तक की लगभग समस्त रचनाओं पर जितना प्रभाव १९वीं शताब्दी के अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों का पड़ा उतना किसी भी देशी कवि पर न पड़ सका। इसका कारण यह था कि प्रयाग में कालेज जीवन आरंभ करते ही वे अपने कालेज के अंग्रेजी-प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय के सम्पर्क में आये जिनके प्रोत्साहन और प्रेरणा से पन्त ने अंग्रेजी के १९वीं सदी के साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। 'वीणा' और 'ग्रंथि' पर संस्कृत कवि कालिदास और रवि बाबू की अमिट छाप पड़ी है। इसके बाद की रचनाओं—'पल्लव,' 'गुञ्जन'! 'ज्योत्सना' और 'पाँच कहानियाँ' पर अंग्रेजी के रोमान्टिक साहित्य पर अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा। इस सिलसिले में डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि "जिन दिनों पंतजी प्रयाग-विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, वहाँ के अँग्रेजी वातावरण ने उनको पश्चिमी कवियों की ओर आकृष्ट किया। अब पन्तजी पर रोमान्टिक कवि शेली, कीट्स और विक्टोरियन कवि टेनीसन का प्रभाव स्पष्ट रूप में पड़ा। उन पर सबसे अधिक ऋण कविवर शेली का है—भारत के अन्य कवियों पर भी—जैसे डा० टैगोर, श्रीमती सरोजनी नायडू,

---

[१] सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८२. [२] वही. ५. ८४-८५.

श्रीमती महादेवी वर्मा आदि पर उसका प्रभाव सर्वाधिक है क्योंकि उसका आदर्शवाद और रंगीन कल्पना भारतीय हृदय के अनुकूल है। पन्तजी में प्रारंभ से ही एक प्लैटोनिज्म (Platonism) के दर्शन होते हैं, जो 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानियाँ में आकर अधिक परिपुष्ट हो गया है। यह प्लैटोनिज्म, अगर मैं भूल नहीं करता, उनको शेली से ही प्राप्त हुआ है।—कुछ कविताओं पर शेली का स्पष्ट प्रभाव है—पन्त के 'बादल' को शेली के 'cloud' से प्रेरणा मिली है। उन दोनों की प्रथम पुरुष वाली, प्रवाह और कहीं-कहीं भाव और शब्दावली भी एक-सी है। फिर भी पन्तजी ने 'बादल' में शेली (Shelley) के 'cloud' के विरुद्ध ही अपना दृष्टिकोण रखा है।" [1]

शेली के बाद दूसरे अंग्रेजी कवि कीट्स (Keats) हैं जिन्होंने पन्त की सौन्दर्य-वृत्ति पर अपनी छाप छोड़ी। 'ज्योत्सना' 'इन्दु' के चित्रों में तथा 'गुञ्जन' की प्रसिद्ध कविता 'भावी पत्नी के प्रति' में कीट्स के ऐन्द्रिक और मादक सौन्दर्य का दर्शन होता है। पन्त की सहज सौन्दर्य-प्रियता को कीट्स की कविता से थोड़ा-बहुत सहारा अवश्य मिला है! 'पल्लव के बाद की कविताओं पर विक्टोरियन कवि टेनीसन की स्वर-साधना का प्रभाव अधिक स्पष्ट मालूम होता है। 'गुञ्जन' की प्रसिद्ध कविता 'नौका-विहार' में टेनीसन की-सी घुलती हुई स्वर-मिश्री का माधुर्य है। साथ ही उनमें विक्टोरियन युग के इस मस्तिष्क-प्रधान कवि का-सा ठंडापन भी मिलता है। इसके अतिरिक्त, पन्त की प्रकृति-कविताओं पर वर्ड्सवर्थ का स्फुट प्रभाव दीख पड़ता है।"

अतीत के सिद्ध महाकवियों और वर्तमान के लोक-प्रिय कवियों की रचनाओं से कोई भी सजग कवि प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता, यह

---

[1] वही—५. ८४. ८५,

बिलकुल स्वभाविक बात है। जब तक पन्त कालेज में पढ़ते रहे तब तक वे देशी-विदेशी कवियों की प्रभाव-प्रेरणा ग्रहण करते रहे, लेकिन कालेज से अलग होने पर उनका अध्ययन, उनका चिन्तन इतना गंभीर हो चुका था कि फिर उन्हें किसी प्रकार की वाह्य प्रेरणा की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। सच तो यह है कि वाह्य प्रभाव ग्रहण करते रहने पर भी पन्त की प्रतिभा तथा मौलिकता को कभी ठेस न लगी। उन्होंने कहीं भी भाव को बिगाड़ा नहीं। वे सच्चे अर्थ में भारतीय कवि हैं। इनकी रचनाओं में भारत की आत्मा मुखरित हुई है।

पंत की रचनाएँ—पंत का कवि-जीवन उस समय से आरंभ होता है जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ते थे। "यों तो पन्त सन् १९१५-१६ से ही कविताएँ लिखने लगे थे। इस समय उनकी उमर सिर्फ १५-१६ वर्ष की थी। उस समय की कविताएँ अल्मोड़े से प्रकाशित होने वाली हस्तलिखित और मुद्रित पत्र-पत्रिकाओं में (यदि वे सुरक्षित मिल सकें तो) देखी जा सकती हैं। बाल-क्रीड़ावश लिखी गयी वे कविताएँ, नवयुग के उस उत्कृष्ट युवक कवि की भाषा और भावना के सुरुचिपूर्ण-विकास के अध्ययन के लिये अच्छी सामग्री बन सकती हैं। प्रकाश्य रूप से 'सरस्वती' के गंभीर पृष्ठों पर पन्त जी का प्रथम कवि-दर्शन सन् १९१९ ई० में हुआ। उन दिनों पूज्यचरण द्विवेदीजी ही उसके सम्पादक थे। उन्होंने ही नवीन युग के इस नवीन कवि की 'स्वप्न' शीर्षक कविता प्रथम बार छापी थी। उसके बाद, सन् १९२३-२४ से हिन्दी-संसार को कवि की ज्योतिर्मयी प्रतिभा के दर्शन अनवरत रूप से मिलते जा रहे हैं।[1] पन्त की रचनाओं की बहुत बड़ी विशेषता इस बात में है कि ज्यों-ज्यों कवि की विचार धाराएँ बदलती गयीं त्यों-त्यों उनकी भावनाओं का विकास भी होता गया। क्षण-क्षण परिवर्तनशीलता पन्त की रचनाओं का भारी गुण है। इससे कुछ लोगों को शंका होने लगती है कि क्या 'नवयुग' के इस कवि की विचार-

[1] हमारे साहित्य निर्माता, पृ० १७५

धारा का सीधा विकास हुआ या यह कहीं इधर-उधर भटका है। इसके सम्बन्ध में हम आगे चल कर विचार करेंगे। पन्त की रचनाओं की तालिका इस प्रकार है—

कविता— १. वीणा (१९१८-१९)—काव्य
२. ग्रंथि (१९२०) — ,,
३. पल्लव (१९२६) — ,,
४. गुञ्जन (१९३२) — ,,
५. ज्योत्स्ना (१९३३) — नाट्य-रूपक
६. पाँच कहानियाँ (१९३६) कहानियाँ
७. युगान्त — (१९३६) काव्य
८. युगवाणी — (१९३९) ,,
९. ग्राम्या — (१९४०) ,,
१०. आधुनिक कवि, भाग २ (१९४१) काव्य-संग्रह
११. स्वर्णकिरण काव्य
१२. स्वर्ण धूलि ,,
१३ मधुज्वाल ,,
१४. युग-पथ ,,
१५. उत्तरा ,,

उपन्यास—हार

नाटक—परी, क्रीड़ा, रानी, ज्योत्स्ना

अनुवाद—उमर खैयाम की रूबाइयों का हिन्दी में अनुवाद।

———

पन्त की प्रगति

"पन्त के कवित्व की प्रगति-रेखा चाहे टेढ़ी-मेढ़ी हो, पर उनके विचार का विकास सीधा और स्पष्ट है।"

—डा० नगेन्द्र

पन्त मननशील और अध्ययनशील होने के साथ ही गतिशील और परिवर्तनशील भी हैं। विचारों की परिवर्तनशीलता उनकी कविता का एक भारी गुण है। हिंदी के अन्य छायावादी कवियों की प्रतिभा और व्यक्तित्व गत्यात्मक न होकर स्थिर है। इस परिवर्तनशीलता ने पंत को काव्य-जीवन के अनेक मोड़ों (Covners) पर ला छोड़ा है। जहाँ छायावाद के अन्य कवियों—महादेवी, प्रसाद, निराला आदि—की कविता एक निश्चित सीमा पर पहुँच कर स्थिर हो जाती है, वहाँ छायावाद के प्रतिनिधि कवि पन्त सदैव प्रगतिशील बने रहे। उनके काव्य में गति है, प्रगति है और है विकास की स्पष्ट रेखाएँ। प्रसाद जी ने स्वर्ग के खँडहरों में अपने को सदैव उलझाये रखा; निराला ने अद्वैत की दार्शनिकता में अपने दृष्टिकोण को सीमित बनाये रखा; महादेवी तथा रामकुमार वर्मा ने दुःखवाद के दर्शन में ही अपनी कला की इति-श्री समझ ली। पन्त इन कवियों की अपेक्षा अधिक गतिशील और विकाशशील हैं। वे आज भी प्रगति के पथ पर बढ़ते चले जा रहे हैं। लेकिन 'युग-पथ' में उन्होंने अपने लिये एक स्थिर नीड़ बना लिया है, ऐसा जान पड़ता है। किसी भी कवि के काव्य-जीवन में उसके उत्कर्ष-अपकर्ष, उत्थान-पतन का पाया जाना स्वाभाविक बात है। महाकवियों के उच्चतम व्यक्तित्वों का निर्माण होने में कुछ

समय की अपेक्षा होती है। कवि के विचार जब तक प्रौढ़ नहीं होते तब तक वह इधर-उधर चक्कर काटता फिरता है, प्रौढ़ता आने पर स्थिरता और गंभीरता आती है। संसार की महान विभूतियों के व्यक्तित्व का विकास क्रमशः हुआ है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। पन्त कभी पलायनवादी थे, फिर रहस्यवादी हुये। रहस्यवादी पंत ने आत्मवादी पन्त को जन्म दिया और आत्मवाद ने प्रगतिवादी पन्त की रचना की। आज वे समन्वय की ओर उन्मुख हैं। इस प्रकार की विकासशीलता कवि के भावों की उच्छृंखलता नहीं, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं, वरन् यह उनकी व्यक्तिगत भावानुभूति के क्रमिक विकास और उत्थान का एक मनोवैज्ञानिक इतिहास है। पन्त ने अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ से लेकः आज तक अपने व्यक्तिगत मोह से ऊपर उठकर सार्वभौम मानवता के क्षितिज को छूने का सक्रिय प्रयास किया है। कवि पहले भावुक था, फिर चिन्तनशील हुआ और आज वह विवेकशील है। यहाँ हम कविवर पन्त की प्रगति का अध्ययन उनकी रचनाओं को भिन्न-भिन्न युगों में रखकर प्रस्तुत करेंगे। तभी हम उनके ऊँचे व्यक्तित्व के विकसित पहलू को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

यदि पन्त की समस्त रचनाओं को ध्यान में रखें तो अपनी सुविधा के लिये हम उनके समग्र साहित्य को तीन युगों या वर्गों में बाँट सकते हैं। कवि की बदलती हुई विचारधाराएँ तीन युगों से होकर गुजरी हैं। 'वीणा से गुंजन' तक की रचनाएँ कवि की विचारधाराओं का पहला युग स्थिर करती हैं। 'ज्योत्स्ना' से 'ग्राम्या' तक का समय दूसरे युग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। तीसरा युग स्वर्ग-किरण' से 'युग-पथ' तक का है। कुछ लोग पन्त की समस्त रचनाओं को दो कालों में बाँटते हैं। 'हमारे कवि' के लेखक श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ के कथनानुसार "उनके (पंत के) काव्य-जगत में दो धाराओं का

सन्निवेश हो गया है—एक में उनके कवि-हृदय का स्पन्दन है, दूसरी में विश्व-जीवन की धड़कन। सन् १९१८ से १९३२ तक की उनकी रचनाएँ पहली धारा के अन्तर्गत आती हैं और इसके बाद की रचनाएँ दूसरी धारा में।"[१] डा० नगेन्द्र ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पन्त' में 'ग्राम्या' तक की समस्त रचनाओं का क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुये यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि पन्त की प्रत्येक रचना में उनका स्वर बदल गया है। यह बिलकुल सही बात है कि उनकी प्रत्येक काव्य-पुस्तक में किसी-न-किसी प्रकार का भावों की दिशा का परिवर्तन हुआ है लेकिन किसी कवि की समस्त रचनाओं का सामूहिक अध्ययन करने के लिये कवि के उन्हीं भावों तथा विचारों पर ध्यान देना पड़ता है जिनसे यह प्रकट हो कि उसके जीवन और काव्य में महान परिवर्तन की क्रांति हुई है। क्रांति में भावों का विस्फोट होता है, प्रस्फुटन नहीं होता। पंत के व्यक्तित्व में समय-समय पर इसी के आत्मिक भावों का विस्फोट होता रहा है और यह विस्फोट उनके महान् विचारों की परिवर्तनशीलता का परिचायक है। उनके आज के कवि रूप और २०-२५ साल पहले के रूप में काफी अन्तर हो गया है। समय बदलते रहने के साथ-साथ मनुष्य भी बदल जाता है। निस्संदेह पंत के विचार भी बदले हैं लेकिन उनकी पावन आत्मा आज भी ज्यों-की-त्यों शुद्ध-प्रबुद्ध है। यहाँ हम उपरिकथित कवि के तीन युगों की विशेषताओं का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करने का उपक्रम करेंगे।

प्रथम युग–[वीणा-गुंजन काल १९१८-३२]—इस युग की विकास-अवधि १२-१४ वर्षों की है। इस काल में कवि ने अपनी कविता-कामिनी को निम्नलिखित आभूषणों से सुसज्जित किया—

---

[१] हमारे कवि पृ० २४६

(१) इस युग की प्रायः सारी रचनाएँ रवि बाबू की 'गीतांजलि', संस्कृत-कवि कालिदास तथा अंग्रेजी के प्रधान रोमान्टिक कवियों, जैसे, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली, टेनीसन आदि से प्रभावित हैं। इस प्रकार का प्रभाव कवि के व्यापक अध्ययन और मनन का परिचय देता है। 'वीणा' की कविताओं पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है। 'गुंजन' की कविता 'अप्सरा' पर रविबाबू की 'उर्वशी' की छाया है। 'ग्रंथि' की कविताओं पर संस्कृत कवियों का ऋण है।

(२) इस युग की अधिकांश कविताएँ प्रकृति-वर्णन से भरी-पुरी हैं। कवि में प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य के प्रति अपूर्व तल्लीनता के भाव हैं। प्रकृति के व्यापारों द्वारा मानसिक व्यापारों की बड़ी रमणीय व्यंजना हुई है।

उदाहरणार्थ—

तड़ित-सा ! सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान,
प्रभा के पलक मार उर चीर
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर।
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण,
खोजते हैं तब तुम्हें निदान।

प्रकृति के प्रति इतनी तल्लीनता है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के सामने नारी सौन्दर्य की ममता कोई महत्व नहीं-रखती यथा,

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

इस काल की प्रकृति-संबंधिनी श्रेष्ठ कविताएँ ये हैं—पर्वत प्रदेश पर पावस' (पल्लव), 'बादल' (पल्लव), 'नौका-विहार' (गुञ्जन),

चाँदनी (गुञ्जन) आदि। इनमें प्रकृति का स्वतंत्र, स्वच्छंद और उन्मुक्त चित्रण हुआ है।

(३) इस काल की बहुत-सी कविताएँ रहस्यवाद की भावनाओं से समन्वित हैं। शुक्ल जी के शब्दों में पंत की रहस्य-भावना स्वाभाविक पथ पर चली है। यथा,

दूर उन खेतों के उस पार
जहाँ तक गयी नील झंकार
छिपा छायावन में सुकुमार
स्वर्ग की परियों का संसार।

—गुञ्जन

'मौन-निमंत्रण' में कवि की रहस्य साधना अधिक गूढ़ हो उठी है—

न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमंत्रण देता मुझको मौन!

× × ×

न जाने, तपक तड़ित में कौन,
मुझे इंगित करता तब मौन!

(४) इस काल की कविताएँ कवि की पलायन-वृत्ति की सूचक हैं। पन्त की पलायन वादिता तीन रूपों में व्यक्त हुई है—

(क) एकान्त सौन्दर्य साधन में
एक वीणा की मृदु झंकार,
वहाँ है सुन्दरता का पार।
(ख) पुरातन के पुनरुत्थान में।
(ग) भविष्य की सृष्टि में।

इस काल में पन्त एकान्त सौन्दर्य का मधु-संचय करने के लिये इस जगती तल से दूर भाग खड़े होते हैं। वह अपने व्यक्तिगत प्रेम

की निराशा से इतने विक्षिप्त हुये हैं कि उनके हृदय में हाहाकार ने मानों एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया है। पूर्व प्रेम की मधुर स्मृति में वह तड़प उठता है, चीत्कार कर उठता है—

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को,
है कहाँ आश्रय विरह की वहिना में।

—ग्रंथि

(५) इस काल की रचनाओं से यह भी पता चलता है कि कवि अपनी व्यक्तिगत-आशा-निराशा, आँसू, उच्छ्वास के संसार से ऊपर उठना चाहता है। वह जीवन के सुख-दुःख के संघर्ष के बीच पड़ा कराह रहा है वह कभी जीवन तथा जगत् को अनित्य कहता है, कभी नित्य; कभी जीवन में दुःख-ही-दुःख के निरन्तर संघर्ष का अनुभव करता है, कभी सुख-ही-सुख का अनुभव करता है। अन्त में 'गुञ्जन' में पहुँच कर वह जीवन और जगत की वास्तविकता और उसके रहस्य को समझ कर सुख और दुःख के अविराम द्वंद्व के बीच समझौता उपस्थित करता है। वस्तुतः 'गुञ्जन' पंत की रचनाओं की मध्यम कड़ी है। इस पुस्तक में कवि के प्रथम युग का अन्त दूसरे युग का आरंभ होता है। यह काव्य-पुस्तक उनके साहित्य-जीवन का वह संगम है जहाँ पुराने और नये विचार आकर मिल गये हैं। 'पल्लव' में कवि का पुराना स्वर इस तरह फूटा था—

कहाँ नश्वर जगती में शांति

× × ×

जगत् अविरल जीवन् संग्राम
स्वप्न है यह विराम!

लेकिन 'गुञ्जन' का उल्लास इस तरह व्यक्त हुआ है—

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन।

× × ×

बरसों लघु लघु तृण तृण पर।
बरसो जग-जीवन के घन।

(६) शैली की दृष्टि से इस काल की कविताओं में अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्मदर्शिता, चिन्तन, संगीतमय प्रवाह, सांकेतिक भाषा चित्रमयी भाषा आदि का सुन्दर निदर्शन हुआ है। कल्पना की उड़ान इनकी अपनी विशेषता है। इस काल की रचनाएँ पन्त के छायावाद की मूलभूत विशेषताओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। छायावादी पन्त की आत्मा का उन्मुक्त रूप इस काल की काव्य-पुस्तकों में देखने को मिलता है।

दूसरा युग—['ग्राम्या',—'ज्योत्स्ना' १९३२-४०] 'ज्योत्स्ना'-'युगान्त पन्त के काव्य-जीवन का दूसरा युग प्रस्तुत करते हैं। ऊपर मैं बता आया हूँ कि 'गुञ्जन में कवि के विचारों तथा भावों में काफी विकास और परिवर्तन हो गये हैं। 'पल्लव' का कातर तथा सकरुण स्वर, 'गुञ्जन' में नहीं मिलेगा। कवि अपने जीवन में तथा जगत में अब आनन्द और उल्लास का अनुभव करने लगा है। निराशा एक साथ ही आशान्वित होकर बोल उठी है—

हे जग-जीवन के कर्णधार
चिर जन्म-मरण के आर पार
शाश्वत जीवन-नौका विहार।

—गुञ्जन

इस तरह हम देखते हैं कि कवि की काव्य-धारा प्रकृति की सौन्दर्यराशि से हटकर मानव-जीवन के क्षेत्र में अवतरित हो गयी है। और अब वह दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने में अधिक प्रवृत्त हो गया है। 'गुञ्जन'

के दार्शनिक विचारों को कवि ने 'ज्योत्स्ना' में नाट्य-रूप दे दिया है। 'ज्योत्स्ना' गुञ्जन का स्वाभाविक विकास है। यह अंग्रेजी कवि स्पेन्सर (Spenser) की 'Fairie Queene' और प्रसाद की कामना (नाटक) की तरह एक रूपक (Allegory) है। पन्त ने उसमें आधुनिक संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिये कुछ नये सिद्धान्तों की कल्पना की है। पन्त की इस पुस्तक में मानववाद और कल्पनावाद का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया गया है। पृथ्वी पर एक नवीन स्वर्ग का निर्माण किया गया है; संघर्षमय संसार को स्वर्ग बनाने की चेष्टा की गई है। शेली के प्लैटोनिज्म (Platonism) का पूर्ण प्रभाव उसपर पड़ा है। आज के विश्व को एक आत्मा, एक मन, एक वाणी और एक विराट् संस्कृति की आवश्यकता है, पन्त ने कुछ ऐसा ही अनुभव किया है। कवि की सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक तथा वैयक्तिक चेतना उस काल की रचनाओं में जाग पड़ी है। वह मानव-मानव के हितों और अधिकारों के प्रति सजग और जागरुक है—

गूँजे जयध्वनि से आसमान,
सब मानव मानव हैं समान!
निज कौशल, मति इच्छानुकूल
सब कर्म-विरत हो भेद भूल
बंधुत्व-भाव ही विश्व मूल
सब एक राष्ट्र के उपादान।

—ज्योत्स्ना

'ज्योत्स्ना' पन्त के काव्य-पथ का दूसरा मोड़ है अब वे पहले से अधिक चिन्तक हो गये हैं। उनकी चिन्तना 'युगान्त' में मुखर हो उठी है। 'पल्लव' का करुण क्लिष्ट भाव जो 'गुञ्जन' में आकर समझौते का रूप धारण कर चुका था, 'युगान्त' में आकर पूर्णतया मांगलिक कामनाओं

का वाहक हो गया है।' वह जीवन के कुम्भलाये फूलों में प्रभात का ह्रास भरना चाहता है —

फिर से जगती के कानन में
आ जाता नव मधु का प्रभात।

—*युगान्त*

× × ×

जगती के जन-पथ कानन में
तुम गाओ विहग! आनन्द गान
चिर शून्य शिशिर पीड़ित जग में
निज अमर स्वर से भरो प्राण।

विश्व की मंगल-कामना करता हुआ कवि यह भी चाहता है कि जीवन की उन अवरोधक शक्तियाँ, पुरातन के जीर्ण शीर्ण विश्वास नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ, जिनकी आज कोई आवश्यकता नहीं रहीं—यथा,

गा, कोकिल, बरसा पावक कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के, जड़ बंधन
पावक-पग धर आवे नूतन!
हो पल्लवित नवल मानवपन।

—*युगान्त*

'युगान्त' की दो कवितायें—'मानव' और 'बापू के प्रति'—पन्त की प्रगति को समझने में बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक में कवि की मानव-पूजा है, दूसरी में महात्मा गाँधी के आदर्शों के प्रति पूर्ण आस्था के भाव और उनकी मान्यता। कवि को यह अच्छी तरह विश्वास हो गया है कि बापू का जन्म मानवता की रक्षा के लिये ही हुआ है। पन्त के व्यक्तिगत विश्वास का यह बिलकुल नया पहलू है। इसके पहले कवि

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामकृष्ण के वेदान्त-दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित था। लेकिन अब उसकी श्रद्धा के फूल बापू के पावन चरणों पर चढ़ने लगे। वह उनका अनन्य पुजारी हो गया। अपनी समस्त आर्द्र भावनाओं को उसने बापू के महान व्यक्तित्व के सामने अर्पित कर दिया। वह बोल उठा—

तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल—
× × ×।
सुख-भोग खोजने आते सब
आए तुम करने सत्य खोज।

अब गाँधी-दर्शन पंत की रचनाओं का प्रधान केन्द्रीय विषय बन गया। ऊपर के विवेचन का सारांश शुक्लजी के शब्दों में यह है कि 'पल्लव' में कवि अपने व्यक्तित्व के घेरे में बँधा था, 'गुञ्जन' में कभी-कभी उसके बाहर और 'युगान्त' में लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता हुआ दिखाई पड़ता है। 'गुञ्जन' तक वह जगत् से अपने लिये सौन्दर्य और आनन्द का चयन करता प्रतीत होता है, 'युगान्त' में आकर वह सौन्दर्य और आनन्द का जगत् में पूर्ण प्रसार देखना चाहता है। कवि की सौन्दर्य-भावना अब व्यापक होकर मंगल-भावना में परिणत हुई।"

'युगान्त' पंत के कवि-जीवन का दूसरा अध्याय खोलता है। प्रकृति के अनन्य पुजारी पंत का दृष्टि कोण अब बदल गया। प्रकृति को वे जिन आँखों से देखते थे, वह चश्मा उतार दिया गया। संध्या होने पर अब कवि का ध्यान केवल प्रफुल्ल प्रसून, अलख पवन और दीप्त दिगंचल तक ही नहीं रह जाता वरन् वह यह भी देखता है कि—

वाँसों का झुरमुट,
संध्या का झुटपुट
× × ×

ये नाप रहे निज धर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग
भारी है जीवन, भारी पग।

—'युगान्त'

इन पंक्तियों में प्रगतिवादी पन्त का जन्म हुआ है, यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी' का प्रकाशन हुआ। प्रगतिवादी सिद्धान्तों की मांसल व्याख्या 'युगवाणी' में हुई है। यह पुस्तक पंत के काव्य-जीवन में एक नया रूप उपस्थित करती है। इस पुस्तक के साथ ये भारतीय जीवन के नवयुग में प्रवेश करते हैं। वर्तमान् हिन्दी कविता में प्रगतिवाद की स्थापना 'युगवाणी' द्वारा हुई है, ऐसा लोगों का विश्वास है क्योंकि प्रगतिवाद से संबंध रखने वाले मौलिक सिद्धाँतों की व्याख्या इसमें की गई है। अस्तु, यह प्रगतिवाद का सिद्धान्त-काव्य है। इसमें पंत भाव-लोक से उतर वस्तु लोक में चले आये हैं और जीवन की सामाजिक दुखस्थाओं का अध्ययन निकट से करने का पयान किया है। पंत जीवन के संघर्ष से सदा दूर रहते आये हैं और आज भी उनकी ऐसी ही अभिलाषा है। वस्तुतः उन्होंने जीवन और जगत की विभीषिकाओं का दर्शन एक एकाकी दार्शनिक की तरह किया है, उसके साथ जूझ कर नहीं।

'युगान्त' में पंत की आस्था गाँधीवाद में थी लेकिन 'युगवाणी' में उनका यह विश्वास टुकड़े-टुकड़े हो गया है। गाँधीजी की सत्य-अहिंसा की नीति के संबंध में अब वह संशयालु है। कवि संशयात्मक प्रश्न करता है—

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायगा जग जीवन ?
आत्मा की महिमा से मंडित होगी मानवता ?

डा० नगेन्द्र के शब्दों में" 'युगवाणी' भारतीय साम्यवाद की वाणी है। इसमें उसी के सिद्धांतों का पद्यात्मक निबंध न किया गया है।" गाँधीवाद के प्रति संदिग्ध होते हुए भी पन्त ने यह महसूस किया है कि वर्तमान काल के संधि-युग में अहिंसा की परमावश्यकता है—

नहीं जानता युग-विवर्त में होगा कितना जन-क्षय,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।

फिर भी कवि गाँधीवाद की पूर्णता पर संदेह करता है। वह गाँधी-दर्शन को 'अपूर्ण' समझता है। सच तो यह है कि 'युगवाणी' में पन्त ने समाजवाद के प्रति अपनी अभिरुचि दिखलायी है लेकिन साथ ही गाँधीवाद को वे भूले नहीं हैं। ऐसा मालूम होता है कि लोक-व्यवस्था के लिये वे समाजवाद को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और व्यक्तिगत साधना के लिये गाँधीवाद की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं। अतएव, इस पुस्तक में पन्त ने गाँधीवाद और समाजवाद के बीच सामंजस्य लाने की चेष्टा की है। उनकी रचनाओं में यह एक बिलकुल नयी बात देखी गयी। लोक-जीवन को व्यवस्थित रूप देने के लिये रोटी की समस्या सुलझाने के लिये कवि ने समाजवाद की महत्ता और शक्ति को स्वीकार तो किया लेकिन 'संकीर्ण भौतिकवाद' को प्रश्रम तथा प्रोत्साहन देने के लिये वे तैयार नहीं हैं। पंत का चिन्तन सम्पूर्णतः मौलिक और स्वतंत्र है। वे परात्परवाद की शक्ति को भी अपने हृदय का सम्मान देते हैं—

'स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।' पन्त की 'स्वाभाविक स्वच्छंदता' की प्रशंसा करते हुये शुक्ल जी ने अपने 'इतिहास' में लिखा है कि "यह देखकर प्रसन्नता होती है कि छायावाद के बँधे घेरे से निकल कर पंत जी ने जगत् की विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छंदता के साथ विचरने का साहस किया है।" इस दृष्टि से कवि की रचनाओं में 'युगवाणी' का एक निश्चित स्थान है।

'ग्राम्या' में पन्त समाज के साधारण स्तर के लोगों के बीच चले आये हैं। स्वप्न और कल्पना के स्वर्ण-लोक में निवास करने वाले पन्त की भावानुभूति घिस कर बौद्धिक हो गयी है। 'युगवाणी' में प्रगतिवाद के जिन सिद्धांतों की व्याख्या हुई थी, उनका वास्तविक प्रयोग, 'ग्राम्या' में किया गया है।

तीसरा युग—['स्वर्ण-किरण-युग-पथ' १९४०-४९ ई०]—पन्त का आधुनिकतम स्वरूप—'ग्राम्या' (१९४० ई०) के बाद पन्त के व्यक्तित्व का आधुनिकतम स्वरूप 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'मधुज्वाल' तथा 'युग-पथ' जैसी काव्य-पुस्तकों में प्रकट हुआ है। पंत 'वीणा', से 'ग्राम्या' तक अपने विचारों की एक लंबी यात्रा तय कर लेने के बाद दूसरी यात्रा आरंभ करते हैं। 'स्वर्ण-किरण' से उनकी दार्शनिक विचार धारा का नितान्त नवीन स्रोत फूटता है। १९४० ई० के बाद के पन्त और इसके पहले के पन्त के व्यक्तित्व तथा चिन्तन में भारी अन्तर हो गया है। प्रो० शिव नन्दन प्रसाद के शब्दों में" 'युग-वाणी' और 'ग्राम्या' में कवि ने वस्तु-जगत् में संसार की विषमताओं का कारण ढूँढ़ना चाहा था और उनका समाधान आर्थिक, राजनीतिक ढाँचों के विशेष परिवर्तन में देखने का प्रयास किया था। विगत विश्व-युद्ध (१९३९-४५) ने भौतिक शक्तियों में उनके विश्वास को हिला दिया और उन्होंने एक बार फिर आत्मा की निधि पर पूर्ण रूप से निर्भर रहने में औचित्य देखा। 'स्वर्ण-किरण' में इसी आत्मिक शक्ति की चेतना में, मानव के इसी अन्तरिक वास्तविक विकास में कवि के विश्वास का स्वर है।"[१] 'स्वर्ण-किरण' में 'युगान्त' और 'ग्राम्या' का प्रतिवादी स्वर एक दम शान्त पड़ गया है।

हिन्दी के विद्वान् आलोचक श्रीयुत इलाचन्द जोशी ने अपने प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'संगम' (१९४८) में 'पंत की स्वर्ण-चेतना में

[१] पंत जी का 'गुञ्जन: एक विलेषणात्यक अध्ययन,' पृ० १३४-३५

क्रान्तिकारी स्फोट' शीर्षक निबंध माला में पन्त की नवीनतम रचनाओं की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, यह अत्युक्ति न होगी यदि यह कहा जाय कि कवि की नव-प्रकाशित काव्य-पुस्तकों का आलोचनात्मक अध्ययन करने का एक मात्र आधार जोशी जी के लेख ही हैं जिनमें उन्होंने इन रचनाओं का विवेचना बड़े मनोयोगपूर्वक उपस्थित की है। उनकी मैं कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—,, "पंत की नयी रचनाएँ उनकी अवचेतना में होने वाले विस्फोट के फल हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कोई भी श्रेष्ठ कलात्मक रचना अवचेतना (Unconsciousness) के विस्फोट का ही परिणाम होती है। पर पन्त जी के भीतर के इस बार के विस्फोट में और पिछले विस्फोटों में एक बड़ा भारी और अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि अपने अंतस्तल के पिछले विस्फोटों के संबंध में उनका जाग्रत मन विशेष सचेत नहीं था। अर्थात् इस बात की जानकारी के लिये उनका सचेत मन जागरुक नहीं था कि उनकी जो विस्फोटात्मक अन्तरानुभूतियाँ स्वतः स्पर्त हो कर काव्य-लहरियों के रूप में उमड़ती चली जा रही है।... 'युगवाणी' में पन्त जी की चेतना लोक-चेतना की सहानुभूति से प्रभावित होकर वहिर्मुखी हो उठी थी। 'स्वर्ण-किरण' युग में वह फिर अन्तर्मुखी हो उठी है। पर इस बार की अन्तर्मुखीनता छायावादी युग की अंध-अन्तर्मुखीनता नहीं है। बल्कि वह अवचेन-अणु में विस्फोट उत्पन्न करने के उद्देश्य से प्रेरित सचेत मन का (जागृत बुद्धि का) सजग विद्युत-स्फुरण है। आज क्या प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी देशों में वाह्यचेतना ही प्रधान रूप से विकसित हो उठी है। अन्तर-राष्ट्रीय स्वार्थ-संघर्ष से उत्पन्न राजनीति तथा अर्थनीति की काली-काली धूम 'स्मोक-स्क्रीन' बन कर अन्तर्जगत् की स्वर्ण धूलि के दृष्टिपथ को बुरी तरह छाये हुये है। जब तक यह भौतिक धूलि अणु-अस्त्रों की सामूहिक तांडव-लीला-जनित विश्व-व्यापी राख से मिलकर एकाकार हो चुकने के बाद धीरे-धीरे नीचे बैठ नहीं जाती तब तक जन साधारण अन्तर्लोक

की उस दिव्य स्वर्ण-धूलि के दर्शन अपनी अंतर्दृष्टि से कर पायेगा या नहीं, यह संदेहास्पद है। पर कवि की पारदर्शी आँखें अभी से वर्तमान के काले आवरण को भेद कर उस आने वाले नये स्वर्ग-युग को देखने में समर्थ है जो सुदूर भविष्य में मानव के भीतरी और बाहरी जगत् को एक बार निश्चय ही अपनी दिव्य चेतना से छा देगा। आज के युग में व्यापक रूप से फैली हुई वाह्य-चेतना के अतिविकास के ही कारण पन्तजी को अपनी नयी रचनाओं में बार-बार अन्तश्चेतना की ओर निर्देश करना पड़ा है और उसके महत्व पर विशेष रूप से जोर देने की आवश्यकता महसूस हुई है—

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन जीवन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना-गीता किन्तु चिरन्तन।
भर देगा भूखी धरती को अंतर्जीवन प्लावन,
मनुष्यत्व को करो समर्पित खंडित मन, कवलित तन।

—*स्वर्ण-किरण*

अन्तर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू-जन,
अन्मुर्ख प्रेरित हो उसको पाना जीवन दर्शन।

× × ×

अन्तरतम की नीरवता में,
जाग्रत हो सुर-मादन-गुञ्जन।

अपनी नवीनतम रचनाओं में पन्त एक तत्वदर्शी ऋषि के समान हैं जिन्होंने वर्तमान् विश्व के अंधकारमय जीवन में प्रकाश की फूटती हुई नवस्वर्ण किरणों को देख लिया है। इनमें उन्होंने आने वाले स्वर्ण-युग की नवीन चेतना का स्पष्ट अनुभव किया है। विश्व की वर्तमान विभीषिका ने कवि के मानस में आशा और अलोक की स्वर्णिम किरणें विखेर दी हैं। उसका यह अखण्ड विश्वास हो गया है—

नहीं गणित से रे परिचालित
मानव-जीवन का विकास-क्रम
विजय-पराजय, संधि-क्रांति का
स्रवणशील मानव-मन संगम !
भरती रहती वाह्य-चेतना
आत्मा फिर-फिर जगती नूतन,
छोड़ जीर्ण केंचुल, नव-अर्पित
होता उरग मनुज का जीवन !

हिन्दी काव्य-संसार में पंत के चिन्तन और मनन स्वर्णोदय के उस उच्च शिखर पर पहुँच गये हैं जहाँ भारत के आधुनिकतम दार्शनिक एवं विश्व-विश्रुत चिन्तक श्री अरविन्द की पहुँच दर्शन-संसार में हो गयी है। वस्तुतः आधुनिकतम दर्शन के क्षेत्र में जो स्थान तत्वदर्शी श्री अरविन्द का है, कविता के क्षेत्र में वही ऊँचाई भविष्य-द्रष्टा पन्त जी को प्राप्त है। अपने कवि-जीवन के तीसरे युग या काल में पन्त एक मनीषी-कवि हैं, ऋषि हैं। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि २०वीं सदी के विश्व की समस्या, राजनैतिक न होकर, सांस्कृतिक है। वर्तमान विश्व के ऐटम और हाइड्रोजन बम के युग में मानव जाति की सम्पूर्ण संस्कृति खतरे में है। पंत इसी संस्कृति की रक्षा में आज संलग्न हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'अवचेतना तथा अर्ध्वचेतना (Super-Consciousness) के रहस्यों के विश्लेषण के प्रकाश में ही मानव की युग व्यापी व्यक्तिगत तथा समष्टिगत समस्याओं के समाधान का अत्यन्त सुन्दर तथा महत्वपूर्ण प्रयास किया है। वर्तमान युग की विश्वव्यापी विकट समस्याओं के आल-जाल को सुलझाने का एक मात्र साधन उन्होंने उसी विश्लेषण-पद्धति को माना। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने कई रूपकात्मक कविताएँ लिखी हैं जिनमें ईश्वर के नये-नये रूपों को नये अन्तर्वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अभिव्यक्त किया है।' अपनी काव्य-चेतना के इस युग में

पंत श्री अरविन्द के दर्शन और विश्वविख्यात जर्मन गणितज्ञ (Mathematician) माक्स प्लांक के 'क्वान्टम' नामक क्रांतिकारी सिद्धान्त (Theory of Quantum) से प्रभावित मालूम होते हैं। 'क्वान्टम-सिद्धान्त' ने यह सिद्ध किया है कि " प्रकृति की प्रगति 'कार्य-कारण' के सुनिश्चित नियम के अनुसार एक निश्चित रेखा-पथ पर अग्रसर होती हुई नहीं चलती, बल्कि बीच-बीच में किन्हीं रहस्यपूर्ण खामख्यालियों से प्रेरित होकर कभी एक प्रत्याशित टेढ़ा रास्ता पकड़ लेती है, कभी एक आध कदम पीछे को हट जाती है, कभी अकारण ही दायीं ओर मुड़ जाती है और कभी बाईं ओर। प्लांक सिद्धान्त ने प्रारम्भ में केवल इतना ही संकेत किया था कि प्रकृति की गति सीधी और सरल नहीं है, बल्कि बीच-बीच में वह झटकों से अथवा कूद-फांद से भी काम लेती हैं। पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाकर उसका भाष्य उस रूप में किया जिसका उल्लेख किया जा चुका है। आज के युग का नव-विकसित गणित भी अन्तर्विज्ञान की दिशा को ही अपनाने को प्रवृत्त हुआ है।"[1] दर्शन की इसी चिन्तना की पृष्ठभूमि पर पन्त की नवीनतम रचनाएँ खड़ी हुई हैं। उनकी यह विश्व-चेतना कवि को विश्व का 'महाकवि' घोषित करती है। वस्तुतः पन्त के व्यक्तित्व का मानसिक स्तर इतना ऊँचा उठ गया है कि उन्हें अब विश्व की महान विभूतियों की कोटि में रखकर ही उनके साहित्य का अध्ययन होना चाहिये।

पन्त की नवीनतम रचनाओं में अपने देश के गौरव के प्रति असीम उल्लास और जागरुकता के भाव प्रकट हुये हैं। स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर लिखी गयी कविता 'पन्द्रह अगस्त, १९४७' में कवि ने भारत की आध्यात्मिक शक्ति की महत्ता का गान गाया है, लेकिन पन्त का राष्ट्र-प्रेम विश्व-कल्याण का विरोधी नहीं है क्योंकि वे देश के सम्प्रदाय आदि से बहुत ऊपर उठ गये हैं। उनका अखण्ड विश्वास है कि भविष्य में

[1] इलाचन्द्र जोशी, 'सङ्गम' (जून १९४८ ई०)

भारत की स्वतंत्रता वर्तमान विश्व को विषमताओं के जाल से मुक्त कराने का माध्यम सिद्ध होगी—

भारत का दासत्व दासता थी भू-मन की ;
विकसित आज हुई सीमाएँ जग की !

—*१५ अगस्त, १९४७···'स्वर्ण-धूलि'*

विश्व के महान् तत्त्वदर्शियों का भी ऐसा ही विश्वास है कि आने वाले युग में भारत को ही विश्व के पथभ्रष्ट राष्ट्रों का नेतृत्व ग्रहण करना है क्योंकि भारत के महान् मनीषियों के अमर सन्देशों के प्रति उनके हृदय में असीम श्रद्धा के भाव हैं। पन्त भी एक ऐसे ही मनीषी-कवि हैं। कवि की अन्तर्वाणी भविष्यवाणी करने के लिये मचल उठती है—

कहता मेरा मन भारत के ही मंगल में,
भू मंगल जन मंगल देवों का मंगल है।
देव आप आशीर्वाद दें जन भारत को।

—*युग-पथ*

डा० सत्येन्द्र के शब्दों में 'पन्त की आज की वाणी निश्चय ही भारत भारती हो उठी है।' आधुनिक भारत के आधुनिकतम दार्शनिक श्री अरविन्द घोष (जो पिछली २५ वर्षों से पौंडीचेरी में विश्व-साधना में तल्लीन हैं) को कलकत्ते के अलीपुर जेल में एक अलौकिक शक्ति ने यह कहते हुए उनके राजनीतिक जीवन के प्रवाह को पलट दिया था कि—
Something has been shown to you in this year of Seclusion, something about which you had your doubts and it is the truth of the Hindu religion. It is this religion that I am raising up before the world, it is this that I have perfected and developed through the Rishees, Saints and Avatars, and now it is going forth to do my work among the nations. I am raising

up this nation (India) to send forth my word. This is the Sanatana Dharma, this is the eternal religion which you did not really know before, but which I have now revealed to you. The agnostic and the sceptic in you have been answered, for I have given you proofs within and without you, physical and subjective, which have satisfied you. When you go forth, speak to the nation always this word, that it is for the Sanatana Dharma that they arise, it is for the world and not for themselves that they arise. I am giving them freedom for the service of the world...It is for the Dharma that India exists."[1] यह सन् १६१० की बात है। हमारे महाकवि पन्त भी आज भारत के सनातन धर्म (विश्व की मंगल कामना) की चेतना को जगाने में लगे हैं क्योंकि ऐटम और हाइड्रोजन बमों से मानव-संस्कृति और सभ्यता की रक्षा का यही एकमात्र साधन है। पन्त की प्रगतिशीलता आज इसी ओर उन्मुख है।

[1]The Renaissance of Hinduism, पृ० ३११

पन्त की काव्य-चेतना में 'गुञ्जन' का स्थान

"मैं 'पल्लव' से 'गुञ्जन' में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुये पाता हूँ।"[1]

—सुमित्रानन्दन पंत

कल के पंत प्रगतिवादी थे, आज वे प्रगतिशील हैं। उनकी सारी रचनाओं में उनके कवि-व्यक्तित्व का सीधा विकास हुआ है। पंत की समस्त रचनाओं में 'गुञ्जन' वह मध्यम कड़ी है जिसको निकाल देने से बहुत बड़ी क्षति हो जाने की आशंका हो सकती है। इसलिये इस कवि की काव्य-पुस्तकों का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिये 'गुञ्जन' के सम्यक् अनुशीलन की आवश्यकता है। पंत की रचनाओं में 'गुञ्जन' का वही महत्त्व है जो महत्त्व सुन्दर और रंगीन फूलों की पंखुरियों के मध्य में मकरन्द या पराग का होता है। 'गुञ्जन' पंत की कवि-साधना का वह उच्च शिखर है जिस पर खड़े होकर कवि की विगत और वर्तमान भाव-भूमि का दृश्य लिया जा सकता है। जिस तरह पर्वतराज हिमालय की उच्चतम चोटी पर खड़े होकर मध्यएशिया का विस्तृत बंजर-प्रदेश और भारत के उत्तरापथ की शस्य-श्यामला भूमि के दृश्यों का एक साथ ही निरीक्षण तथा अवलोकन किया जा सकता है उसी तरह 'गुञ्जन' के शिखर से खड़े होकर पंत की विगत निराशा और वर्तमान आशा आह्लाद के स्तूपों को देखा जा सकता है। 'गुन्जन' पंत की रचनाओं की मध्यम कड़ी है। उनकी काव्यमाला में यह नगीने का काम करती है। यहाँ हम कवि की काव्य-चेतना की पृष्ठभूमि पर 'गुन्जन' के महत्त्व का निरूपण करेंगे।

हिन्दी में पंत सर्वप्रथम अपनी 'वीणा' लेकर आये। उसके भी पहले, जब ये दसवीं कक्षा में पढ़ते थे, वे 'कागज़ कुसुम' तथा 'तम्बाकू का

---

[1] आधुनिक कवि पन्त

धुआँ, शीर्षक कविताएँ लिख चुके थे और इनका प्रकाशन भी हो चुका था। इन कविताओं ने हिन्दी साहित्य-संसार में हलचल पैदा कर दी थी। तत्कालीन साहित्यकारों ने विस्मय और उत्सुकता भरे मिश्रित भावों से इनका स्वागत किया था। इन आरंभिक कविताओं के शीर्षकों से यह प्रतीत हुआ कि पंत आरंभ से ही स्वच्छंदवादी रहे हैं। पुराण प्रमाणित तथा प्राचीन काव्य-परंपरा के भावों-विचारों की स्वीकृति इस कवि को मान्य नहीं है।

पंत की समस्त रचनाओं में हम क्रमिक विकास की एक स्पष्ट रेखा पाते हैं। उनकी 'वीणा' का भाव 'गुन्जन' में जाकर पूर्णरूप से विकसित हुआ है। स्वयं कवि ने यह लिखा है कि "सा" से जो मेरी वाणी का सम्वादी स्वर एकदम 'रे' हो गया है, यह उन्नति का क्रम संगीत-प्रेमी पाठकों को खटकेगा नहीं, ऐसा मुझे विश्वास है।"[१] वास्तव में कवि के व्यक्तित्व का उन्नति-क्रम व्यवस्थित और सीधा है। 'पल्लव' में वह 'सा' से प्रभावित था—

अर्द्ध निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्च्छित-सा।

और 'गुंजन' में कवि का 'सम्वादी स्वर' 'रे' हो गया है—

'तप रे मधुर-मधुर मन'

× × ×

'रे गंध-अंध हो ठौर-ठौर'

'वीणा-काल की कविताओं के बारे में पन्त लिखते हैं कि 'इस कवि-जीवन के नव-प्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर-नूपुर ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो मेरा 'मंद कवि यशः' प्रार्थी, निर्बोध, लज्जा-भीरु कवि वीणा-वादिनी के चरणों के पास बैठ स्वर-साधना करते समय अपनी व्याकुल उत्सुक हृतंत्री से बार-बार चेष्टा

---

[१] गुञ्जन

करते रहने पर, अत्यन्त असमर्थ अँगुलियों के उल्टे-सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट, अस्पष्ट अंक में जागृत कर सका है, वे इस वीणा के स्वरूप में आपके सम्मुख उपस्थित हैं।[1] 'वीणा' में कवि 'अनिर्वचनीय सौन्दर्य' के रहस्य को जानने के लिये उत्सुक है। सारी प्रकृति, सारा बाह्य वातावरण उस आलौकिक सौन्दर्य की मधुरिमा से आलोकित है। यही कारण है कि कवि का जीवन उल्लास, आह्लाद और आनन्द से भरा है। इस उल्लास का भी एक ठोस कारण है। कवि को अभी जीवन की यथार्थ कुरूपताओं की ठोकरें खानी नहीं पड़ी है। अभी उसके सामने उन्मत्त यौवन की आकुल-व्याकुल पुकार है। जीवन और जगत् के व्यापारों के प्रति पूर्ण आशावादी है। वह भाव-विभोर, भावुक और चंचल है। वह बोझिल दार्शनिकता से अलग तो नहीं है पर कुछ दूर-दूर अवश्य है। हाँ, कहीं-कहीं आह्लाद और जिज्ञासा के झीना संघर्ष का आभास अवश्य मिल जाता है—

अब न अगोचर रहो सुजान !
निशानाथ के प्रियवर सचहर !
अंधकार स्वप्नों के यान,
किसके पद की छाया हो तुम !
किसका करते हो अभिमान ?

—*वीणा*

सामूहिक रूप से 'वीणा' का कवि अल्हड़ भावुक था।

'वीणा' के उपरान्त, पंत जीवन की 'ग्रन्थि' खोलने का प्रयास करते हैं। अब धीरे-धीरे कवि के विश्वास तथा विचार बदलने लगते हैं। उसका काव्य-लोक सीमित होने लगता है। अपने भावों की सामग्रियों का संग्रह करने के लिये अब वह 'वन वन उपवन' में भटकता नहीं वरन् वह एक मात्र अपनी नायिका में अपने को उलझाये रखता है। 'ग्रंथि' में

---

[1] 'वीणा' की भूमिका

कवि को एक 'सुन्दरता कल्याणि' से प्रेम होता है। वह प्रेमाकुल होकर अपने हृदय की समस्त भावनाओं को उसके सामने समर्पित कर देता है। लेकिन अकस्मात् उसके जीवन में वसन्त के स्थान पर पतझड़ के दिन आ जाते हैं। उसकी आँखें सावन-भादों की निरन्तर झड़ी बरसाने लगती हैं। उसका हृदय फट पड़ता है कवि को पहली बार यथार्थ जीवन की निर्मम कुरूपता की ठोकरें खाने पड़ी। उसका मन कराह उठा, हृदय रो पड़ा और अन्तर में निराशा घर करने लगी। उसे 'किसी' की अनुपस्थिति की उत्कट पीड़ा का कटु अनुभव हुआ, वह हाय-हाय करने लगा। 'वीणा' का आशावादी कवि पहली बार जगत से निराश हुआ। उसके जीवन के समस्त सुनहले सपने, आँधी में सूखे पत्तों की तरह, छिन्न-भिन्न हो गये। उल्लास की जगह वेदना आ धमकी। गहनतम वेदना ने कवि के सारे विश्वासों को, उसके दृष्टिकोण को बदल दिया। अब वह धीरे-धीरे गंभीर होने लगा। पहले तो वह खूब रोया, पटकाया—

'वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड-यह'

× × ×

गिर पड़ा वह स्वप्न मेरा अश्रु-सा
पलक दल को छू अचानक, कमल के
अंक में अटका तुहिन जल अनिल की
एक हल्की थपथपी से सो गया!

—ग्रंथि

'गुंजन' में कवि की उपरिलिखित निराशा कहीं-कहीं पानी में बुद्बुद् की तरह ऊपर उभर आयी है—

झर गयी कली, झर गयी कली,
चल-सरित-पुलिन पर वह विकसी,
उर के सौरभ से सहज-बसी,

सरला प्राप्त ही तो विहँसी,
रे कूद सलिल में गई चली!

—गुंजन, पृ० ३७

पंत की प्रेम-कहानी उनके आँसुओं से इतनी भींगी है कि आज भी यह कहीं-कहीं प्रकट हो ही जाती हैं। 'गुंजन' में और इसके बाद की रचनाओं में यह यद्यपि गौण स्थान रखती है तथापि उसकी भावानुभूति स्पष्ट हो ही जाती है। वस्तुतः महाकवि पंत का जन्म वियोग और वेदना के पंकिल से हुआ है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि—

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान'

यदि 'ग्रंथि' में कवि को जीवन की कठोर वेदना और निराशा का कटु अनुभव न होता तो आज उसका कुछ दूसरा ही रूप होता। 'गुंजन' तक आते-आते उसकी मनोभूमि इतनी ऊँची न होती। जीवन की कठोरता ने कवि को उदार बनाया, उसकी निर्ममता ने उसे सरल बनाया। उसने अपने मन के विद्रोही भावों को संयम की डोरों से बाँधकर अपने विशाल हृदय की उच्चता का परिचय दिया। जीवन और जगत की ओर से निराशा और वेदना की भेंट होने पर कवि प्रायः विद्रोही हो जाता है। अँग्रेजी में बायरन (Byron) और हिन्दी में श्री भगवतीचरण वर्मा ऐसे ही कवि हैं। लेकिन पंत का व्यक्तित्व कुछ इतना गंभीर है कि उनका हृदय, मक्खन की तरह, पहले की तरह आज भी मृदुल और कोमल बना हुआ है। उनके हृदय का यह संयम और संतुलन उनकी महानता का सूचक है।

इस तरह पंत की भावुकता चिन्तना में परिणत हो जाती है। वह 'पल्लव' की सृष्टि करता है। उसके मानस में अब बसन्त की वह मादकता न रही जो पहले थी। अब वह सौन्दर्य को देखकर विस्मित नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि इस सौन्दर्य में वेदना छिपी है, व्यथा है।

'पल्लव' में कवि पहली बार 'वीणा-ग्रंथि' के व्यक्तिगत सीमित संसार की चहारदीवारी से निकल कर विश्व को समझने की कोशिश करता है। वह अपने हृदय की वेदना को समस्त सृष्टि में व्याप्त पाता है—

विश्व वाणी ही है क्रन्दन
विश्व का काव्य अश्रुकण !

यहाँ से कवि का दृष्टिकोण फिर बदलने लगता है। वह जीवन के रहस्य को जानने के लिये उत्सुक होता है। निरीक्षण, मनन और चिन्तन के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि संसार में सुख-दुख अन्योन्याश्रित हैं। ये एक दूसरे के पूरक हैं। इतना ही नहीं, जब वह यह देखता है कि—

'मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नवजीवन की प्रात'

तो उसको यह पूरा विश्वास हो जाता है कि जन्म-मरण, संयोग-वियोग जीवन के आवश्यक अंग हैं। उसकी परिपूर्णता में इनका सक्रिय हाथ है। कवि की वेदना ने चिन्तक पन्त को जन्म दिया। अब वह प्रकृति के वाह्य सौन्दर्य का निरीक्षक नहीं रहा, मानव-हृदय का पारखी हो गया। प्रकृति के उपादान उसे किसी अज्ञात सत्ता की झाँकी देने लगे। 'पल्लव' की 'मौन-निमंत्रण' कविता इसी भाव की ओर संकेत करती है। 'गुञ्जन' के पहले पन्त की काव्य-चेतना की यही संक्षिप्त पृष्ठपीठिका है, जिसके आधार पर 'गुञ्जन' का मानव-महल खड़ा किया गया है।

'गुञ्जन' पंत की समस्त रचनाओं का वह संगम है जहाँ कवि की समर्ग भाव-लहरियाँ एकत्र होकर भँवर पैदा करती हैं, जिनके वात्या-चक्र में प्रवेश पाना साधारण व्यक्ति के लिये आसान नहीं। 'गुञ्जन' कवि-जीवन की साधना का वह उच्च शिखर है जिस पर कवि की तीक्ष्ण-कल्पना और गंभीर चिन्तना सदैव-लास्यनृत्य करती रहती है, जिसकी चोटी पर साधारण बुद्धि की पहुँच नहीं हो सकती। 'गुंजन' पन्त की

सशक्त काव्य चेतना का निदर्शन है। यहाँ उनके विश्वास, विचार तथा मान्यताएँ सब कुछ गंभीर और परिपक्व हो गये हैं। उनका पुराना दृष्टिकोण यहाँ संपूर्णतः बदल गया है। उसने जीवन और जगत् के सारे रहस्यों को जान लिया है। इसीलिये 'वीणा-ग्रंथि' 'पल्लव' की रचनाओं से 'गुंजन' बिलकुल भिन्न हो गया है। 'गुंजन' में पहली बार कवि ने भावना और चिन्तन के बीच समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा की है और इसमें वह सफल भी हुआ है। प्रो० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में 'भावना और चिन्तन का यही समन्वय 'गुंजन' में पन्त जी की भावधारा का पृष्ठाधार है।'[१]

'गुंजन' पंत की काव्यसाधना का एक नितान्त नूतन और उज्ज्वल नक्षत्र है। उसकी विशेषता विचारों की नवीनता और दृष्टिकोण की मौलिकता में है। यद्यपि पंत की समस्त रचनाओं में कुछ-न-कुछ नयी बात अवश्य रहती है लेकिन जीवन के सिद्धान्तों का जो विद्रोहात्मक, पर संयत, विस्फोट 'गुंजन' में हुआ है, वह अन्यत्र नहीं हुआ। जीवन, जगत्, सौन्दर्य, प्रेम आदि के प्रति कवि के विश्वास बिलकुल बदल गये हैं। सौन्दर्य को ही लें तो हम देखेंगे कि अब उसे पतझड़ या बियावान जंगल देखने को नहीं मिलते; अब वह सन्ध्या की चिता पर उषा के सिन्दूर को भस्म होते नहीं देखता। अब तो प्रकृति के हर रूप में उसे अपूर्व सौन्दर्य की झाँकी मिलती है। 'गुंजन' का प्रथम गीत हमारे इस कथन को पुष्ट करता है—

अब फैला फूलों में विकास,
मुकुलों के उर में मदिर वास,
अस्थिर सौरभ से मलय-श्वास।

जीवन और जगत् के प्रति भी कवि का दृष्टिकोण बदल गया है। यहाँ पन्त एक दार्शनिक हैं जिन्होंने संसार को, उसके मानव को

१ पन्त का गुञ्जन, पृ० ११४

नये चश्मे से देखा है। कवि जीवन को सुख-दुख, संयोग-वियोग संधिकाल कहता है। जीवन की सार्थकता इनकी उपयोगिता में है, न कि त्याग में —

यह साँझ ऊषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का
चिर हास अश्रुमय आनन,
रे इस मानव जीवन का।

पंत का प्रेम भी अब ऐन्द्रिकता और वैयक्तिकता की चहारदीवारी से मुक्त होकर विश्व-कल्याण की साधना बन गया है। अब उसे शारीरिक वियोग-वेदना में विश्वास नहीं। अब तो वह अपनी प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य में विराट् विश्व को समाहित कर उसका दर्शन करना चाहता है। उसकी व्यक्तिगत प्रेम-साधना विश्व-प्रेम-साधना बन गयी है। संकीर्णता की दीवार को ढाह कर अब वह किसी उच्च भाव-भूमि पर खड़ा हो चुका है। उसकी आँखों के आँसू थम गये हैं, हृदय की निदग्ध वेदना भी ठंढी पड़ गयी है। अब वह ठंढे दिल से विश्व-जीवन से संबंध रखने वाले प्रश्नों पर एक नयी दृष्टि से सोचता है; मानव के शाश्वत प्रश्नों के उचित समाधान की खोज करने में संलग्न है। इस लिये 'गुंजन' अन्तर्राष्ट्रीय काव्य-पुस्तकों में गिना जा सकता है। यह विश्व की संपत्ति है।

'गुंजन' का दर्शन—जीवन-दर्शन, पंत के व्यापक अध्ययन, अनुशीलन, मनन, चिन्तन तथा उनकी समन्वय-बुद्धि का स्वस्थ परिणाम है। पन्त किसी भी दार्शन-परम्परा के अनुयायी नहीं हैं। उनकी चिन्तन पद्धति नितान्त नूतन और स्वतंत्र है। स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामकृष्ण के दार्शनिक सिद्धांतों से वे अवश्य प्रभावित हुये हैं, फिर भी उनकी विचारधारायें सदैव बदलती रही हैं, एक निश्चित दिशा की

ओर 'गुंजन' के दर्शन पर स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण का भारी ऋण है। इसके बारे में हम अन्यत्र लिखेंगे।

'गुंजन' में पन्त ने अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है। समन्वय समझौते का रास्ता होता है और समझौता मध्यम मार्ग है। मध्यम मार्ग का अवलम्बन निरपेक्ष तथा निष्पक्ष निर्णय का सुपरिणाम होता है। पन्त ने 'गुंजन' में इसी 'मध्यम मार्ग' को अपनाया है। वे सीमा या मर्यादा का अतिक्रमण करना नहीं चाहते क्योंकि दुःख का मुख्य कारण है 'अति-इच्छा'—

'बढ़ने की अति-इच्छा में
जाता जीवन से जीवन।'

—गुञ्जन, पृ० १४

'गुंजन' पंत के भविष्य, कवि-जीवन का आभास भी देता है। यहाँ का कवि 'मानव' का कवि हो गया है। निराधार स्वप्न की कल्पना कवि को अब रुचिकर प्रतीत नहीं होती। अब वह सुखी मानव-समाज का निर्माण करना चाहता है। 'युगान्त,—युगवाणी—ग्राम्या' में वह सुखी-सम्पन्न समाज की सृष्टि करने में तल्लीन है। लेकिन शीघ्र ही उसे यह विश्वास हो जाता है कि जब तक व्यक्ति अपनी आत्मा की शक्ति को नहीं पहचानता तब तक वह किसी भी तरह की शांति नहीं प्राप्त कर सकता। इस विश्वास से प्रेरित होकर वह 'स्वर्ण-धूलि' 'स्वर्ण-किरण' 'मधुज्वाल' 'युग-पथ' की सृष्टि कर रहा है। 'गुंजन' की भावधारा का ही विकास इन काव्य पुस्तकों में हुआ है। इसमें कवि ने आत्मा की असाधारण शक्ति का परिचय पहले ही दे दिया था—'आत्मा है सरिता के भी, जिससे है सरिता सरिता।' पंत की आधुनिकतम भाव-दिशा 'गुंजन' की ओर ही है, इसीलिये यह पुस्तक उनकी समस्त रचनाओं की मध्यम कड़ी है।

'गुञ्जन' का आलोचनात्मक परिचय

"गुंजन में हम कवि का जीवन-क्षेत्र के भीतर अधिक प्रवेश ही नहीं उसकी काव्य-शैली को अधिक संयत और व्यवस्थित पाते हैं।"[1]

—आचार्य शुक्ल

सन् १९१८ से १९३२ तक की लिखी गयी पन्त की कविताओं में, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, 'वीणा' और 'ग्रंथि' पन्त जी की किशोर-कृतियाँ हैं, 'पल्लव' तरुणकृति है और 'गुंजन' प्रायः प्रौढ़।··· कवि की सम्पूर्ण कृतियों में 'गुंजन' की कविताएँ ही अपनी दार्शनिक गूढ़ता के कारण स्पष्टीकरण के लिये अधिक स्थान चाहती हैं।"[2] 'गुंजन' पन्त की उत्कृष्टतम रचना है। विषय-विवेचन की दृष्टि से यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसके पहले कवि की भावना न इतनी परिपक्व थी और न इतनी उच्चभाव-भूमि पर पहुँच सकी थी। यदि एक ओर उसके भाव एकांगी थे तो दूसरी ओर उसमें विचारों की अनस्थिरता बनी थी। कवि के विचार-भाव इतने प्रौढ़ न हो सके थे, जितने 'गुंजन' में देखे जाते हैं। सच तो यह है कि इसमें कवि विषय, भाषा और अभिव्यंजना की इतनी ऊँची भूमि पर उठ सका है कि पहिले वह कभी नहीं उठा था। अपनी व्यक्तिगत आशा-निराशा के कुहासे से जब वह बाहर निकला तो उसने भौतिक जीवन से संबंध रखने वाले चिरन्तन प्रश्नों पर मनन और चिन्तन करना आरंभ

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७१२

[2] हमारे साहित्य निर्माता, पृ० १७५, १८०

किया। पहली बार वह भावुक से चिन्तक हुआ। उसने जीवन जगत तथा मानव के शाश्वत प्रश्नों का समाधान निकालने के लिये अकथ परिश्रम किया। इसमें उसे सफलता भी मिली। जीवन के गूढ़ रहस्यों को अच्छी तरह जानकर समझ कर ही उसने 'गुंजन' की रचना की।

'गुञ्जन' पंत का प्रथम संयत और व्यवस्थित दर्शन-काव्य है। इसमें उसने अपने जीवन-दर्शन को प्रकट होने का अवसर दिया है। उसने जीवन की सुखद और आशामयी व्याख्या की है। उसकी आँखों के तरल आँसू जाते रहे। अचानक ऐसा क्यों हुआ? इसके उत्तर में यह कहा जायगा कि 'गुंजन में आकर पंत के समस्त पुराने विचार तथा विश्वास बदल गये और अब वह अपने हृदय में शूल के स्थान पर फूल की कोमलता का अनुभव करने लगा। पिता के निधन (सन् १९२८) और अपनी दीर्घ रुग्णता (१९२९ ई०) के बाद स्वस्थ होने पर तथा १९३१ में कालाकाँकर के उदारमना कुँवर सुरेश सिंह के सम्पर्क-सहयोग मिलने पर पंत के पुराने रहे-सहे विचार अचानक बदल गये। कवि-जीवन की इसी पृष्ठ-भूमि पर 'गुंजन' की रचना हुई है। इस काव्य-पुस्तक का प्रकाशन १९३२ ई० में हुआ था। उन दिनों कवि का जीवन सुख और संतोष की साँस ले रहा था। इस संबंध में डा० नगेन्द्र ने बताया है कि "कठिन रोग से मुक्त होकर कवि की आत्मा इस समय जीवन की आशा से प्रदीप्त हो उठी थी। इसी कारण 'गुञ्जन' की कविताओं में जीवन के प्रति एक नवीन हर्षपूर्ण दृष्टिकोण मिलता है। दूसरी बात जो ध्यान देने योग्य है : वह है उन पर दार्शनिक प्रभाव। इन्हीं दिनों कवि ने दर्शन और उपनिषद् का गंभीर अध्ययन किया था। इसने कवि के राग तत्त्व में हिलोर पैदा कर दी थी। वह सौन्दर्य-लोक से उतर कर मानव के चिन्तनभाव-जगत् में प्रविष्ट हुआ। १९३० ई० के स्वदेशी-आंदोलन तथा सत्याग्रह से भी प्रभावित

होकर वह पीड़ित मानव के सुख-दुःख के प्रश्नों का निदान खोजने के लिये विकल हो उठा। इस तरह 'पल्लव' का व्योम-बिहारी खग-गीत 'गुंजन' में जीवन के विटप पर उतर आया। कवि ने जीवन-तरु की डालियों का निकट से निरीक्षण किया और पाया कि इस तरु की डाली में कुछ सुख के तरुण फूल हैं और कुछ दुःख के तरुण शूल भी हैं। 'पल्लव' का अल्हड़ कवि अब एक साथ बड़ा संयत और गंभीर हो गया। 'गुंजन', पन्त जी के अपने शब्दों में, उनकी आत्मा का 'उन्मन-गुंजन' है। कवि का क्षेत्र अब हृदय से हटकर आत्मा तक पहुँच गया है। इसी कारण उसमें आवेश की न्यूनता और चिन्तन एवं मनन का प्राधान्य है।"[१]

'गुंजन' में गहन और बोझिल दार्शनिकता के कारण कुछ लोगों को इसके गीत शुष्क और नीरस जँचते हैं। इसके उत्तर में डा० नगेन्द्र ने बताया है कि "गुंजन की कविताएँ मनन की वस्तु हैं। चिन्तन एक प्रकार से अनुभूति को दबा लेता है। यही कारण है कि ये कविताएँ एक साथ हृदय को स्पर्श नहीं करतीं।"[२] समासतः हम यह नहीं कह सकते कि 'गुंजन' की कविताएँ हृदय को स्पर्श करती ही नहीं। सच तो यह है कि इसमें पंत के काव्य-जीवन का सार-रूप वर्तमान है। 'वीणा' से 'पल्लव' तक की कविता की मूलभूत विशेषताएँ इसमें भी जहाँ-तहाँ फैली हैं। प्रकृति-पूजा, सौन्दर्य की आराधना और प्रेम की साधना 'गुञ्जन' की कविताओं में भी यत्र-तत्र बिखरी हैं। इस काव्य-पुस्तक के उन्हीं गीतों में शुष्क दर्शन का नीरस स्वर सुनाई पड़ता है जिनकी रचना सन् १९३२ में हुई है। डा० नगेन्द्र ने इन गीतों को एक वर्ग में रखा है। उनके कथानुसार १९३२ की लिखी हुई कविताएँ एक सूत्र

---

[१] सुमित्रानंदन पंत, पृ० १२२

[२] वही, पृ० १३०

में गुंफित है।' 'गुंजन' में प्रेम और सौन्दर्य की भावानुभूति की अभिव्यंजना के लिये पर्याप्त स्थान है। 'अप्सरा', 'भावी पत्नी के प्रति' आदि कविताओं में पन्त की मार्मिक अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। सौन्दर्यानुभूति की उच्चता और प्रेमानुभूति की पवित्रता का जो रूप इस पुस्तक में मिलता है वह अन्यत्र नहीं देखा जाता। इस क्षेत्र में पन्त की प्रौढ़ काव्य-प्रतिभा दर्शनीय है।

'गुंजन' के गीतों की सुसंबद्धता और क्रमिक शृंखला के संबंध में हिन्दी के आलोचकों में गहरा मतभेद है। यहाँ मैं दो आलोचकों के विरोधी मतों के उद्धरण देता हूँ।

१. डा० नगेन्द्र—'गुंजन' में एक दार्शनिक शृंखला है जिसको कवि ने अपने चिन्तन की अग्नि में गला कर बड़े ही सुन्दर ढंग से ढाला है।"[१]

२. प्रो० शिवनन्दन प्रसाद—'गुंजन' की रचनाओं के क्रमिक अध्ययन द्वारा हम स्वयं समझ सकते हैं कि सभी गीतों के विषय न तो एक ही हैं और न क्रमिक रूप से संबद्ध ही। प्रत्येक गीत का महत्त्व स्वतंत्र है।"[२]

'सुमित्रानंदन पंत' के लेखक डा० नगेन्द्र ने गुंजन के गीतों को तीन मालाओं (वर्गों) में विभाजित किया है—

१—दार्शनिक शृंखला—१९३२ की समस्त कविताएँ इस शृंखला या माला के अन्तर्गत आयेंगी; २—प्रणय संबंधी गीत-माला—इसमें वे कविताएँ आयेंगी जिनमें कवि ने प्रेम और सौन्दर्य की भावानुभूति का आस्वादन किया है। 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता इसी के अन्तर्गत आयेगी; ३—एकान्त स्फुट गीत माला—इसमें नौका-विहार, अप्सरा, एक तारा, चाँदनी आदि बड़ी-बड़ी कविताएँ हैं। 'पन्त और

[१] सुमित्रानंदन पंत, पृ० १२४
[२] पंत का गुंजन, पृ० १७१

गुंजन' के लेखक श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने 'गुंजन' के गीतों के अनेक वर्ग बनाये हैं। समस्त गीतों को उन्होंने भी कई वर्गों में बाँट कर उनका अध्ययन किया है।

उपर्युक्त विद्वानों की गीतों की वर्गीकरण-प्रणाली तथा उनके मतों से मेरा विनम्र विरोध है। डा० नगेन्द्र के इस कथन को मैं मानता हूँ कि 'गुंजन' में एक दार्शनिक शृंखला है। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि शृंखला की यह सरिता कुछ ही दूर चलकर किसी सीमित स्थान में बहकर, भाव की किसी अन्य बालुकाराशि में जाकर विलीन हो गयी है। 'गुंजन' के गीतों में एक क्रम है, एक व्यवस्था है। उनको टुकड़ों में बाँट कर उनका अध्ययन करने से उस पुस्तक की महत्ता कम हो जायगी। इस काव्य-पुस्तक की महत्ता एक सुव्यवस्थित तथा स्थिर संदेश की नियोजना में है। यदि इसके प्रत्येक गीत का स्वतंत्र अस्तित्व है तो फिर इस पुस्तक का अपना अस्तित्व ही क्या रह जाता है? कवि जब डेढ़-डेढ़ चावल की खिचड़ी बनाने में ही व्यस्त दिखाई देता है तब फिर उसकी शक्ति का आधार क्या है? किसी भी पुस्तक के आदि और अन्त में विचारों की क्रमबद्धता और सुव्यवस्था होती है। मैं यह मानता हूँ कि 'गुंजन' में विचारों तथा भावों की एक सूत्रता है; उसके गीतों में क्रमशः भावों का उत्थान हुआ है। यदि इन गीतों की माला में एक सूत्री भाव पिरोया नहीं गया है तो फिर इस पुस्तक का महत्त्व ही क्या रह जाता है? 'गुंजन' की 'सूची' का निकट से अध्ययन करने पर यह साफ हो जाता है कि पन्त ने इसकी सूची तैयार करने में बड़ी लगन, तत्परता तथा सावधानी से काम लिया है। इसमें प्रायः १९१९ से १९३२ तक की कविताएँ संग्रहीत हैं—जिनका विस्तृत ब्योरा इस प्रकार है—

रचन-काल	गीत-संख्या	कुल जोड़
सन् १९१९,	३८	१
,, १९२२,	२८, २९	२

रचना-काल	गीत-संख्या	कुल जोड़
सन् १६२५,	२७	१
,, १६२६,	३३	१
,, १६२७,	१६, २१, २३, ३४, ४४	५
,, १६२८,	२४	१
,, १६३०,	२६, ३६, ३७, ३६, ४५	५
,, १६३१,	३२	१
,, १६३२,	१, १८, २०, २२, २५, ३०, ३१, ३५, ४०, ४१, ४३	२८
		४५

ऊपर की दी गई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'गुंजन' में १६३२ की कविताओं की संख्या अन्य वर्षों की अपेक्षा सबसे अधिक है। इन्हीं गीतों में कवि का संदेश सन्निहित है। दूसरे वर्षों में रचित गीतों को संभवतः इसलिये चुना गया है ताकि ये गीत १६३२ के गीतों के भाव-साम्य-विस्तार में सहायक हों। १६३२ के बाद १६२७ के गीत का आना हमारे इस तर्क को पुष्ट करता है। इसी तरह १६२५ के गीत के बाद १६२२ का गीत रखना एक निश्चित नीति का सूचक सिद्ध होता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि 'गुंजन' के समस्त गीतों में विचारों की क्रमबद्धता तथा भावों की सुसम्बद्धता है, वे एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं। किसी भी पुस्तक में विशृंखलित भावों का कोई महत्त्व नहीं होता। विशृंखलता विक्षिप्तता की निशानी है। मैं कह आया हूँ कि 'गुंजन' में कवि के भाव, उसके विचार संयत हो गये हैं, फिर विशृंखलता तथा विक्षिप्तता के लिये जगह ही कहाँ रह जाती है। यदि पंत की अब तक समस्त रचनाओं का अध्ययन किया जाय तो उनमें मैं निम्नलिखित भाव-विचारों की क्रमबद्धता पाता हूँ—

व्यक्तिगत विषाद→प्रकृति का विराट् दर्शन→सौन्दर्य-पिपासा→मानव-प्रेम→समाज-देश का दुःख-निवारण→विश्व-संस्कृति की रक्षा।

'वीणा' से 'युग-पथ' तक के पंत के व्यक्तित्व का यही रूप रहा है जो समय-समय पर बदलता गया है। 'गुञ्जन' में भी एक निश्चित विचार का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिसका अध्ययन इस क्रम में बैठाकर किया जा सकता है—

१. विस्मय-भावना
↓
२. मनन और चिन्तन
↓
३. ज्ञान का विकास (सुख-दुःख का परिज्ञान)
↓
४. जीवन के प्रति अविरोध
↓
५. विश्व-जीवन में सौन्दर्य-बोध
↓
६. भाव-शांति

श्री हरिहर निवास द्विवेदी के शब्दों में 'गुंजन' पंत जी की कविताओं का एक विशिष्ट संग्रह है। हम इसे सन् १९३२ तक के कवि के विकास का प्रतिनिधि संग्रह समझते हैं। साथ ही हमें इसमें कवि के भाव-परिवर्तन की दिशा के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। इसमें हमें 'छायावन में वास' करने वाले गीत, खग के भी दर्शन होते हैं, 'पूर्ण प्रकाश-रूप तारा' की अभ्यर्थना में गाये गये प्रणय के मादक-गान भी सुनाई देते हैं; इसमें कवि ने 'आत्मा के चिर-धन' की भी खोज की है और साथ ही 'सुषमा के शिशु' मानव के गौरव का भी गान किया है; इसमें एक ओर जहाँ कवि ने 'फूलों के हास' एवं 'कोकिल के कोमल बोल' की रट लगायी है, वहाँ जीवन के उद्गम पर भी चिन्तन किया है; इसमें 'शान्त सरोवर' की शुष्क चिन्तन प्रधान कविताएँ भी हैं, साथ

ही अनेक भावपूर्ण मनोहर एवं आलंकारिक कविताएँ भी हैं।···सन् १६२० तथा १६२१ ई० की कोई रचना 'गुंजन' में नहीं है। उस समय कवि 'ग्रंथि' के विफल प्रेम के गान गा रहा था। 'गुंजन' में विफल प्रेम को स्थान नहीं है। हाँ, 'कब से विलोकती तुमको' का प्रतीक्षा-गान अपवाद-स्वरूप हैं।" जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर पंत ने 'गुंजन' की सूची तैयार की है, यद्यपि उसमें उन्होंने बड़ी सतर्कता और सावधानी से काम लिया है फिर भी यह कहना पड़ता है कि 'गुंजन' में आये कुछ गीतों की शृंखला सुसम्बद्ध और व्यवस्थित नहीं है। यही कारण है कि कुछ लोगों को ये गीत स्वतंत्र मालूम होते हैं।

'गुंजन' को 'छायावाद की गीता' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। छायावादी कविता की मूलभूत विशेषताएँ 'गुंजन' पर अच्छी तरह घटती हैं। जिस काल में इसका प्रकाशन हुआ था वह समय छायावाद-काव्य का स्वर्ण-युग था। छायावाद अपने पूरे साज-शृंगार के साथ 'गुंजन' में आ उतरा है। इसलिये पंत की इस काव्य-पुस्तक को मै 'छायावाद की गीता' कहता हूँ। यह छायावादी कविता और काल की एक प्रौढ़ कृति है। इसकी विस्तृत व्याख्या मैं अन्यत्र करूँगा। 'गुंजन' में जिस आदर्श लोक की कल्पना पंत ने की है वह छायावादी एकाकी संसार का परिचायक है, जहाँ का मानव सांसारिक विषमताओं से मुक्त है, नारी-पुरुष में स्वर्गिक प्रेम-संबन्ध है, सुख-दुःख में समान संबन्ध है—कहीं विषमता नहीं, कहीं द्वंद्व नहीं। वह इस सत्यम् और सुन्दरम् के लोक में कवि की आत्मा निवास करती है। शेली के आदर्शवाद का प्रभाव 'गुंजन' के कवि पर पड़ा है। वह उसी Platonic world की कल्पना की सृष्टि में तल्लीन है। इस अलौकिक प्रेम और अत्यन्त सुन्दर संसार में पंत जैसे कोमल हृदय वाले कवि ही निवास कर सकते हैं।

'गुंजन' का आदर्शलोक व्यावहारिकता की नींव पर खड़ा न होकर

भावना, स्वप्न और कल्पना की पृष्ठभूमि पर खड़ा है जो ऊपर से देखने में तो बड़ा सुन्दर और आकर्षक जँचता है लेकिन भीतर पैठने पर उसकी गहनता प्रकट होती है। सच तो यह है कि 'गुंजन' में आत्म-चिन्तन और मनन पर ही अधिक जोर दिया गया है। सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के पहले प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-चिन्तन की भट्ठी में अपनी व्यक्तिगत कमजोरियों को जलाकर साफ़ कर लेना चाहिये। इसलिये 'गुंजन' में आत्म परिष्कार कर हृदय में सत्यम्, शिवम् और शिवं जैसी अन्तर्शक्तियों को जगाने की आवश्यकता महसूस की गयी है। इस पुस्तक के अन्त में इन्हीं तीन शक्तियों की सम्मिलित विजय दिखलायी गयी है। 'छविमान' के चरणों में अपनी आत्मा की समस्त विभूतियों का समर्पण कर देना सत्यं-शिवं-सुन्दरं जैसी शक्तियों को जागृत करना होगा। ऐसी स्थिति में पहुँचकर कवि कहता है—

हो गये तुमसे एकाकार
प्राण में तुम औ' तुम में प्राण।

—गुंजन, पृ० १०८

इस तरह देखा जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि 'गुंजन' का संदेश सत्य, शिव और सुन्दर की सामंजस्यात्मक उद्भावना में है, यही कवि का अमर संदेश है।

'गुंजन' की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें दर्शन और कविता का बड़ा ही आकर्षक सामंजस्य हुआ है। कुछ लोगों को इसके गीतों में नीरस और शुष्क दार्शनिकता का आभास मिलता है, लेकिन यह आभास ही भर है, स्पष्ट झाँकी नहीं। पंत के 'गुंजन' का यह भारी गुण है कि जहाँ-कहीं भी उन्होंने दार्शनिकतथ्यों का निरूपण या विश्लेषण किया है वहाँ उन्होंने अपनी सरल और तरल कविता के

ममत्व को छोड़ा नहीं है। दर्शन के रूखे-सूखे सिद्धान्तों को सरस कविता का आवरण देने की कला पंत को अच्छी तरह मालूम है। इस क्षेत्र में वे निस्संदेह अकेले हैं। निराला के काव्य में जहाँ दर्शन आया है वहाँ उनकी कविता की स्वाभाविकता तथा सरसता को कुछ ठेस लगी है लेकिन पंत के संबन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। उनका सुकुमोल हृदय उनकी कविता में सदैव झाँकता रहता है। भाषा की सरलता और भाव की स्निग्धता इनकी कविता का प्रधान गुण है। यही कारण है कि हिन्दी के अनेक आधुनिकतम कवियों पर जितना पंत की कविता का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है उतना किसी भी हिन्दी के अन्य कवि का नहीं पड़ा। एक उदाहरण देकर मैं अपने तथ्य की पुष्टि करूँगा—

सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोती वाली,
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली।

—गुंजन, पृ० ७१

इन पंक्तियों में एक दार्शनिक सिद्धान्त की काव्यात्मक व्याख्या की गयी है, शुक्ल जी के शब्दों में, "इस जीवन की तह में जो परमार्थ तत्त्व छिपा हुआ है, कहा जाता है, उसे पकड़ने और उसमें लीन होने के लिये बहुत से लोग अन्तर्मुख होकर गहरी डुबकियाँ लगाते हैं; पर मुझे तो उसके व्यक्त आभास ही रुचिकर हैं, अपनी पृथक् सत्ता विलीन करते भय-सा लगता है।"

'गुंजन' में प्रेम और सौन्दर्य की बड़ी ही मार्मिक तथा मौलिक व्याख्या की गयी है। प्रेम-बाण से आहत कवि पंत की आत्मा कभी-कभी चीत्कार कर उठती है। उसके हृदय में सुप्त वेदनाएँ हैं और उनसे वह व्याकुल रहता है—

जाने किस छल-पीड़ा से
व्याकुल-व्याकुल प्रतिपल मन,
ज्यों बरस-बरस पड़ने को
हो उमड़-उमड़ उठते घन!

प्रेम की उत्पत्ति का मूल कारण बाह्य-सौन्दर्य है। इसका मादक प्रभाव कवि को बेचैन कर देता है—

पुलकों से लद जाता तन,
मुँद जाते मद से लोचन,

लेकिन तत्क्षण वह अपने को सम्हाल लेता है। मन और आँखों को अपने अधीन करने के लिये वह 'साधना' की आवश्यकता महसूस करने लगता है—

'तत्क्षण सचेत करता मन—
ना, मुझे इष्ट है साधन!'

'गुंजन' में पंत का प्रेम भौतिक न होकर नैसर्गिक हो गया है, उनकी सौन्दर्य-भावना आध्यात्मिक हो गयी है। स्वर्णिम कल्पना के सहारे कवि ने एक असाधारण और अनुपम सौंदर्य की देवी (प्रतिमा) की कल्पना की है जिसके सौंदर्य का निखार सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। 'गुंजन' में प्रेम और सौंदर्य की भावना को पंत ने अध्यात्म की उच्च भूमि पर लाकर रख दिया है जो कुछ लोगों को अव्यावहारिक मालूम होती है। लेकिन मैं कह चुका हूँ कि 'गुंजन' के गीतों पर अँग्रेजी कवि शेली के प्लाटोनिज्म (Platonism)—आदर्शवाद का भारी ऋण है और पंत उसके बोझ से दबे हैं।

'गुंजन' छायावादी काव्य-शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। पंत

ने इसमें छायावाद की उस भाषा-शैली का व्यवहार किया है जिसको आज के बहुतेरे हिन्दी कवि अपना चुके हैं। नवीन उपलक्षण, प्रतीक और साम्य-योजना का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग इस पुस्तक में हुआ है। पंत की कविता में भाषा की लाक्षणिकता दर्शनीय तथा प्रशंसनीय है। भाषा-शैली के क्षेत्र में कवि ने अपनी स्वच्छंदवादिता का पूर्ण परिचय दिया है।

'गुंजन' के काव्यत्व का यह भी एक भारी गुण है कि गीति-काव्य की शैली में कवि ने एक सुव्यवस्थित और सुश्रृंखलित विचार-धारा की सफल और सुन्दर नियोजना की है। इससे इस काव्य-पुस्तक का महत्त्व और बढ़ जाता है। भाषा की सरलता तथा कविता के भावों की तरलता गुंजन के गीतों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

पंत की रचनाओं में 'गुंजन' का एक विशिष्ट स्थान है, यह निर्विवाद है।

'गुञ्जन' की प्रेरक शक्तियाँ

विश्व के कवियों को काव्य-रचना की प्रेरणा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तथा स्रोतों से मिलती रही है। 'विहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' के अध्यक्ष (१९५०) श्रीयुत लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने 'काव्य की प्रेरणा-शक्ति' की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की है। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवन और काव्य के सिद्धान्त' में लिखते हैं कि "प्रेरणा की दृष्टि से कवियों की प्रवृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। जीवन की प्रत्येक मनोदशा या स्थिति में काव्य-रचना नहीं हो सकती। ऐसे आशुकवि जो हर समय काव्य-रचना का दम्भ रखते हों, उनकी रचनाएँ किसी महत्त्व की नहीं हो सकतीं। प्रत्येक कलाकार, काव्य-चित्र, शिल्प आदि जो कुछ भी विषय हो, अपनी मनोदशा को कला-प्रवृत्त बनाने के लिये किसी-न-किसी विधि का अवलंबन करता पाया जाता है। किसी को सौन्दर्योपासना से (जैसे पंत) काव्य-प्रवृत्ति होती है तो किसी को संगीत की मीठी स्वर-लहरी से। किसी को विजया की तरंग से, तो किसी को शराब की बोतलों से। किसी को प्रकृति के हरे-भरे दृश्य, जंगल, पहाड़, झरने (बर्ड्सवर्थ, पंत) को देखने से नई सूझ होती है तो किसी को एकांत में ही गति मिलती है। शायद ही कोई ऐसा कलाकार होगा जो किसी-न-किसी प्रकार के वैध, अवैध, पूत, अपूत कारण से अपनी कला-प्रवृत्ति का संबंध न रखता हो। ऐसे अनेक कवि हैं जो स्त्री-दर्शन के अभाव में काव्य-दर्शन होता ही नहीं। पश्चिमी कलाकारों में अधिकांश ऐसे हैं जिन्होंने अपनी कलाभिमुख प्रवृत्ति की रक्षा अवैध प्रेम तथा मदिरा के बल पर की (जैसे, लॉर्ड बायरन')। प्रकृति के रमणीय दृश्य, संगीत की स्वर-लहरी से काव्य के मनोभाव जगते हैं, किन्तु, उन सब में अनुराग ही प्रधान

तत्त्व है। प्रेम के संयोग तथा वियोग, दोनों अवस्थाओं में, काव्य-प्रेरणा होती है, लेकिन वियोग-काल में जितनी मार्मिक कविताएँ लिखी गईं उतनी संयोग काल में नहीं। (इसीलिये पंत ने गाया—वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान')। प्रेम-दशा भाव-योग की दशा है, इसी लिए अपने प्रेम को व्यक्त करने या उसके आधार पर जगत् के प्रति अपने जीवन के अनुराग को प्रदर्शित करने में हृदय को जो उल्लास मिलता है वह दूसरी स्थिति में नहीं। प्रेम ने जितने कवि उत्पन्न किये उतने किसी अन्य भाव ने नहीं। यही कारण है कि प्रेम काव्य की प्रेरणा का एक मौलिक आधार है।

"काव्य-रचना के लिये जीवन में अनुकूल परिस्थिति तो चाहिये ही, अवस्था-भेद का भी प्रभाव उस पर पड़ता है। काव्य की प्रेरणा किस अवस्था में होती है, इस पर भी विचार किया जा सकता है। प्रतिभा के उदित होने के लिये न कोई निश्चित परिस्थिति अनुकूल होती है और न खास अवस्था ही उपयुक्त होती है। प्रतिभा किसी भी अवस्था में उत्पन्न हो सकती है···बुद्धि की सीमा को पार कर ही प्रतिभा का उदय होता है।···"आरंभ में जीवन और जगत् में जो उल्लास दिखाई पड़ता है वह बाद की अवस्था में उसी रूप में नहीं रहता। साधारणतः किशोर, युवा तथा वृद्धावस्था में क्रमशः भावना, क्रिया तथा स्मृति की प्रबलता रहती है। किन्तु इसके अनुक्रम की कोई तालिका नहीं बनाई जा सकती। युवावस्था में अनुभूतिमूलक प्रेमोच्छ्वास को व्यक्त करने की जैसी प्रवृत्ति होती है वैसी बाद में सदैव नहीं रहती।"[1]

ऐसा कहा जाता है कि तीस वर्ष के बाद ही मनुष्य के विचार प्रौढ़ और स्थिर हो पाते हैं। 'गुंजन' की रचना उस साल हुई थी जब पंत की अवस्था बत्तीस वर्ष की थी। यदि यह मनोवैज्ञानिक तथ्य सत्य है तो

[1] जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, पृ० १२३-२४

हम कहेंगे कि 'गुंजन'-काल में कवि के भाव-विचार बहुत कुछ प्रौढ़ और परिपक्व हो गये थे। 'गुंजन' की पूर्ववर्त्ती रचनाओं में हम विचारों की प्रौढ़ता तथा भावना का संयम उतना नहीं पाते जितना 'गुंजन' में पाया जाता है। 'वीणा-ग्रंथि' काल में भावुकता की तरलता तथा उद्दाम वासना का वेग ही अधिक देखने को मिलता है। मैं कह आया हूँ कि पंत की रचनाओं में क्रमशः विचारों, भावों तथा सिद्धान्तों का परिवर्तन होता गया है। कवि की अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी है, उसकी रचनाओं में भी उसी मात्रा में संयम, स्थिरता और प्रौढ़ता आती गयी। सच तो यह है कि पंत की रचनाओं में मनुष्य-स्वभाव का प्रकृत विकास हुआ है। उनकी समस्त काव्य-पुस्तकों की रचना के पीछे एक छोटी-सी प्रेरणात्मक कहानी जुड़ी है। 'वीणा-ग्रंथि' की मादकता 'पल्लव' में विषाद का रूप धारण कर लेती है। इसी तरह 'पल्लव' का विषाद 'गुंजन' में आह्लाद के रूप में परिणत हो जाता है। कवि की मनोदशा में इस तरह का आकस्मिक परिवर्तन क्यों हुआ? हमें उन कारणों की खोज करनी है। 'पल्लव' में कवि आठ-आठ आँसू बहाने में तल्लीन था, लेकिन 'गुंजन' में पहुँच कर वह गंभीर और संयत हो जाता है। अपनी आँखों के गीले आँसुओं को उसने पोछ डाला है। उसके हृदय की समस्त वेदना, विश्व-जीवन के प्रति समवेदना, सद्भावना और सहयोग का कारण बन गयी है। वह यहाँ गम्भीर तथा आशावादी चिन्तक है। इस आकस्मिक परिवर्तन की खोज करने के पहले पंत के कवि-जीवन पर पड़े हुये युग-धर्म के सामूहिक प्रभावों का विश्लेषण कर लेना उचित होगा।

पूर्व और पश्चिम दोनों देशों में काव्य की प्रेरक-शक्तियों के कारणों की खोज अपने-अपने ढंग पर हुई है। काव्य की प्रेरणा के मूल में संस्कृत के प्राचीन साहित्याचार्यों के मतानुसार कई कारण बताये जाते हैं—यश, द्रव्य, व्यवहार-ज्ञान, दुःखनाश आदि कई ऐसी बातें काव्य-

रचना की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं। आचार्य मम्मट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य-प्रकाश' में एक श्लोक के अंतर्गत इन कारणों का समावेश कर दिया है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवते रक्षतये,
सद्यः पर निर्वतये कांता सम्मित तयोपदेश युजे।

—*मम्मटः 'काव्य प्रकाश'*

इनमें से आजकल के साहित्यिकों का 'सद्यः पर निर्वतये' पर अधिक विश्वास है। पुराने समय में कवियों को काव्य-रचना की प्रेरणा 'परमानंद की तुरंत प्राप्ति' के लिये होती थी। आजकल इसकी व्याख्या कुछ दूसरी ही दृष्टि से की जाती है। मनीषी और महापुरुषों को अपने 'आत्म-विस्तार' में ही यथार्थ सुख का अनुभव होता है। कवि की यह हार्दिक इच्छा होती है कि उसकी कविता की भावनाएँ दूसरों के हृदय में रमण करे। उसे परम-आनन्द की प्राप्ति तुरंत हो जाती है। कवि अपनी सत्ता को शेष-सृष्टि के साथ आत्मसात कर एकात्म्य का अनुभव करता है। उसे सत्य की उपलब्धि हो जाती है। चरम सत्य की अनुभूति हो जाने पर, सौंदर्यानुभूति की सरिता में पैठकर वह उसका आस्वादन लेता है। पंत की कविता आत्म-विस्तार करने के लिये मार्ग खोजते-खोजते जब 'गुंजन' तक पहुँची तो उसने अपने को भावना की उच्चभूमि पर पाया। यह कवि आज भी 'परम आनंद' का अन्वेषण कर रहा है। तुलसीदास ने अपनी 'रामायण' में यह लिखा है कि मैंने यह ग्रंथ 'स्वांतः सुखायः' लिखा है। इससे यह अर्थ निकलता है कि कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की आशा-निराशा की चहारदीवारी के अंदर बंद रहता है। वह अपने जीवन के विकट प्रश्नों का समाधान खोजने में ही तत्पर रहता है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। सच तो यह है कि 'अपने हित को जनता के हित से भिन्न देखने की दृष्टि कवि

को नहीं होती। संसार में जितने काम होते हैं, प्रायः सब स्वांतः सुखाय ही किये जाते हैं।···वस्तुस्थिति यह है कि जीवन और जगत् से निरपेक्ष रहना मनुष्य के लिये एक कठिन व्यापार है, कवि के लिये असंभव। तुलसी के हृदय में लोक-कल्याण की भावना थी, यही उनकी प्रेरणा थी।' 'गुंजन' के रचना-काल में कवि अपने व्यक्तिगत जीवन के निराशमय वातावरण से निकल कर काफी ऊपर उठ चुका था। अपने कोमल हृदय के हाहाकार को लोक-कल्याण में बदल देने की प्रेरणा उसे इसी काल में मिली थी। वह अपने जीवन की संकीर्णता से हटकर मानव की कल्याण-कामना में लग चुका था। पंत की रचनाओं में विश्व-चेतना का क्रमिक विकास हुआ है। 'गुंजन' में पहली बार उसने अपने को इतनी ऊँची भाव-भूमि पर खड़ा करने की सफल चेष्टा की। आज जब कि कवि की उम्र ५० साल की है, वह विश्व-संस्कृति की रक्षा के लिये आकुल-व्याकुल हो उठा है। उसका व्यक्तित्व क्रमशः उत्थान की ओर उन्मुख होता रहा है। 'गुंजन' इस 'उत्थान' की शक्ति का सूचक है।

पाश्चात्य देशों के मनोवैज्ञानिकों ने काव्य की प्रेरक शक्तियों की व्याख्या कुछ दूसरे ही ढंग से की है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड (Freud) का कहना है कि पुरुष के प्रति नारी का और नारी के प्रति नर की सहज उद्भूत काम-वासना की भावना ही काव्य की प्रेरक शक्ति है। काव्य में इस वासना का उन्नयन (Sublimation) होता रहता है। इस सिद्धान्त के आधार पर यदि पंत की सामान्य रचनाओं और 'गुंजन' का अध्ययन किया जाय तो हम देखेंगे कि पंत को काव्य-रचना की प्रेरणा 'ग्रंथि' की नायिका से मिली थी। शायद यही कारण है कि इस कवि ने अपने को हिन्दी-संसार में 'वियोगी कवि' सिद्ध किया और अपने को आज तक अविवाहित जीवन बिताने के लिये मजबूर किया। पंत की प्रणय-पिपासा की आग आज शोला

बनकर नहीं भड़कती, बल्कि भग-जोगिनी के प्रकाश की तरह आज भी जहाँ-तहाँ चिनगारी बन कर फूट ही पड़ती है। 'गुंजन' में प्रणय-संबंधी गीत हमारे इस विश्वास को पुष्ट करते हैं। इसमें भी कवि की निराशा में सागर बुद्बुद् की तरह प्रकट हो ही जाती है—

'कब से बिलोकती तुमको
संध्या आ वातायन से।'

दूसरे मनोवैज्ञानिक एल्डर (Alder) ने यह सिद्ध किया है दुनिया के बहुतेरे कवियों की मनोदशा में प्रभुत्व-कामना, दूसरों पर हावी होने की प्रवृत्ति—भी काव्य की प्रेरक शक्ति का काम करती रहती है। इस अभाव की पूर्ति के लिये कवि अपने जीवन में काव्य की रचना किया करता है। पंत की कविता में किसी भी तरह की प्रभुत्व-कामना की क्षति की पूर्ति नहीं देखी जाती। जिसने सब कुछ खोकर अपने को पाने की चेष्टा की, वह क्या किसी दूसरे पर हावी होने की बात अपने मन में लायेगा। पंत ऐसे ही कवि हैं जिसने लुटाकर ही कुछ पाने का प्रयत्न किया है। इन्होंने अपनी वेदना को विश्व-वेदना में परिणत कर दिया है। आज उसकी अपनी इच्छा-अनिच्छा कुछ भी नहीं रही।

तीसरे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युंग (Yung) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि मनुष्य जीवन की धारा में बड़े वेग से बहता चला जा रहा है। उनके मतानुसार कुछ लोगों में काम-वासना का प्राधान्य रहता है और कुछ लोगों में प्रभुत्व कामना का। उन्होंने मनुष्य को अन्तर्मुखी (Introvert) और बहिर्मुखी (Extrovert) दो वर्गों में बाँटा है। यह सिद्धान्त भारतीय दृष्टिकोण के अनुकूल है। पंत का कवि-जीवन इस सिद्धांत पर खरा उतरता है। 'गुंजन' में कवि की प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी अधिक और बहिर्मुखी कम हैं। इसके

बाद की रचनाओं में कवि बहिर्मुखी अधिक हो गया है और अंतर्मुखी कम है। वस्तुतः पंत का कवि-व्यक्तित्व इन्हीं अंतर्द्वंद्वों और बहिर्द्वंद्वों के झंझा-झकोरों से होकर गुजरा है।

कवि की प्रवृत्तियाँ जब अंतर्मुखी होती हैं तो वह अपनी स्वकामनाओं के संकीर्ण दायरे में ही सिकुड़ा होता है। इसके विपरीत, जब वह बहिर्मुखी होता है तब वह लोक-कल्याण की कामना करता है। महान् कवि के व्यक्तित्वों में इन दोनों प्रवृत्तियों का संतुलित संयोग रहता है। पंत एक ऐसे ही महाकवि हैं। यद्यपि 'गुंजन' में कवि आत्म-चिंतन की साधना में ही अधिक संलग्न है तथापि उसने बाह्य-जीवन के शाश्वत प्रश्नों से अपने को अवगत कराया है, इसमें कोई संदेह नहीं। वह मानव को सुखी बनाने का सक्रिय उपाय बतलाता है। व्यक्तिगत जीवन को सुखी बनाने के लिये कवि ने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन 'गुंजन' में किया है उसकी सामाजिक कार्यान्विति 'युगांत' और 'ज्योत्स्ना' में उपस्थित की है। अतः 'गुंजन' के व्यक्तिवादी सिद्धांत अव्यावहारिक नहीं हैं। कोई भी कवि जीवन और जगत् से निरपेक्ष नहीं रह सकता। उसके व्यक्तिगत जीवन के घात-प्रतिघातों तथा जगत् में समय-समय पर घटने वाली घटनाओं का सीधा प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क पर पड़ता ही है। वह इस प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है। पंत के कवि-व्यक्तित्व पर भी युग-धर्म का प्रभाव पड़ा है।

काव्य-प्रेरणा को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है—व्यक्तिगत जीवन से संबंध रखने वाली प्रेरणायें और सामूहिक प्रेरणायें। कवि-जीवन से प्रत्यक्ष संबंध रखने वाली घटनाएँ तथा क्रिया-प्रतिक्रियायें कवि की व्यक्तिगत प्रेरणायें होंगी। कवि भी एक मनुष्य है लेकिन वह साधारण स्तर के लोगों से कुछ ऊपर उठा होता है। अंगरेज कवि वर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है कि 'A Poet is a man above man,' वह भी अपने जीवन की आशाओं तथा निराशाओं से प्रोत्साहित-

निरुत्साहित होता रहता है। पंत की रचनाएँ कवि के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसीलिये हम उनकी पुस्तकों में भावों तथा विचारों का परिवर्तन पाते हैं। जीवन की विपताओं की ठोकरों ने कवि के विचारों को प्रौढ़ बनाया है। 'गुंजन' पंत के प्रौढ़ विचारों का निदर्शन है। इसके अतिरिक्त पंत की रचनाओं पर युग-धर्म की भी छाप पड़ी है। समसामयिक युग के विचार-आंदोलनों का प्रभाव कवि के मन-मस्तिष्क पर पड़ता ही है। युग-धर्म का प्रभाव कवि को सामूहिक चेतना या प्रेरणा प्रदान करता है। पंत अपने युग के विचारकों (श्री विवेकानंद, रामतीर्थ, महात्मा गाँधी, श्री अरविन्द) से बहुत अधिक प्रभावित हुये हैं। 'गुंजन' में इस प्रभाव की स्थिति पायी जाती है।

पंत के 'गुंजन' पर श्री विवेकानन्द और श्री रामतीर्थ के दर्शन का प्रभाव अधिक है। इन्हीं से कवि को आत्म-साधना के माध्यम से देश-सेवा करने की प्रेरणा मिली है। भारत के इन आधुनिक दार्शनिकों का कहना है कि जब तक हम अपने कलुषित भावों को शुद्ध-प्रबुद्ध नहीं बना लेते, अपनी आत्मा को निर्मल नहीं कर लेते, तब तक हम राष्ट्र की सेवा से वंचित रहेंगे। इस दृष्टि से राष्ट्र का सेवक वही हो सकता है जो आत्म-साधक है, जिसने अपने वाह्य और आंतरिक जीवन में किसी भी प्रकार का अंतर नहीं माना है। राष्ट्र-सेवा के लिये समवेदना, सच्चरित्रता और त्याग की भावनाओं की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति एक शक्ति है, हमें यह न भूलना चाहिए। भारतीय दर्शन का यही निचोड़ है। पंत ने इस विचारधारा को अपनाया है। उन्होंने 'गुंजन' में स्पष्ट कहा है—

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल;
जग-जीवन की ज्वाला में गल,

बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन।

—'गुंजन'

स्वामी विवेकानन्द का दर्शन लोकपरक है। पंत ने भी 'गुंजन' के दर्शन में इस लोकोपकारिता को प्रश्रय दिया है। 'मानव' को 'सुन्दर से सुन्दरतम' तथा 'सुषमा के शिशु' जैसे शब्दों से सम्बोधित करना उनकी लोक कल्याण-भावना का स्पष्ट परिचायक है। जहाँ 'गुंजन' की 'एकतारा' शीर्षक कविता में व्यक्ति की आत्म-साधना पर जोर दिया गया है, वहाँ 'मानव' शीर्षक कविता में कवि ने अतिशय मानव-प्रेम का परिचय दिया है। व्यक्ति की आत्म-साधना समाज-सेवा का प्रथम सोपान है, पंत को ऐसा विश्वास है और समाज-सेवा राष्ट्र सेवा की दूसरी सीढ़ी है जिससे होकर प्रत्येक राष्ट्रसेवक को गुजरना पड़ता है। यद्यपि 'गुंजन' में समाज सेवा पर उतना जोर नहीं दिया गया है जितना व्यक्ति के आत्म-चिंतन पर दिया गया है तथापि 'गुंजन' 'युगांत' की पृष्ठभूमि का काम अवश्य करता है। दार्शनिक कवि पंत को अपनी दार्शनिकता की प्रेरणा प्रथम-प्रथम स्वामी विवेकानंद से ही मिली थी। उन्होंने ही उच्छृंखल भावुक कवि पंत को जीवन और जगत का संयत शुभचिंतक बना दिया। उनकी भावुकता के स्थान पर गंभीर चिंतना आ गयी और वे मानव के कवि हो गये। प्रकृति का रूप-लावण्य अब उन्हें उतना नहीं भाने लगा जितना शिशु का भोला रूप तथा मानव की मानवता। इसी समय विश्व-वंद्य महात्मा गांधी की 'सत्य-अहिंसा' विश्व के कोने-कोने में गुंजायमान हो उठी। कवि इस ओर भी आकर्षित हुआ। 'गुंजन' के बाद की रचनाओं में सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों को कवि ने अवश्य स्वीकार किया है लेकिन 'गुंजन' में व्यक्ति-साधना पर ही अधिक बल दिया गया है। 'गुंजन' की परवर्ती रचनाओं में कवि ने विवेकानंद के अद्वैत दर्शन, महात्मा गाँधी की सत्य-अहिंसा

और स्वामी दयानन्द की समाज-सुधार-भावना के बीच संतुलित और सुन्दर समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा की है। 'गुंजन' की पटभूमि इतनी विस्तृत नहीं है जिस पर इतनी भावनाओं को एक साथ खड़ा होने का अवसर मिलता। मैं कह आया हूँ कि 'गुंजन' मानव-व्यक्तित्व को शुद्ध-प्रबुद्ध बनाने का सक्रिय उपाय बतलाता है। इसीलिये इसमें कवि ने व्यक्तित्व को साधना की अग्नि में तपाने की सलाह दी है। उत्सर्ग कभी बेकार नहीं जाता, ऐसा कवि का अखंड विश्वास है। पंत की रचनाओं पर स्वामी दयानंद सरस्वती की समाज-सुधार भावना का उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना प्रेमचंद के साहित्य पर पड़ा। सच तो यह है पंत दयानंद की विचारधारा से अछूते ही रहे। लेकिन विवेकानंद का ऋण उन्हें अवश्य स्वीकार करना पड़ा है।

विवेकानंद और महात्मा गाँधी से प्रेरित-प्रभावित होकर ही 'गुंजन' में पंत ने व्यक्ति के अंदर छिपे असाधारण व्यक्तित्व को जगाने की चेष्टा की है। कवि की दृष्टि में व्यक्तित्व की पूर्णता सत्यं-शिवं और सुन्दरम् की उपलब्धि में है। उन्होंने बताया है कि जब तक व्यक्ति अपनी भावनाओं को सुन्दर नहीं बनाता तब तक सामाजिक जीवन का स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता। इसीलिये कवि ने कहा कि—

H81.09
V34P

'सुन्दर विश्वासों में ही
बनता रे सुखमय जीवन

P.GH2358

पंत का मानव-प्रेम गाँधीवाद की देन है। 'गुंजन' में इस प्रेम ने कवि को बहुत अधिक प्रेरित किया है। उन्होंने 'युगान्त' में बापू की महत्ता और सत्ता को स्वीकार करते हुये कहा है—

'तुम पूर्ण इकाई जीवन की।'

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'गुंजन' के दर्शन पर स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी का गहरा ऋण है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मतानुसार कवि को कविता लिखने की प्रेरणा तब मिलती है जब उसके अवचेतन (unconscious) मन की भावनाएँ स्वतः प्रकट होती हैं। ये मन की वे भावनाएँ हैं जिन पर किसी भी व्यक्ति का अपना नियंत्रण नहीं होता। इनका मूल स्रोत नारी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जायगा कि काव्य-प्रेरणा का बहुत बड़ा कारण कवि की काम-वासना भी है। वासना कवि के मन पर अपना प्रभुत्व जमाये रहती है। प्रेम-व्यापार में असफल और निराश कवि की रचनायें गीले आँसुओं से भींगी होती हैं। वस्तुतः पंत को काव्य की प्रेरणा उसी सौंदर्य की देवी से मिली थी जिसकी मधुर स्मृति से आज भी कवि विचलित और व्यग्र हो उठता है। 'पल्लव' की 'उच्छ्वास की बालिका' में कवि ने उसका वर्णन इस तरह किया है—

सरलपन ही था उसका मंन,
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन,

—*'पल्लव'*

× · × ×

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों का गान,

—*'पल्लव'*

झूलती उर में आज किशोरि!
तुम्हारी मधुर मूर्ति छविमान।

—*'गुञ्जन'*

पंत की विचारधारा की तरह उनका प्रेम-विधान भी क्रमशः उन्नत होता चला गया है। 'गुंजन' में वे न तो प्रकृति के कवि रहे और न अपनी नारी के ही ; यहाँ वे मानव के ही कवि हैं। मानव-प्रेम के सामने उनका नारी-प्रेम दब गया है। फिर भी 'गुंजन' में कवि के हृदय की निराशा, वेदना, हूक प्रकट होकर ही रही है। जग-जीवन के आँगन में आशा-आह्लाद के सुवासित फूलों को बिखेरने वाला कवि का हृदय कंगाल है। वह अभाव के अवसाद से पीड़ित है। इसलिये 'गुंजन' में कवि का अवसाद जहाँ-तहाँ व्यक्त हो ही गया है। उस तीव्र भावना को वह रोक नहीं सका है। फिर भी 'गुंजन' में कवि ने नारी के जिस अनुपम सौन्दर्य की कल्पना की है उसमें ऐन्द्रिकता के लिये कोई गुंजायश नहीं है। यहाँ का सौंदर्य भावात्मक हो गया है। उसने अपनी व्यष्टिगत भावनाओं को समष्टि में आत्मसात करने की चेष्टा की है। इसलिये 'गुंजन' में पंत का नारी-प्रेम अध्यात्म की उच्च भूमि पर खड़ा है। अब कवि इस प्रेरणात्मक प्रभाव से मुक्त होता जा रहा है। उसने अपने हृदय की समस्त वेदनाओं को विश्व-वेदना में परिणत कर दिया है। बहुत दबाने पर भी कवि के व्यक्तिगत जीवन की वेदनाओं की वाणी 'गुंजन' में व्यक्त हो ही गयी है—

अलि ! इन भोली बातों को
अब कैसे भला छिपाऊँ !
इस आँख मिचौनी से मैं
कह ? कब तक जी बहलाऊँ,
मेरे कोमल-भावों को
तारे क्या आज गिनेंगे !

—[गुंजन, पृ० ६७ गीत—२६,

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ बातायन से ?

संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से!

—गुंजन, गीत—२०

व्यक्तिगत प्रेरणा के क्षेत्र में पंत को सबसे अधिक प्रेरणा प्रकृति से मिली है। 'गुंजन' में इसका स्पष्ट संकेत कवि ने कर दिया है। कवि को बचपन से ही प्रकृति के सुरम्य प्रदेशों में रहने का सुयोग मिलता रहा है। अपने कवि-जीवन के उषा-काल में इन्हें प्रकृति की सुषमा से इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि नारी-सौंदर्य उसके सामने नगण्य था। उन दिनों उसने गाया था।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।

प्रकृति के अगाध प्रेम की चर्चा करते हुये पंत ने लिखा है कि 'प्रकृति के आनंदपूर्ण वातावरण में मेरा हृदय डूब जाता है और बिना प्रयास के अनायास ही मेरे हृदय में कविता लिखने की प्रेरणा होती है और कविता लिखी जाती है।' 'गुंजन' की चिंताधारा की प्रेरणा कवि को प्रकृति से ही मिली है। प्रकृति उनकी सहचरी, शिक्षिका तथा आराध्य देवी है। यद्यपि 'गुंजन' का विषय मानव-जीवन है। फिर भी कवि प्रकृति की पृष्ठभूमि में ही बैठकर मानव-जीवन के सत्य का साक्षात करना चाहता है। यह गुन्जन की एक विशिष्ट विशेषता है। प्रकृति के इस प्रेरणात्मक प्रेम का स्पष्ट संकेत कवि ने गीत ४४ (ख) में कर दिया है, जहाँ वह यह कहता है कि—

न पूछो, मेरा कैसा गान!
आज छाया वन-वन मधुमास,

मुग्ध-मुकुलों में गन्धोच्छ्वास ;
लुढ़कता तृण-तृण में उल्लास,
डोलता पुलकाकुल वातास
फूटता नभ में स्वर्ण-विहान,
आज मेरे प्राणों में गान।
मुझे न अपना ध्यान,
कभी-रे रहा न जग का ज्ञान !

—*गुंजन गीत ४५ (ख)*

पंत का प्रकृति-प्रेम अखंड और प्रगाढ़ है। उनके विचार तथा विश्वास क्रमशः बदलते गये हैं लेकिन उनका प्रकृति-प्रेम अभी भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यह दूसरी बात है कि अब उन्होंने इस प्रेम को गौण स्थान दे दिया है। मानव की पूजा के सामने प्रकृति की आराधना नक्कारखाने में तूती की आवाज-सी हो गयी है।

हम कह आये हैं कि गुन्जन में ही पंत की भावधारा की दिशा अचानक बदल गयी है। पल्लव का विषाद 'गुंजन' का आह्लाद बनकर प्रकट हुआ है। स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि गुंजन में आकर कवि की विचारधारा क्यों बदली। कवि एक सामाजिक प्राणी है। समाज की घटनाओं तथा परिस्थितियों की क्रिया-प्रतिक्रिया उसके मन-मस्तिष्क पर होती रहती है। आज का मनुष्य अपने को परिस्थितियों का दास समझता है। कवि भी कभी-कभी इनके चपेट में आ जाता है। 'जिस तरह जीवन पेचीदा है, उसी तरह काव्य की प्रेरणायें भी अनेक तत्त्वों, प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के योग, संगठन अथवा संश्लेषण का प्रतिफलन है।' पंत के जीवन में भी दुखद और सुखद परिस्थितियाँ आती-जाती रही हैं। मैं कह आया हूँ कि 'गुंजन' की पूर्ववर्त्ती रचनाओं में ये अपने व्यक्तिगत दुःख-विषाद की अनुभूतियों से विदग्ध थे। उन दिनों वे कहा करते थे—

प्रेम वंचित को तथा कंगाल को
है कहाँ आश्रय विरह का वलि में।

—ग्रंथि

× × ×

है स्वप्न-नीड़ मेरा भी जग उपवन में
मैं खग सा फिरता नीरव भाव-गगन में।

—'पल्लव'

इसके विपरीत, 'गुंजन' में वह हँसता हुआ नज़र आता है। उसकी यह हँसी किसी निराश प्रेमी की व्यंगात्मक हँसी नहीं है, वरन् एक गंभीर और संयत चितक का मनन है। उसकी जीवन की लालसा इन पंक्तियों में प्रकट हुई—

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन
× × ×
बरसो लघु-लघु तृण-तृण पर
× × ×
बरसो जग जीवन के घन।

कवि के हृदय में जीवन के प्रति जो उत्कट लालसा जगी है, उसका कारण क्या है। इसकी प्रेरणा उसे कहाँ से मिली। इन पंक्तियों में हमें उन्हीं कारणों की खोज करनी है।

'गुंजन' की रचना करने में पंत को अपने जीवन की परिस्थितियों से प्रेरणा मिली है। १९२७ से १९३० का काल कवि के जीवन में दुर्दिन का समय था। उन्हें दैविक और दैहिक विपत्तियों का सामना इसी काल में करना पड़ा था। सन् १९२८ में पिता की मृत्यु और अनेक पारिवारिक संकट ने कवि को जीवन और जगत् के प्रति उदास और पलायनवादी बना दिया था। १९२९ में वह जीवन और मृत्यु के बीच

झूला झूलने लगा जब वह लंबी बीमारी से बेतरह परीशान हुआ था। उसके जीने की कोई आशा नहीं थी। जीवन और मृत्यु के साथ अविरामसंघर्ष करते रहने के कारण उसकी मानसिक वेदना पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जिस तरह सूर्यास्त के बाद सूर्योदय का होना आवश्यक है उसी तरह पंत के जीवनाकाश पर सुदिन का सूर्योदय भी हुआ। उसके मन की कलियाँ खिल उठीं। उसका हृदय नाच उठा। सन् १९३१ उसके सुदिन का पहला सुनहला प्रभात लेकर उपस्थित हुआ। कालाकाँकर के उदारमना कुँवर सुरेशसिंह का सहयोग-संपर्क मिलने पर तथा कुँवर साहब की ओर से सारी सुविधाएँ मिलने पर कवि के जीवन की भाव-दिशा अचानक बदल गयी। 'पल्लव' का विषाद 'गुंजन' में उल्लास-आह्लाद में परिणत हो गया। लंबी बीमारी से मुक्त होने पर कवि ने जीवन और जगत का फिर से निरीक्षण और मनन-चिन्तन करना आरंभ किया। इस बार उसने कुछ नये सिद्धांतों की खोज की। उसने समझा कि सुख-दुःख जीवन के दो डैने हैं। दोनों के अस्तित्व पर कवि की आस्था जम गयी। उसने देखा कि एक मानव का दूसरे मानव पर विश्वास रखना बहुत आवश्यक है। इस तरह कालाकाँकर के कुँवर सुरेश सिंह जी की सहायता और सहयोग मिलने पर पंत की भावधारा एकदम बदल गयी। उसने यह अच्छी तरह जान लिया कि मानव-जीवन में सुख और दुख का अमर अस्तित्व है। दोनों एक दूसरे के सहायक और पूरक हैं। 'गुंजन' की यह परिस्थितिजन्य प्रेरणा कवि के लिये वरदान सिद्ध हुई। पंत के महान् तथा उन्नत व्यक्तित्व का प्रथम दर्शन 'गुंजन' में ही हुआ।

एक बात और, 'गुंजन' की रचना करने में कवि को अपने व्यापक अध्ययन से भी प्रेरणा मिली है। मैं कह आया हूँ कि पंत आरंभ से ही अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों की रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। अंग्रेजी कवि शेली (Shelley) कीट्स, (Keats)

टेनीसन (Tennyson) आदि कवियों तथा भारतीय मनीषी कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमिट छाप, पंत के व्यक्तित्व पर पड़ी थी। इनमें भी उन्होंने जितनी शेली की रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण की, उतनी अन्य कवियों से नहीं। शेली के आदर्श-लोक के सिद्धांत प्लैटोनिज्म (Platonism) के आधार पर इन्होंने भी एक आदर्श संसार की कल्पना की। 'गुंजन', 'ज्योत्स्ना' में एक ऐसे ही लोक का संदेश दिया गया है, जिसमें मानवता की मुक्ति, भ्रातृत्व-प्रेम, समानता, स्वतंत्रता, आध्यात्मिक पवित्रता एवं रूढ़ि-मुक्तता का रूप होगा। यह संसार एकान्ततः सुन्दर और मानवीय गुणों से युक्त होगा। 'गुंजन' में पंत ने हिन्दी संसार को जो भाव और विचार दिये हैं, वे कवि-कल्पना की भाँति मनोहर तथा दार्शनिकता की भाँति गहन हैं। मानव-विश्व अपने सम्पूर्ण भेद-भावों को भुलाकर आत्मा के स्नेह-साम्राज्य में अपने को नियंत्रित कर सके तो वह आनन्दमय वातावरण को प्राप्त कर सकता है, यही 'गुंजन' का आदर्शवाद है जिसकी नींव पर इसका भवन तैयार किया गया है। यह शेली का भावात्मक लोक है, जिसको पंत ने 'गुंजन' में अपना लिया है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'गुंजन' की रचना करने में पंत को भिन्न-भिन्न स्रोतों से प्रेरणा मिली है। काव्य में प्रेरणा का महत्व तब समझा जाता है जब कवि की प्रेरणाओं से पाठक भी प्रभावित होता है। एक अंग्रेज आलोचक ने ठीक ही कहा है कि—Inspiration is what the reception too must feel within the work.'[1]

[1] Dictionary of world Literatwe.

'गुञ्जन' का दर्शन

(Philosophy of Gunjan)

पन्त सुधार और जागरण-काल में पैदा हुये थे, इसलिये उन्हें अपने देश की संक्रान्ति-युग की विचारधारा का वाहक बनना पड़ा है। इन्होंने स्वयं कहा है कि 'मैं ऐतिहासिक विचारधारा से प्रभावित होता रहा हूँ क्योंकि मैं पराधीन देश का कवि हूँ।' अपने ही देश में इन्होंने कई प्रकार के सुधार और जागरण के प्रयत्नों को देखा है। उदाहरणार्थ, स्वामी दयानन्द का समाज-सुधार, जिसने मध्ययुग की संकीर्ण रुढ़ि-रीतियों के बन्धनों से जातियों और सम्प्रदायों में विभक्त हिन्दू-धर्म का उद्धार किया। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का युग आधुनिक भारतीय दर्शन के जागरण का युग रहा है। इन लोगों ने मनुष्य-जाति का कल्याण करने के लिये धार्मिक समन्वय करने का प्रयत्न किया था। 'विवेकानन्द के लिये आध्यात्मिकता एक उच्च माध्यम है, लोक-संग्रह के लिये; रामतीर्थ के लिये लोक-संग्रह एक सीमित माध्यम है, आध्यात्मिक जीवन के लिये।' परंतु दोनों ने लोक-संग्रह का ही पथ अपनाया। 'गुंजन' के दर्शन पर इसी लोक-संग्रही भाव का प्रभाव पड़ा है। अतएव, 'गुंजन' के दर्शन-तत्त्व की पहली विशेषता उसका लोक-संग्रही-भाव है। यह काव्य-पुस्तक पंत की रचनाओं का वह काव्य-केन्द्र है, जहाँ से हम उनके समस्त काव्य की आत्मा का दर्शन कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, जिस तरह महादेवी का मूल दर्शन 'रश्मि' के पृष्ठों में अभिव्यक्ति पा सका है, उसी तरह पंत की दार्शनिकता का सार 'गुञ्जन' के गीतों में सुरक्षित है। इसके लोक-संग्रही-भाव का उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :—

जग के उर्वर आँगन में,
बरसो ज्योतिर्मय जीवन।
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर,
हे चिर-अव्यय, चिर नूतन।

—गुंजन, पृ० ७६

'गुंजन' के दर्शन की दूसरी विशेषता पंत का सांस्कृतिक समन्वयी भाव है, जिसकी प्रेरणा कवि को डा० रवीन्द्र नाथ ठाकुर की काव्य-और महात्मा गाँधी की सत्य-अहिंसा-साधना से मिली। रवि-बाबू और महात्मा गाँधी विश्व-संस्कृति के समन्वय पर जोर देते रहे थे। पन्त ने 'गुंजन' में पूर्व और पश्चिम के दर्शनों को एक आधार देने की चेष्टा की है। वस्तुतः ये एक समन्यवादी कवि हैं। ये विशेषतः डा० टैगोर के जीवन-दर्शन से प्रभावित हुये हैं। साथ ही, भारतीय दर्शन, मानव-शास्त्र, (Authropology) विश्ववाद और अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों से भी प्रभावित हुये हैं। कवि को यह महसूस होने लगा है कि—

राजनीति का प्रश्न नहीं है
आज जगत् के सम्मुख,
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या,
जग के निकट उपस्थित।

— पंत

इसीलिये उसने साम्यवाद और गाँधीवाद का समुचित समन्वय करने की आवश्यकता समझी है। वह कहता है—

मनुष्यत्न का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य-योजना है अविवाद।

—पंत

गांधी की आत्मा, रवीन्द्र की रसात्मकता और मार्क्स की प्रगतिशीलता का सुन्दर समन्वय करना, पंत के कवि-व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। "इनमें विरोधाभास नहीं, बल्कि एक ही जीवन-सरिता की छंदोबद्धता है।" 'गुंजन' में कवि ने कहा है कि—

आत्मा है सरिता के भी
जिसमें है सरिता सरिता,
जल-जल है लहर-लहर रे,
गति-गति, सृति-सृति चिर भरिता

—गुंजन, पृ० १४

जीवन के भाव-सागर में लहर भी है, यह रवीन्द्र की छायावादी रसात्मकता है; उसमें सृति (मार्ग) है, यह गाँधीवाद की उन्मुक्त आत्मा है; उसमें गति भी है, यह मार्क्स की प्रगतिशीलता है।"[1]

'गुंजन' के दर्शन की तीसरी विशेषता यह है कि पंत ने दर्शन के संबंध में जितनी बातें कही हैं, वे उनके व्यक्तिगत अनुभव, अध्ययन और चिन्तन के परिणाम हैं। उनपर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था क्योंकि इस साहित्य का जितना व्यापक और विस्तृत अध्ययन पंत ने किया है, उतना हिन्दी के किसी भी दूसरे कवि ने नहीं किया। लेकिन यह प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है। मनन और चिन्तन की अग्नि में तप कर ही कवि ने किसी विश्वास को अपनाया है। उन्होंने उसका अनुसरण अवश्य किया है, अनुकरण नहीं। अध्ययन और अनुभव के आवरण को ओढ़कर, उसे मौलिकरूप देकर 'गुंजन' जैसे मौलिक दर्शन-काव्य की सर्जना उन्होंने ही की। पंत के दर्शनिक व्यक्तित्व पर, भारतीय दर्शन शास्त्र का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने स्वयं कहा है: "भारतीय दर्शन ने मेरे मन को

[1] सामयिकी, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

अस्थिर वस्तु-जगत् से हटाकर अधिक चिरन्तन भाव-जगत् में स्थापित कर दिया।" यद्यपि कवि ने 'अपने व्यक्तिगत सुख-दुख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को' 'गुंजन' में कम-से-कम वाणी दी है, उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है, तथापि इस काव्य-पुस्तक में कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमें विश्वजनीन दार्शनिकभाव कम और व्यक्तिगत निराशा, अधिक व्यक्त हो गयी है। उदाहरणार्थ :—

झर गई कली, झर गई कली!
चल सरित-पुलिन पर वह विकसी,
उर के सौरभ से सहज-बसी,
सरला प्रातः ही तो विहँसी,
रे कूद सलिल में गई चली!

—'गुंजन' पृ० ३७

यह गीत पंत के निराश प्रेम की सारी कहानी कह देता है। 'ग्रंथि' के पंत इसमें मुखर हो उठे हैं।

घोर लम्बी बीमारी के बाद (सन् १९२९) स्वस्थ होने पर पंत जब काला काँकर के राजकुमार के साथ रहने लगे, तब उनका संयत और गंभीर दार्शनिक उनके सामने प्रकट हुआ। 'गुंजन' में पहली बार कवि के स्वस्थ दार्शनिक विचारों की क्रमबद्धता देखने को मिली। लेकिन सच्चे अर्थ में पंत न तो दार्शनिक हैं और न आध्यात्मिक, वरन् मानव-हित-चिन्तक मात्र हैं। 'पल्लव' की प्रकृति के चितेरा पंत 'गुंजन' में मानव के सुख-दुख के चिन्तक हो गये हैं। इसलिये इसमें आध्यात्मिक भावों तथा विचारों को परिपुष्टि उतनी नहीं हुई है, जितनी हम महादेवी के काव्य में पाते हैं।

'गुंजन' में पंत, ईश्वर के संबंध में लगभग मौन ही हैं। उन्होंने इतना ही कहा है कि 'ईश्वर पर चिर-विश्वास मुझे।' लेकिन इस

ईश्वर के स्वरूप, स्थिति और सत्ता के बारे में ये चुप हैं। वस्तुतः ईश्वर, पंत के काव्य का विषय रहा ही नहीं। उनका ईश्वर न तो तुलसी के राम की तरह अवतारी है और न शंकर का अद्वैतवादी ब्रह्म। कवि का इस बात में तनिक भी विश्वास नहीं कि विशेष व्यक्तियों में ईश्वर की विशेष शक्ति पुँजीभूत हो जाती है। 'जीवन-सागर के निस्तल जल' में प्रवेश कर 'मोती वाली मछली' को पाने का वह अभिलाषी नहीं हैं। पंत का ईश्वर-संबन्धी विश्वास द्वैतवादियों (Dualists) जैसा है। कवि द्वैतभाव में इसलिये विश्वास रखता है कि द्वैत से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के स्वतंत्र महत्त्व की रक्षा की जा सकती है, जिसमें वह व्यक्ति जीवन के द्वंद्वात्मक सुख-दुख का अलग-अलग आनन्द ले सके। उदाहरणार्थ—

सुनता हूँ, इस निस्तल जल में,
रहती मछली मोती वाली।
पर मुझे डूबने का भय है,
भाती तट की चल-जल माली।

—गुञ्जन, पृ० ७१

कवि किनारे पर खड़ा-खड़ा ही जीवन-सरिता की लहरों का निरीक्षण करना चाहता है, उसकी तह में प्रवेश करना नहीं चाहता। उसे डर है कि ऐसा करने से कहीं उसके व्यक्तित्व का लोप न हो जाय। इससे यह स्पष्ट है कि पंत ने जीवन और जगत् को उपेक्षा तथा वैराग्य की दृष्टि से नहीं देखा है। उनकी दृष्टि में जगत् भी सत्य और जीवन भी सत्य है। हम अपनी नग्न आँखों से जो कुछ देखते हैं, वह सत्य है।

पंत के 'गुञ्जन' में, उनके दार्शनिक चिन्तन में, कुछ मौलिक सिद्धान्तों की उद्भावना हुई है। अद्वैत की स्थिति अमान्य होते हुये भी, उन्हें द्वैतभाव मान्य है। फिर भी, कवि रूढ़िगत द्वैतवाद को

सर्वांशतः स्वीकार नहीं करता। प्राचीन द्वैतवादी, प्रकृति की जड़ और चेतन की अलग-अलग सत्ता में विश्वास रखते थे। इसके विपरीत, पंत का कहना है कि जड़ और चेतन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों में स्पंदन और गति है। जड़ सदैव जड़ रहेगी और चेतन सदा चेतन रहेगा, यह सिद्धान्त कवि को मान्य है। उदाहरणार्थ—

शान्त सरोवर का उर,
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल-चंचल ?

—गुञ्जन', पृ० १२

× × ×

खोल कलियों ने उर का द्वार,
दे दिया उसको छवि का देश,
बजा भौरों ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे संदेश।

—गुञ्जन, पृ० ७३

पंत के दार्शनिक का यह दृढ़ विश्वास है कि समस्त प्रकृति में एक अलौकिक चेतन सत्ता काम कर रही है, उसमें प्राणों का स्पंदन है। कवि की दार्शनिकता में सर्ववाद (Pantheism) बोल रहा है। इस 'वाद' में किसी सगुण ईश्वर की सत्ता की कल्पना नहीं की जाती लेकिन समस्त जड़-चेतन प्रकृति में किसी विराट् चेतन सत्ता की झिलमिल झाँकी अवश्य मिलती रहती है। उस विराट् चैतन्य को 'गुञ्जन' में, कई स्थलों पर मूर्त रूप देने की चेष्टा की गयी है। प्रकृति के हर्षोत्फुल्ल रूप में, प्रियतमा की रूप-माधुरी में, अप्सरा के चित्र-विचित्र व्यापार में, शिशु की अनजान हँसी में, कवि उस अनुपम ईश्वर की सुन्दर छवि का दर्शन करता है। पंत ने 'ईश्वर' शब्द के स्थान

पर 'छविमान', 'रूपसि', 'शिशु' 'बन्धु' जैसे शब्दों का व्यवहार किया है। इससे यह स्पष्ट है कि उसने, उसको भिन्न-भिन्न वाह्य रूपों और स्थितियों में रखकर देखने का प्रयास किया है। उनका ईश्वर भावात्मक सौन्दर्य की अपार राशि है। पंत केवल 'सुन्दरम्' के कवि हैं। 'गुञ्जन' में कवि को सत्य और सौन्दर्य की उपलब्धि होती है। वह उस महासत्य (सुन्दर, ईश्वर) का सान्निध्य प्राप्त करने की ओर उन्मुख हुआ है। 'गुञ्जन' की अंतिम पंक्तियाँ यह स्पष्ट बता देती हैं कि कवि को सत्य और सौन्दर्य की झाँकी मिल गयी है, उसके मन का सारी कलुषता जाती रही है—

हो गये तुम से एकाकार,
प्राण में तुम और तुम में प्राण।

—गुञ्जन, पृ० १०८

उसने बार-बार यह शुभकामना प्रकट की है कि—

मेरा प्रतिपल सुन्दर,
सुन्दर दिन सुन्दर सुखकर हो

—गुञ्जन, पृ० ७२

'मानव' को भी वह 'सुन्दर' कहता है—'तुम सहज, सत्य, सुन्दर हो।' जीवन का चरम लक्ष्य, चरम सौन्दर्य को उपलब्ध करना है। उसका क्रम इस तरह है—

सुन्दर से नित सुन्दरतर
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे।
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन।

—गुञ्जन, पृ० २६

प्रो० नन्द दुलारे बाजपेयी के शब्दों में, 'गुंजन' में कवि अधिक आस्तिक बनने की संभावना प्रकट करता है।[1]

दार्शनिक तत्त्वों के विवेचन में 'ईश्वर' के बाद 'आत्मा' का स्थान आता है। पंत को आत्मा की असाधारण शक्ति में अटल विश्वास है। उनकी दृष्टि में आत्मा सत्य और सुन्दर है, 'चिर आदि और चिर अभिनव है'; वह 'सुषमा का शिशु' है; वह जग के 'बसन्त का वैभव', 'पुष्प का पराग' और 'साँसों का सौरभ' है। वह शुद्ध-प्रबुद्ध है।

आत्मा केवल मानव की ही सम्पत्ति नहीं, जड़-प्रकृति में भी है। उदाहरणार्थ,

आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता।

—गुंजन, पृ० १४

आत्मा की सत्ता-महत्ता में अडिग विश्वास रखते हुये भी पंत सृष्टि के विविध नाम-रूपात्मक साकार जगत् से प्रेम करते हैं। ये आत्मवादी तो हैं, पर उपनिषद् की गूढ़ता, रहस्यमयता और सूक्ष्मता, इनमें नहीं है। सृष्टि के जीव और जगत् के प्रति कवि के हृदय में गहरी ममता है। यहाँ तक कि ये संसार के द्वंद्वात्मक संघर्ष से मुक्ति पाने की कामना तक नहीं करते। ये अद्वैत ब्रह्म की सत्ता के साथ अपने व्यक्तित्व का तादात्म्य स्थापित करने के अभिलाषुक हैं। कवि को यह नाम-रूपात्मक परिवर्तनशील जगत् अधिक पसन्द है। वह कहता है—

मैं लहरों के तट पर बैठा,
देखूँगा उसकी छवि जी भर।

—'गुञ्जन', पृ० ७१

× × ×

[1] हिंदी साहित्य, बीसवीं सदी

प्रिय, मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु पशु, पक्षी नर-सुर-नर।

—गुञ्जन, पृ० २६

× × ×

सुन्दर मृदु मृदु रज का तन
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन।

—गुंजन, पृ० २६

कवि का यह विश्वास है कि जीवन का अवसान, विकास के लिये होता है और विकास की परिणति सौन्दर्य में होती है। सौन्दर्य की स्थिति, रूप-नाम-भेद में है, विश्व-वैचित्र्य में है, संसार की परिवर्तन-शीलता में है। सौन्दर्य के आंतरिक और वाह्य रूपों में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। अन्तर है तो हमारी दृष्टि का। सौन्दर्यानुभूति, पंत के मानस का चरम सत्य है। यह आत्मा का असाधारण गुण है। सुख-दुख की साम्यावस्था या समतावान स्थिति की अनुभूति तभी हो सकती है, जब आत्मा ऐन्द्रिक अनुभवों से परे हो जाय। इसके लिये दो बातों की आवश्यकता होगी—१. मनः साधना—मन पर नियंत्रण, २. आत्म-समर्पण। उदाहरणार्थ—

विश्व वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे, विधुर विधुर मन।

—गुञ्जन, पृ० ११

× × ×

नित्य कर्म-पथ पर तत्पर धर,
निर्मल कर अन्तर
पर सेवा का मृदु-पराग भर
मेरे मधु संचय में।
नीरव तार हृदय में।

—गुञ्जन, पृ० ८०

पंत की दृष्टि में मनःसाधना के लिये आत्म-विश्वास की आवश्यकता है—

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन।

—गुञ्जन, पृ० २८

× × ×

विश्वास चाहता है मन,
विश्वास पूर्ण जीवन पर
सुख-दुख के पुलिन डुबाकर,
लहराता जीवन-सागर।

—'गुञ्जन', पृ० २०

दर्शन-शास्त्र में सृष्टि के जन्म, विकास और ह्रास का भी सविस्तार वर्णन पाया जाता है। लेकिन पंत का दार्शनिक इसके सम्बन्ध में मौनावलंबन लिये बैठा है। सृष्टि के विकास के बारे में उसने सांख्यकारों की तरह इतना ही कहा है कि—

अणु-से विकसित जग-जीवन,
लघु अणु का गुरुतम साधन।

—गुंजन

कवि पंत को पुनर्जन्म तथा जन्म-मरण का पुरातन सिद्धान्त मान्य है। लेकिन जहाँ संसार के अन्य दार्शनिकों को जन्म-मरण-आवागमन खलता था, वहाँ पंत उसे 'चिर सुन्दर जन्म-मरण रे' कहते हैं। 'चिर जन्म-मरण के आर-पार शाश्वत जीवन नौका-विहार' कहकर उन्होंने भारतीय जन-साधारण के पुरातन विश्वास को जीवित रखा है।

'गुंजन' के दर्शन की सबसे बड़ी खूबी मौलिक भावों की उद्भावना में है। युग-युग के दार्शनिकों द्वारा याचित 'मुक्ति-मोक्ष' को ठुकरा कर पंत ने 'मधुर बन्धन' की कामना की है। पंत वस्तुतः आध्यात्मिक सौन्दर्य और विश्व-संस्कृति की एकता के कवि हैं। इसीलिये बन्धन इन्हें अभीष्ट हैं। मानव के दुःख-दैन्य से अनुप्राणित होने वाला कवि, एकान्त साधना और मुक्ति-कामना का आकांक्षी नहीं है। उसने स्पष्ट कहा है कि—

है सहज मुक्ति का मधुर क्षण
पर कठिन मुक्ति का बंधन।

—गुञ्जन, पृ० २८

कवि के लिये बंधन ही मुक्ति है और मुक्ति बंधन। वास्तव में हिन्दी काव्य-संसार में दर्शन की यह एक मौलिक सूझ है। पन्त ने इस के द्वारा नवयुग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व किया है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है कि 'गुंजन' में महादेवी-की-सी आध्यात्मिक दार्शनिकता तो नहीं है किन्तु एक भौतिक दार्शनिकता अवश्य है। पन्त में पहले जीवन के प्रति न आसक्त थी, न विरक्ति थी केवल सहज अनुरक्ति थी। किन्तु 'गुंजन' में कवि जीवन की आसक्ति की ओर चला गया है। इसीलिये यहाँ वह प्रकृति का कवि न होकर मानव-जीवन का कवि हो गया है और मानव उसे 'चिर अभिनव' 'चिर नवीन' और 'चिर सुन्दर' मालूम होता है। पन्त ने अपने काव्य-जीवन का आरंभ आध्यात्मिकता से नहीं, बल्कि भौतिकता से किया था। 'गुंजन' के बाद की रचनाओं में ये पूर्णतः भौतिकवादी हो गये; अद्वैतवाद का स्थान भौतिक साम्यवाद ने ले लिया।

अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था, युग-युग से निष्क्रिय निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करने, दिया साम्य ने वस्तु-विधान।

पन्त की दार्शनिकता में सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी प्रत्येक रचना में उनका भिन्न दर्शन है। 'गुंजन' का भावात्मक सौन्दर्यवादी दर्शन 'युगान्त' और 'युगवाणी' में नहीं रहा। लेकिन अब फिर वे 'स्वर्ण-धूलि' और स्वर्ण' किरण' आदि में 'गुंजन' की ओर चले आ रहे हैं। अतः 'गुंजन' पन्त की दार्शनिकता का वह केन्द्र-विन्दु है, जहाँ कवि की समस्त विचार-धाराएँ विवश होकर, घूम-फिर कर केन्द्रीभूत हो गयी हैं। 'गुंजन' कवि के दर्शन का वह केन्द्र है, जिसके चारों ओर उसकी भाव-उर्मियाँ चक्कर काटा करती हैं।

पन्त जी के 'गुंजन' की दार्शनिकता का आधार गांधीवाद है। रवि-बाबू का सौन्दर्यवाद और गांधी जी का मानव-प्रेम, इसकी सतह पर आ गये हैं। कवि के दार्शनिक को इन दो महापुरुषों ने प्रकाश-पथ दिया है। सम्प्रति उसके पथ के प्रदर्शक विश्व-विख्यात आधुनिकतम दार्शनिक श्री अरविन्द हैं।

'गुंजन' में सत्यं, शिवं और सुन्दरं की अभिव्यक्ति हुई है। काव्य में इनकी महत्ता है। इनमें सौन्दर्य सर्वोपरि है। साहित्य में सत्य और शिव की युगलमूर्ति को सौन्दर्य का स्वर्णावरण पहना कर ही उनकी उपासना की जाती है। सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की त्रिमूर्ति में, एक ही चिरन्तन सत्य की प्रतिष्ठा की जाती है। सत्य कर्त्तव्य-पथ में आकर शिव बन जाता है और भावना से समन्वित होकर 'सुन्दरम्' का रूप धारण कर लेता है। सुन्दर सत्य का ही परिष्कृत तथा चरम रूप है। सौन्दर्य सत्य की ही चरम अभिव्यक्ति है। संसार के महान् कवियों ने इन्हीं त्रिमूर्तियों को पाने की सतत चेष्टा की है। पंत ऐसे ही कवियों में एक हैं। 'गुंजन' में इन्होंने सत्यं, शिवं और सुन्दरं को पकड़ में लाने

का सफल प्रयास किया है। पंत ने इन तीनों में 'सुन्दरम्' को सर्वोपरि स्थान दिया है। उन्होंने कहा है—

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप,
हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनों में लावन्य अनूप,
लोक-सेवा में शिव अविकार

—पंत

अंग्रेजी कवि कालरिज (Colridge) ने भी सत्य और सौन्दर्य में तादात्म्य बतलाते हुये कहा था कि सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य, मनुष्य यही जानता है और यही जानने की आवश्यकता है—

'Beauty is truth, truth beauty, that is all ye know and all ye need to know.'

पंत की दृष्टि में सत्यविचारों का आंतरिक और वाह्य संगीत है, इसके लिये सुन्दर विश्वास की आवश्यकता है—

सुन्दर विश्वासों से ही,
बनता रे सुखमय जीवन।

—गुञ्जन, पृ० २८

शिव लौकिक व्यक्तियों की भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित कर उनको सुसंगठित और सुसंपन्न एकता की ओर ले जाय, भेद में अभेद की भावना भरे, यही सत्य का आदर्श है और यही शिव का मापदण्ड भी है। सौन्दर्य एक अनुभूति है। इसका उद्भव विरोधी भावों का किसी एक केन्द्रीय भाव पर स्थिर होने से होता है। सौन्दर्य हमारी जिज्ञासा की शान्ति और अनुभूति का संतुलन है। कीट्स ने भी कहा था कि—

'Beauty is essentially an experience as something fall a glow or a communicated sense of fineness.'

पंत के व्यक्तित्व में प्रकृति के बाह्य रूपों के प्रति प्रगाढ़ अनुराग

होने के कारण सौन्दर्य की यह अनुभूति बड़ी तीव्र है। सौन्दर्यानुभूति उनके कवि की टेक बन गई है। 'गुंजन' का अन्त सौन्दर्य की विजय तथा सत्य और सौन्दर्य के तादात्म्य में हुआ है। सत्य और शिव की परिणति 'सुन्दर' में हुई है। यही 'गुंजन'-काव्य का चरम उद्देश्य है। छविमान (सौन्दर्य) को संबोधित करता हुआ कवि कहता है—

बन्धु ! गीतों के पंख पसार
प्राण मेरे स्वर में लयमान,
हो गये तुमसे एकाकार,
प्राण में तुम और तुम में प्राण

—गुंजन, पृ० ११८

इस एकाकारिता में तन्मयता और बहके हुए चंचल मन की शांति है। इसलिये कवि ने अन्यत्र कहा है—

यह नव-नव पल का जीवन
प्रतिपल तन्मय, तन्मय हो।

—गुंजन, पृ० ७२

'गुंजन' का कवि सत्य और सौन्दर्य का वास्तविक साक्षात्कार कर सका है। जहाँ 'पल्लव' में वह व्यक्तिगत प्रेम के विरह, स्वप्न, उच्छ्वास के गीत गाता था वहाँ 'गुंजन' में वह विश्व की वास्तविकता, जीवन की सत्यता, सृष्टि के रहस्यों, मानव की उच्चता को अच्छी तरह समझ सका है। यहाँ का सौन्दर्य वाह्य न होकर भावात्मक, आध्यात्मिक और अलौकिक हो गया है। कवि ने उस शाश्वत सौन्दर्य का दर्शन किया है जो कभी मरता नहीं, बदलता नहीं, जो अजर अमर और अविनाशी है। वह व्यक्ति के सीमित दृष्टिकोण का परिणाम नहीं है। वह सार्वभौम सृष्टि के विविधनाम रूपों में व्याप्त है—प्रेयसी की

मधुर मुस्कान में, अप्सरा के अतुलनीय रूप-विधान में और चाँदनी के शीतल परिधान में।

मूलतः पंत दार्शनिक नहीं, बल्कि मानव-संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

दर्शन-युग का अन्त, अन्त अन्त विज्ञानों का संघर्षण
अब दर्शन-विज्ञान-सत्य, करता नव्य निरूपण।

कवि की दृष्टि में दर्शन-युग कभी ही समाप्त हो चुका, विज्ञान का भी इतना चरम उत्कर्ष हुआ कि अब कुछ शेष नहीं रहा। आज दर्शन और विज्ञान सांस्कृतिक सत्य की खोज कर रहे हैं। तभी तो आइन्स्टाइन जैसे विश्व-विख्यात वैज्ञानिक संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) के मंत्री ट्रिगलाई के द्वारा रूस के भाग्य-विधाता स्टालिन से विश्व-संस्कृति की रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। पंत जी का कहना है कि 'यदि भावी समाज मनुष्य को रोटी की समस्या से मुक्त कर सका तो उसके लिये केवल सांस्कृतिक संघर्ष का प्रश्न ही शेष रह जायगा।' कवि इसी 'सांस्कृतिक संघर्ष' के प्रश्न का समाधान निकालने में प्रयत्न-शील है। 'गुंजन' में पंत ने जिस जीवन की समुचित व्यवस्था की है—सुख-दुख का दर्शन—उसका आधार विश्व-संस्कृति है। आज भी यह कवि इसी की रक्षा के लिये आकुल-व्याकुल है। 'गुंजन' का मानव-प्रेमी कवि कहता है—

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष-विमर्शों का
लगता अपूर्ण मानव-जीवन।

—गुंजन

'गुंजन' का दर्शन लोक-कल्याण परक होते हुये भी यह अंग्रेज

लेखक सर थौमस मूर (Sir Thomas Moore) का युटोपियन आइडियल (Utopian ideal) जैसा लगता है। इस पर अंग्रेजी कवि शेली (Shelley) के प्लैटोनिज्म (Platonism) का प्रभाव पड़ा मालूम होता है। 'गुंजन' में जिस लोक की सृष्टि की गयी है, वह शेली के प्रोमेथियस अनवाउन्ड (Prometheus Unbound) जैसा काल्पनिक और स्वप्निल है, जिसमें स्नेह, सौन्दर्य और सहानुभूति का प्रचार और प्रेम का नवीन स्वर्ग, स्वर्ग का नवीन आलोक और जीवन का नूतन आदर्श होगा—यह शेली की आदर्श-भावना से मिलती जुलती है। शेली (Shelley) ने भी 'गुंजन' की ही तरह अपनी प्रसिद्ध काव्य-पुस्तक ('Prometheus Unbound') में एक ऐसे ही लोक-जीवन की कल्पना की थी जिसमें मानवता की मुक्ति, भ्रातृत्व-प्रेम, समानता, स्वतंत्रता , आध्यात्मिक पवित्रता तथा रुढ़ि-मुक्तता का प्रचार होगा। यह संसार एकान्ततः सुन्दर और मानव के अनुकूल होगा। प्रश्न यह है कि क्या इस तरह का पूर्ण संसार संभव है ? महात्मा गाँधी ने जिस 'रामराज्य' का स्वप्न देखा था, क्या उसका दशांश भी आज उपलब्ध हो सका है ? अंग्रेजी लेखक थौमस मूर (Thomas Moore) ने जिस आदर्शराज्य की कल्पना आज से ५००-६०० वर्ष पहले की थी, क्या इस पृथ्वी पर वह स्थापित हो सका है ? पंत का भाव-संसार भी उनके भावुक हृदय के सुनहले सपनों की नींव पर खड़ा है। इसमें सत्यता कितनी है, इसका निर्णय भविष्य ही करेगा। यद्यपि पंतने 'गुंजन' में अपने दार्शनिक विचारों को परिमार्जित कर भारत की ½ आध्यामिकता और पश्चिम की ½ भौतिकता का समन्वय उपस्थित करने की चेष्टा की है तथापि उनका दर्शन व्यावहारिक है या नहीं, इसका उत्तर आज देना कठिन है। पन्त को विवश होकर अपनी परवर्ती रचनाओं में 'गुंजन' की विचारधाराओं को बदल देना पड़ा है। अपने द्वारा सम्पादित 'रुपाभ' के प्रथम अंक में अपने दिग्परिवर्तन का, थोड़े ही शब्दों में, उन्होंने बड़ा ही मार्मिक कारण दिया है—'कविता के स्वप्न-भवन

को छोड़कर हम इस खुरदुरे पथ पर क्यों उतर आये—इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्नरूप से सहम गई है। अतएव, इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती।' आज पन्त ने युग की वास्तविकता का आमंत्रण अवश्य स्वीकार कर लिया है, किन्तु वस्तु-जगत् का प्रतिनिधित्व उनसे अभी तक न हो सका है। वे अपने स्वप्नजनित स्वभाव से विवश हैं। उनकी जन्मजात टेक—सौन्दर्योल्लास—आज भी यत्र-तत्र व्यक्त हो ही जाती है—

अकेली सुन्दरता कल्याणी !
सकल ऐश्वर्यों का संधान !

पंत ने 'गुंजन' में जिस दर्शन का प्रयोगात्मक रूप (Experimental Shape) दिया है वह वस्तु-जगत् की कठोर वास्तविकता से कोसों दूर है। हाँ, उन्होंने जिस भव्य-संसार की कल्पना की है, वह सुन्दर और मनोरम अवश्य है।

आज की माँग है—यथार्थ दृष्टिकोण अपनाओ। कला को जीवन की वास्तविकता के तंतुओं से बाँधना, आज के कलाकारों का उद्देश्य है। आज के हिन्दी-कवि छायावाद की कुहेलिका से बाहर निकल आये हैं। हिन्दी के विद्वान् आलोचक प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ने मुज़फ्फरपुर (बिहार) में नव-स्थापित सर्वोदय परिषद् के तत्त्वावधान में होने वाली पहली सभा में, सभापति के पद से बोलते हुये जो कुछ कहा था, उसका अंग्रेजी-रूपान्तर 'इन्डियन नेशन' में छपा था, जो इस प्रकार है—

'No doubt, the role of an artist is to create things of beauty but .beauty divorced from the realities of life had no meanig and value. The feelings of emotions of common people, their joys and sorrows' hopes and irations should be refglected in literature & millions of people should draw inspiration, from them[1] पंत का 'गुंजन' इन पंक्तियों में दिये गये विचारों से कहाँ तक साम्य-संबंध रखता है, इसका निर्णय स्वयं पाठक कर लेंगे। यह सच है कि इस काव्य-पुस्तक में जिस दर्शन का निरूपण किया गया है, वह बहुत कुछ अव्यावहारिक है, फिर भी यह मानना होगा कि 'गुंजन' का जीवन-दर्शन बिलकुल नवीन और व्यावहारिक हो सकता है।

---

[1] इन्डियन नेशन (१४-५-५०)

'गुञ्जन' का जीवन-दर्शन

(Philosophy of Life)

म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्म-बलिदान,
जगत् केवल आदान-प्रदान।

—पंत, *'युगवाणी'*

'आधुनिक कवि' की भूमिका में पन्त ने लिखा है कि 'गुञ्जन' में मेरी बहिर्मुखी प्रकृति, सुख-दुख में समत्व स्थापित कर, अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है।' वास्तव में 'गुञ्जन' में कवि की प्रवृत्ति और दृष्टि अन्तर्मुखी ही है। जीवन के चिरन्तन प्रश्नों का समाधान उसने गंभीर चिन्तन कर लेने के उपरान्त ही स्थिर किया है। वर्तमान हिन्दी कवियों में पन्त का जीवन-दर्शन सबसे अधिक सबल और आशावादी है। इस क्षेत्र में महादेवी और पंत की प्रकृति में तीन-छः जैसी स्थिति है। पन्त शुरू से ही साकारता की ओर उन्मुख रहे हैं, महादेवी निराकारता की ओर। महादेवी कहती हैं—

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चंद,
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?
अरे, अस्थिर छोटे जीवन!

इसके विपरीत पंत कहते हैं—

सच है, जीवन के बसन्त में
रहता है पतझार,
वर्ण-गन्धमय कलि-कुसुमों का
पर ऐश्वर्य अपार।

महादेवी ने जिस सत्य को 'एक मिटने में सौ वरदान' कहकर जीवन का आध्यात्मिक दर्शन दिया है, पन्त ने उसी सत्य को जीवन का भौतिक दर्शन दे दिया है। आज पन्त के कलात्मक टेकनिक भले ही बदल गये हों, किन्तु मूलतः आज उनका दृष्टिकोण वही है, जो उनके पूर्व के काव्यों में था। हाँ, उनका दृष्टिकोण पहले भावात्मक था, अब व्यावहारिक हो गया है। महादेवी स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर गयी हैं—शरीर से मूर्ति, मूर्ति से चित्र, चित्र से संगीत (आत्मा)। पन्त सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर उन्मुख हुये हैं—संगीत से चित्र, चित्र से मूर्ति, मूर्ति से शरीर की मांसलता की ओर।' 'ग्राम्या' के बाद, ये फिर जीवन की सूक्ष्मता की ओर लौट रहे हैं। 'गुञ्जन' पंत के सूक्ष्म जीवन-चिंतन का प्रथम विस्फोट है जिसमें उन्होंने जीवन के मौलिक और चिरंतन प्रश्नों पर गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया है। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण निष्पक्ष और समन्वयवादी है। यह दृष्टिकोण व्यावहारिक है या नहीं, यह एक स्वतंत्र प्रश्न होगा। जीवन में सुख और दुख दोनों हैं। दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र हैं और उनका पारस्परिक संबंध भी है। सुख-दुख पंत के काव्य का बड़ा ही प्रिय विषय रहा है। 'गुञ्जन' में जीवन के इस पक्ष पर अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है। मैं यह बतला चुका हूँ कि 'गुञ्जन' में जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण उदार है। यहाँ वह अपने जीवन में पहली बार उल्लास और आह्लाद से पुलकित हुआ है। इसका कारण मैं बता आया हूँ।

'पल्लव'-काल में अपने पूज्य पिता का स्वर्गवास और अपनी रुग्णावस्था दोनों ने मिलकर कवि को जर्जरीभूत कर दिया था। परन्तु शीघ्र ही ईश्वर की कृपा से स्वस्थ होकर, उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया; उसमें नव आशा, नव अभिलाषा का संचार हो उठा। उसने 'पल्लव' का करुणा-क्लिष्ट भाव त्याग दिया। अब उसका मन-मधुप जीवन का मधु-संचय करने के लिये उन्मन होने लगा। 'गुञ्जन' का प्रथम गीत, कवि के इसी परिवर्तित भाव या दृष्टिकोण का द्योतक है। 'गुञ्जन' के जीवन-दर्शन की यही पृष्ठभूमि है जिस पर कवि ने अपने विश्वासों को, अपने विचारों को खड़ा किया है।

संसार में सदैव भीषण संघर्ष चलता रहा है। ज्ञान की आँखें खोलने पर मनुष्य शैशवावस्था से वृद्धावस्था तक तरह-तरह की पीड़ाओं तथा संघर्षों से लड़ता रहा है। ये संघर्ष उसे रुचिकर प्रतीत नहीं होते और उनसे विमुक्त होना भी रुचिकर प्रतीत नहीं होता क्योंकि संघर्षों से विमुक्त होने का मतलब होगा भूखा रहना और अन्ततः मर जाना। संघर्ष किये बिना रोटी मिलना भी कठिन है। इसी रोटी के लिये वह संघर्ष से मुक्त होना भी नहीं चाहता। मनुष्य के जीवन की यह अद्‌भुत असंगति है। वह जिस संघर्षमय जीवन में जीवित रहना चाहता है, उसी से वह मुक्ति पाना भी चाहता है! जीवन-संघर्ष का मूल कारण दुख की अतिशयता है। ऐसा युग-युग के विचारकों ने बताया है। इस संबंध में सब लोगों का एक मत है कि जीवन में दुख की अतिशयता है और इससे मुक्त होना मनुष्य-जीवन का चरम उद्देश्य है। मानव-जाति, अनादि-काल से इस बात की चेष्टा करती आयी है कि उसके दुखों का सम्पूर्ण विनाश-साधन हो और सुख की नित्य-नूतन धाराएँ उसके जीवन में प्रवाहित होती रहें। अपने जीवन-कानन से पतझड़ की रसहीनता दूर करके, उसमें ऋतुराज की उन्मादकता और श्री-सुषमा सन्निविष्ट करने का प्रयास वह सदैव

करती आ रही है और उसके इसी प्रयास को ही उसे वर्त्तमान स्वरूप प्रदान करने का श्रेय है। ये अट्टालिकाएँ, ये शृंगार-प्रसाधनों से सुसज्जित प्रकोष्ठ, ये बड़े-बड़े नगर, ये सिनेमा-हाल, ये विद्यालय, ये वेश्याओं के नूपुर की छूम-छनन इन सब की उत्पत्ति और प्रवर्द्धन का श्रेय मानव-जाति के उन प्रयासों को ही है, जिनका उद्देश्य सुख की उपलब्धि और दुख का निराकरण है। किन्तु दुर्भाग्यवश ये समस्तसाधन मानव को वह सुख नहीं प्रदान कर पाते, जिसकी कामना वह हज़ारों वर्षों से उसके अंतस्तल में विस्फूर्जित होती रही है। इनसे उसे सुख की उपलब्धि होती है, लेकिन वह सुख मन-प्राण को उल्लासित करने के बदले,—उसके हृदय को अभिनव आह्लाद से भरने के बदले, उसे ऐसे-ऐसे दुखों का,—ऐसी-ऐसी सर्वनाशी यंत्रणाओं का सहचर बनना, पड़ता है कि वह भय से काँप उठता है। वर्तमान सभ्यता में अशांति का यही मूल कारण है। विज्ञान के संपन्न प्रसाधनों ने, जहाँ मनुष्य को हर तरह सुखी बनाया है वहीं सब तरह की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी वह अशान्त है, उसका मन उन्मन है। आज का मनुष्य भौतिकवादी है। अध्यात्म को उसने अस्वीकृत कर दिया है। वर्तमान संसार की जर्जर सभ्यता की नींव पर 'गुंजन' का जीवन-दर्शन खड़ा किया गया है। पंत ने यह अच्छी तरह जान लिया है कि आज भौतिकता की धारा तीव्र गति से बह रही है और उस धारा में मानव तिनके की तरह बहता चला जा रहा है। उसकी रक्षा के लिये कवि का मन अशान्त और उन्मन हो उठा है। 'गुंजन' में मानव के वर्तमान अशान्त जीवन के मूल कारणों की खोज की गई है।

कुछ लोग पंत के जीवन-दर्शन की विवेचना करते समय यह शुरू में ही मान लेते हैं कि कवि समाजवादी है या गांधीवादी लेकिन सच तो यह है कि 'पन्त न तो समाजवाद से विमुख हैं और न गांधीवाद से; वे दोनों के सम्मुख हैं। दोनों के भीतर जो सत्य है, उन्हें स्वीकार करके वे दोनों की अपूर्णताओं की, एक दूसरे से पूर्त्ति चाहते हैं; यो

कहें, वे आत्मा की भी भूख मिटाना चाहते हैं और शरीर की भूख भी। मुख्यतः पंत में आत्मा की भूख के लिये अधिक आस्था है, इसीलिये वे उसके प्रति प्रश्नोन्मुख होकर भी नतमस्तक हैं।'[1] वर्तमान युग के भौतिकवादियों को चुनौती देते हुये 'युगवाणी' में पंत ने कहा है कि—

आत्मवाद पर हँसते हो रट भौतिकता का नाम ?
मानवता की मूर्त्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?

वर्तमान सभ्यता ने मनुष्य को 'चाम सँवारने' की ही शिक्षा दी है, आत्मा की शक्ति में उसका तनिक भी विश्वास न रहा। अशांति का मूल कारण यही है।

कुछ लोगों का कहना है कि आज का मनुष्य जितना दुखी है उतना वह कभी नहीं हुआ था। यह सच है कि आज का विश्व अशान्त है, शांति के लिये वह हाहाकार कर रहा है। लेकिन इस दुख का संबंध भौतिकता से अधिक है। इतिहास बतलाता है कि प्रत्येक युग में मनुष्य दुखी रहा है। लोगों के जीवन में क्लेशों का आधिक्य देखकर, कपिलवस्तु का राजकुमार दुखों से मुक्त होने के उपायों का अन्वेषण करने के लिये, निशीथ की नीरवता में कोमलांगी पत्नी के आलिंगन-पाश से अपने को मुक्त करके, अज्ञात दिशा की ओर चल पड़ा था। भारत के उस सम्पन्न युग में भी दुखों का आधिक्य था—मनुष्य तरह-तरह के क्लेशों से संत्रस्त रहा करता था। यह ठीक है कि मानव की विचार-शक्ति और मनन-शक्ति का जैसा विकास वर्तमान युग में हुआ है, वैसा कभी नहीं हुआ था। साथ ही, यह भी सच है कि आज का मनुष्य जितना गिरा है, उतना कभी नहीं गिरा था। आज वह जितना दुख और मुसीबतों से भयातुर और चिंतित है, उतना वह कभी नहीं हुआ था। इसका एक मात्र कारण है

[1] युग और साहित्य, पृ० ३४६-४७

नास्तिक विचारों का अधिकाधिक प्रोत्साहन। आज आत्मा और परमात्मा की शाश्वत शक्ति पर उसकी आस्था जाती रही। 'गुंजन' का कवि आस्तिक है—'ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे।' मनुष्य का जीवन और उसकी सत्ता चिरन्तन है। साम्यवादी सिद्धान्त—मनुष्य का जन्म एक बार होता है और वह एक ही बार मरता है—पन्त को अमान्य है। उनके मतानुसार जीवन शाश्वत सत्य है, मनुष्य का जीवन भी चिन्तन सत्य है। शरीर का नाश होता है, आत्मा का विनाश नहीं होता—

चिर जन्म-मरण के आर पार
शाश्वत जीवन नौका-विहार।

—'गुंजन', पृ० १०४

'गुंजन' के जीवन-दर्शन को अच्छी तरह समझने के लिये पन्त के दर्शन (Philosophy) को अच्छी तरह हृदयंगम कर लेना चाहिये, तभी हम जीवन के प्रति उनके विश्वासों तथा मान्यताओं को भली भाँति समझ सकेंगे। पन्त के दर्शन पर हम पिछले पृष्ठों में प्रकाश डाल चुके हैं। संक्षेप में, यहाँ यह समझ लेना चाहिये कि पन्त के लिये ईश्वर, जीव और प्रकृति-सभी नित्य-चिरन्तन सत्य हैं और इन तीनों का एक दूसरे के साथ पारस्परिक संबंध-व्यापार है। समस्त जगत को कवि, हृदय से प्रेम करता है—

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुखर,
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर;

—गुंजन, पृ० २६

'गुंजन' के कवि की दृष्टि में सृष्टि के सभी उपादान 'सुन्दर' अनादि, शुभ और अमर' हैं। दुनिया की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो

नाशवान है। जगत् के प्रति आह्लादमय दृष्टिकोण अपनाकर पंत ने अपने काव्य का प्रिय विषय जीवन के दोनों पहलुओं—सुख और दुख-का विवेचन किया है। सुख-दुःख का यह विवेचन 'गुंजन'-काव्य की आत्मा का सार है। कुछ कवि ऐसे होते हैं जो जीवन भर दुख या सुख के साथ अपना ग्रंथि-बंधन कर लेते हैं और इस तरह उनकी सारी रचनाओं में एक ही स्वर बजता रहता है। महादेवी की रचनाओं में दुख, वेदना तथा पीड़ा का एक स्वर सुनाई पड़ता है, इसके विपरीत, पन्त अपनी रचनाओं में जीवन में सुख-दुख दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। यह इस कवि के स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचायक है।

जीवन में दुख है, यह अशांति का कारण है। संसार की कोई सभ्यता रही हो, कोई जाति रही हो, कोई राष्ट्र रहा हो, दुखों से मुक्त कोई भी नहीं हो सका। श्मशान की पावसकालीन निशीथिनी-सी भयंकर वेदनामयी अश्रुधारा से किसी का जीवन भी अलग नहीं रह पाया। सुखों की कौमुदी, जीवन के अंतरिक्ष को शृंगारित करने के लिये, राशि-राशि मधु-मादकता लेकर आयी अवश्य, लेकिन थोड़े दिनों के लिये। प्रत्येक प्रयास को जब असफलता के द्वारा पुरस्कृत होना पड़ा तो कुछ चिन्तन-शील व्यक्तियों ने, मानव जीवन को अभिशाप समझना आरंभ कर दिया। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि मानव-जीवन और दुख का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। दोनों को एक दूसरे से विमुक्त करना असंभव है। उन्हें जन्म में दुख दिखलायी देने लगा—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था में दुख-ही-दुख दिखाई पड़ने लगे; मृत्यु में भी दुख की झाँकी मिलने लगी। इसी दुख की अतिशयता से घबड़ा कर पन्त जवानी के चंचल दिनों में ही चीत्कार कर उठे थे—

हा! अभ्य भवितव्यते! किस प्रलय के
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ?

वात, उल्का, वज्र औ' भूकम्प को
कूट, क्या तेरा हृदय विधि ने गढ़ा।

—ग्रंथि

× × ×

वेदना ! कैसा करुण उद्गार है !
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना ।

—ग्रंथि, पृ० ८७

आखिर इसका क्या कारण है ? संसार में दुख की अधिकता क्यों है ? विश्व के मनीषियों ने दुःखों के कारणों को जानने की आप्राण चेष्टाएँ की हैं और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उन्होंने उनको जाना भी है। लेकिन उनके द्वारा प्रतिपादित कारणों में कोई बलिष्ट ऐक्य-भाव दृष्टिगत नहीं होता। इसलिये पन्त के जीवन-दर्शन से किसी का मतभेद होना स्वाभाविक बात होगी। जीवन में दुख हैं। इन दुखों को समझने के लिये जीवन को समझना होगा। जीवन की वास्तविकता से अभिज्ञ हुये बिना दुखों की वास्तविकता से अभिज्ञ होना असंभव है।

जीवन ही दुख का कारण है। यदि हम जीवन को नष्ट कर दें तो हमारे दुखों का भी नाश हो जाय, ऐसा हम थोड़ी देर के लिये सोच सकते हैं क्योंकि हमारे वर्तमान जीवन के समस्त सुख-दुखों का आधार, हमारा वर्तमान जीवन ही होता है। साथ ही, जीवन को समझने के लिये सारे संसार को समझना होगा, क्योंकि जीवन अपने को संसार से स्वतंत्र नहीं रख सकता। संसार है, तभी

जीवन है, तभी दुख है। इनका पारस्परिक संबंध है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। 'गुंजन' में जिस दुख-सुख का विवेचन किया गया है, वह एक देशीय न होकर, विश्व-जनीन है। पन्त ने जीवन के चिरन्तन प्रश्नों का उचित समाधान निकालने का प्रयास किया है। गहन चिन्तन, गंभीर मनन और व्यापक अध्ययन के उपरान्त कवि ने जो कुछ पाया, वही उसका जीवन-दर्शन है। वस्तुतः पन्त का जीवन-दर्शन उनके चिन्तन, मनन और अध्ययन का परिणाम है।

पन्त ने लिखा है कि 'पल्लव और गुंजन-काल के बीच में मेरी किशोर भावना का सौन्दर्य-स्वप्न टूट गया। दर्शन शास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे राग-तत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।'[१] इसी काल में कवि ने ईश्वर, जीव, मुक्ति आदि पर विचार किया जिसका निष्कर्ष 'गुंजन' की १६३२ ई० की रचनाओं में पाया जाता है। 'गुंजन' का जीवन-दर्शन सन् १६३२ के गीतों में सन्निहित है। कवि सौन्दर्य-लोक से उतर कर नीचे आया और मानव के चिरन्तन भाव-जगत में प्रवेश किया। १६३० के स्वदेशी आंदोलन की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप वह पीड़ित मानव के सुख-दुख से विकल हो उठा। इस तरह 'पल्लव' का व्योमविहारी 'गीत खग' 'गुंजन' में जीवन के विटप पर उतर आया। कवि ने जीवन-तरु की डालियों का निरीक्षण किया और पाया कि इस तरु की डाली में कुछ 'सुख के तरुण फूल' हैं और कुछ 'दुख के करुण शूल' भी हैं। मानव-उर के आँचल को जहाँ पराग ने सुवासित किया है, वहाँ काँटों ने उसे झाँझर भी किया है।[२]

---

[१] आधुनिक कवि, पृ० ४

[२] साहित्य संदेश, अप्रिल, १६५०, पृ० ३६७

देखूँ सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुख के करुण शूल,
सुख-दुख न कोई सका भूल ?

—गुंजन, पृ० १७

अब प्रश्न यह होता है कि दुख का जन्म कैसे होता है ? बात यह है कि 'मनुष्य सुख की कामना करता रहता है—निरन्तर सुख-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है। किन्तु उसे दुख ही अधिक मिलता है; पग-पग पर उसे 'कुटिल काँटों' का सामना करना पड़ता है—उसके शरीर लहू-लुहान हो जाते हैं। यह कैसी असंगति है ? कवि जीवन की इस पहेली पर विचार करता है और अन्त में पाता है कि हमारे दुखों की जड़ में हमारी मृग-तृष्णा है—हमारी अमर्यादित अभिलाषाएँ हैं—हमारी 'अति इच्छा' जीवन को सुखमय बनने नहीं देती। इसीलिये जीवन में रुदन, असंतोष और दुख की अधिकता है—

बह जाता बहने का सुख,
लहरों का कलरव नर्तन
बढ़ने की अति इच्छा में,
जाता जीवन से जीवन।

—गुंजन, पृ० १४

वास्तव में वर्तमान सभ्यता की अशांति का मूल कारण 'बढ़ने की अति इच्छा' ही है। आज का युग प्रतियोगिता (Competition) का है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'बढ़ने की 'अति इच्छा' (प्रतियोगिता) का ही बोलवाला है। रूस दुनिया के तमाम देशों से आगे बढ़ जाना चाहता है, अमेरिका-इंग्लैण्ड भी उसकी बढ़ती हुई इच्छा पर पानी

फेरना चाहते हैं, ताकि वह उनके मुकाबले में आगे न बढ़ सके। आज के युग में मनुष्य राजनीति, अर्थनीति और विज्ञान-नीति का, अच्छी तरह शिकार हो चुका है। व्यापारिक क्षेत्र में भी यही 'अति इच्छा' सर्वोपरि है। पन्त ने उपर्युक्त पंक्तियों में वर्तमान अशांति तथा असंतोष का वास्तविक कारण ढूढ़ निकाला है, इसमें कोई संदेह नहीं। कवि जब संसार के कोने-कोने में अपनी आँखें दौड़ाता है, तो वह पाता है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो दुखों के आधिक्य से पीड़ित हैं और कुछ लोग ऐसे हैं जो सुखों के भार से विकल हैं—

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग-पीड़ित रे अति-सुख से।

वर्तमान संसार की वास्तविक गति-विधि यही है—कुछ लोगों का शोषण हो रहा है और कुछ लोग मौज मार रहे हैं। लेकिन कवि की दृष्टि में दोनों मानसिक अनुताप से 'पीड़ित' हैं। आज जो मनुष्य अपने को सुखी कहता है, वह भौतिकता के भार से दबता जा रहा है और जो वास्तव में दुखी है उसका शरीर जर्जर हो गया है और उसकी आत्मा मरती जा रही है। इसलिये कवि की दृष्टि में इन दोनों पीड़ितों को औषधि की आवश्यकता है। कवि कहता है कि जिस तरह शहद में मधुप के पर भींग जाने पर वह गुञ्जार नहीं कर पाता वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाता है, उसी तरह अत्यधिक सुखों में निर्लिप्त रहने वाला मनुष्य सुखों के वास्तविक आनन्द की उपलब्धि नहीं कर सकता। उसका जीवन शिथिल, निष्क्रिय, और पंगु हो जाता है। फिर दीर्घकाल तक विषम वेदना से उसका अन्तर भारी हो जाता है, जिससे उसकी वाणी मूक हो जाती है, हृतन्त्री के तार ढीले पड़ जाते हैं और विपंची निर्वाक् हो जाती है—

अपने मधु में लिपटा कर
कर सकता मधुप न गुञ्जन;

करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन-कम्पन।

—गुञ्जन, पृ० २०

सुख और दुख, दोनों सापेक्षिक (Relative) अनुभूतियाँ हैं। इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। पंत भी जीवन में सुख-दुख की महत्ता को निरपेक्ष-भाव से स्वीकार करते हैं। सुख और दुख जीवन की गाड़ी के दो पहिये हैं। इनमें से एक के अभाव में गाड़ी का चलना मुश्किल है। साथ ही, कवि यह भी नहीं चाहता कि संसार से दुख का अन्त हो जाय। निरन्तर रहने वाला सुख भी कल्याणकर नहीं होता। वह मनुष्य की निष्कलुष आत्मा पर आवरण डाल कर उसे अपवित्र बना देता है। अतएव, कवि ने दुख के अस्तित्व और उसकी शक्ति को भी मुक्त कंठ से स्वीकार किया है—

दुख इस मानव-आत्मा का
रे नित का मधुमय-भोजन,
दुख के तम को खा-खा कर
भरती प्रकाश से वह मन।

—गुंजन, पृ० २०

दुख जब तक पारे की तरह ढुलमुल रहता है तब तक वह उत्पीड़क नहीं होता लेकिन जब वह जीवन में स्थायी बनकर आता है तब वह वास्तविक उत्पीड़क बन जाता है। पंत स्थायी दुख से घबड़ाते हैं। वे यह नहीं चाहते कि 'अविरत दुख' जीवन में स्थायी नीड़ बना ले और 'अविरत सुख' भी स्थायी-रूप धारण कर ले—

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख है उत्पीड़न।

—गुंजन, पृ० १६

इसलिये कवि का अभिमत है कि जीवन को पूर्ण बनाने के लिये 'सुख-दुख का मधुर मिलन' होना बहुत आवश्यक है। जीवन में जब सुख और दुख समान रूप से आते-जाते रहते हैं तब उत्पीड़न का अनुभव नहीं होता—

सुख-दुख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरण।

—गुंजन; पृ० १६

'गुञ्जन' में सुख-दुख के इस संबंध-व्यापार पर बहुत ही अच्छे गीत लिखे गये हैं—

यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का;
चिर हास-अश्रुमय आनन,
रे इस मानव-जीवन का।

—गुञ्जन, पृ० १६

महाकवि प्रसाद ने 'आँसू' में इसी स्वर के साथ स्वर मिलाकर गाया है—

मानव जीवन-वेदी पर
परिणय है विरह मिलन का
सुख-दुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का, मन का।

—प्रसाद

पंत चाहते हैं कि मानव-जगत में दुख-सुख समान रूप में बँट जायँ—न किसी को बहुत अधिक सुख हो, न किसी को बहुत अधिक दुख हो;

कवि चाहता है कि 'सुख-दुख के मधुर-मिलन से' मनुष्य का जीवन पूर्ण हो। कवि के शब्दों में—

मानव-जग में बँट जावें,
दुख-सुख से औ' सुख-दुख से।

गुञ्जन, पृ० १६

जीवन के प्रति यह सामंजस्यवादी दृष्टिकोण कवि पंत के स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचायक है।

प्रश्न यह होता है कि क्या जीवन में सुख और दुख नप-तुल कर आते हैं या आ सकते हैं? साधारणतः ऐसा कभी नहीं होता। सुख-दुख की अवस्थाएँ मनुष्य के अधीन नहीं हैं। ये जीवन के क्षण (Moments) हैं जिनकी बहती हुई धारा पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। फिर सुख-दुख की सम्मिलित कामना व्यर्थ है। पंत ने इस उलझे हुये प्रश्न का उत्तर भी दिया है। उनके मत में जीवन में सुख-दुख की उपलब्धि ही सब कुछ नहीं है, इनके ऊपर भी एक ऐसी वस्तु है जो शाश्वत सत्य है। वह है मन या आत्मा। जीवन का सुख-दुख क्षणिक है। आत्मा ही चिरन्तन है, शाश्वत है। आत्मा सुख-दुख से परे है। आत्मानन्द सुख-दुख के कठोर प्रहारों से विचलित नहीं होता। इसलिये कवि कहता है—

अस्थिर है जग का सुख-दुख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन!
सुख-दुख के ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलम्बन!

पंत ने इन पंक्तियों में आत्म-साधना तथा आत्म-परिष्कार पर जोर दिया है। वस्तुतः 'सुख-दुख के ऊपर मन' की स्थिति और वास्तविकता को

अच्छी तरह जान लेने पर ही भौतिक दुख से छुटकारा मिल सकता है।

योगिराज श्री कृष्ण ने 'गीता' में बताया है कि सत्य वही है जिसका किसी अवस्था में अभाव न हो, जो चिरन्तन हो, शाश्वत हो, जो कारणों का भी कारण हो। विज्ञानवेत्ताओं और दार्शनिकों ने अपने मस्तिष्क की सबल शक्ति के बल पर और तर्क-प्रवणता के बल पर विश्व के दुखों के कारणों और उनके समाधानों को जानने का प्रयास किया है। इसके विपरीत, धार्मिक व्यक्तियों ने श्रद्धा और विश्वास से काम लिया है। पंत ने भी श्रद्धा और विश्वास को अपनाया है। वर्तमान संसार में अशांति और असंतोष का कारण श्रद्धा और विश्वास का अभाव है। इसलिये मन को 'सुख-दुख' की स्थितियों से ऊपर ले जाने के लिये धर्म के इन दो तत्त्वों को—श्रद्धा और विश्वास—अपनाना ही चाहिये। इस विश्वास का आधार है आस्तिक भाव—ईश्वर में आस्था, आत्मा की सत्ता-महत्ता में अखंड विश्वास। जीवन को सुखमय बनाने के लिये आस्तिक-बुद्धि और विश्वास-प्रवणता की आवश्यकता होगी, ऐसा पंत का विचार है। उनका कहना है—

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन।

—गुंजन, पृ० २८

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि जीवन में सुख और दुख को समभाव से अपनाने के लिये मनःसाधना की परम आवश्यकता है। यह मनःसाधना क्या है मानो मन के दूषित और कलुष विचारों तथा स्वार्थों का परित्याग करना है, 'अति इच्छा' से बचना है क्योंकि जीवन की वास्तविक आनंद-धारा मन की निर्झरता से ही फूटती है। मन को स्वस्थ और बलिष्ठ बना लेने से ही हम जीवन के अन्य कार्य कर सकते

हैं। 'युगान्त' में पंत ने, जीवन के बाह्य-सौन्दर्य क सृजन 'उर के भीतर' ही होता है, बताया है—

चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्य-सृजन ?
'वह स्रोत छिपा उर के भीतर'
क्या कहती यही सुमन-चेतन ?

—युगान्त

मन में विश्वास और श्रद्धा को स्थान देने पर मनुष्य का हृदय उदार हो जाता है। ऐसी स्थिति में पंत का उदार कवि गा उठता है—

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति।

—युगवाणी

तार्किकता और सत्यासत्य की विवेचना की शक्ति को अलग रखकर केवल विश्वास पर विश्वास किया जाय तो निस्संदेह वर्तमान विश्व की बहुत बड़ी समस्या हल हो जाय। आज प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के प्रति शंकाकुल है, दूसरों को विश्वासघात की दृष्टि से देखता है। आज मनुष्य का विश्वास मनुष्य पर से जाता रहा है क्योंकि वह नास्तिक हो गया है।

'गुञ्जन' में जीवन को सुखमय बनाने का जो उपाय बताया गया है वह इस देश की विचार-शृंखला की ही एक कड़ी है। पाश्चात्य विचारधारा और भारतीय विचारधारा में जो महान् अन्तर है, वह यह कि पाश्चात्य दार्शनिकों ने बुद्धि पर अधिक जोर दिया है, और हमारे देश के दार्शनिकों ने अंतर्प्रेरणा पर अधिक बल दिया है। हमारे देश में व्यक्ति एक शक्ति है, पाश्चात्य देशों में व्यक्ति मशीन है। भारत के मनीषियों ने प्रज्ञा (Intuition) क शक्ति को

सर्वोपरि बताया है। पंत को भी इस शक्ति में पूरा विश्वास है। उदाहरणार्थ—

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप,
हृदय में बनता प्रणय अपार।

—पंत

ऊपर के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवन को सुखी बनाने के लिये मन के कलुष भावों को दूर करना होगा और जहाँ तक हो सके भौतिक प्रसाधनों के उपभोग से बचना होगा। हृदय को विशाल बनाने, आत्मा का विस्तार करने और व्यक्तित्व को महान् बनाने से ही जीवन सुखमय हो सकता है, यही पंत के मनीषी का अमर संदेश है।

फिर प्रश्न यह होता है कि व्यक्तित्व को महान् बनाने की आवश्यकता ही क्या है? व्यक्ति अपने मन का विस्तार करना क्यों चाहता है? वह अपने हृदय को विशाल बनाना क्यों अच्छा समझता है? इन प्रश्नों का उत्तर भी पंत के कवि ने दिया है। मनुष्य स्वयं अपने लिये ही जीवित रहना नहीं चाहता वरन् वह दूसरों के लिये भी जीना चाहता है। जो व्यक्ति सिर्फ अपने लिये जीता है वह पशु है और जो दूसरों के लिये अपने को जीवित रखना चाहता है वही वास्तविक पुरुष है। पुरुष का पौरुष परुषता में नहीं, 'प्रेम' में है। यह 'प्रेम' सेवा का द्योतक है। संसार के कल्याण-साधन के लिये हमें एक तो स्वयं को पूर्ण बनाना पड़ता है, दूसरे हमें संसार के अन्य प्राणियों के प्रति अपने व्यवहार को नियमित करना होता है।

पंत की दृष्टि में मनःसाधना की आवश्यकता पर-कल्याण या पर-सेवा के लिये ही होती है। कवि ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुये इस बात का निवेदन किया है—

नित्य-कर्म पथ पर तत्पर धर,
निर्मल कर अन्तर
पर-सेवा का मृदु-पराग भर
मेरे मधु संचय में।

—गुञ्जन, पृ० ८०

समाज-सेवा तथा विश्व-कल्याण के लिये यदि आत्म-बलिदान देने की भी आवश्यकता पड़े तो व्यक्ति को पीछे नहीं रहना चाहिये। विश्वास, श्रद्धा और प्रेम की भावनाओं को जागृत कर लेने के बाद समर्पण-उत्सर्ग की चेतना को जगाने की जरूरत पड़ती है, ऐसा कवि का विश्वास है। उसने स्पष्ट कहा है—

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल;
तप रे विधुर विधुर मन।

—गुञ्जन, पृ० ११

जीवन का चरम उद्देश्य समर्पण, त्याग और उत्सर्ग तो है ही, लेकिन साथ ही जगत के प्रसाधनों का उपभोग भी है। पंत को मुक्ति नहीं चाहिये। उन्हें वैराग्य की साधना में विश्वास नहीं है। वे संसार के जीवों के साथ रागात्मक संबन्ध स्थापित कर ही जीवन का चरम आनन्द लेना चाहते हैं। जो जीवन-मुक्ति संसार से विरक्त तथा विमुख होकर प्राप्त हो, वह कवि को अभीष्ट नहीं। इसलिये वह जीवन के प्रत्येक क्षण को आनन्ददायक और मोहक बनाना चाहता है—

यह पल-पल का लघु-जीवन
सुन्दर, सुखकर, शुचितर हो।

—गुंजन, पृ० ७२

इसलिये हमें अपने जीवन के छोटे-से-छोटे क्षणों को भी आनन्द-पूर्ण बनाना चाहिये—

सागर-संगम में है सुख
जीवन की गति में भी लय,
मेरे क्षण-क्षण के लघु कण
जीवन-लय से हो मधुमय।

—गुञ्जन, पृ० १४

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं 'गुञ्जन' का जीवन-दर्शन वर्तमान विश्व के अंधकार में पड़े मानव को बाहर निकाल कर प्रकाश के लोक में ले जाने की पर्याप्त सामर्थ रखता है।

'गुञ्जन' में पन्त का आदर्शवाद

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष-विमर्षों का;

—पंत : 'गुञ्जन'

जिन दिनों पन्त प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, वहाँ के अंग्रेजी वातावरण ने उनको पश्चिमी कवियों की ओर आकृष्ट किया। पंत के व्यक्तित्व पर अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों—शेली (Shelley), कीट्स (Keats) तथा विक्टोरियन कवि टेनीसन (Tennyson) का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इनमें भी सबसे अधिक ऋण कवि शेली का है। अन्य भारतीय कवियों ; जैसे, रवि बाबू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती महादेवी वर्मा आदि पर भी शेली का प्रभाव सर्वाधिक है। शेली का आदर्शवाद और उसकी अभिनव कल्पना भारतीय कवियों के हृदय के अनुकूल जँची, इसीलिये आधुनिक भारत के अधिकांश कवि इनसे सबसे अधिक प्रभावित हुये। शेली का प्लाटोनिज्म (Platonism) पंत के साहित्य का आधार है। ये आरम्भ से ही इससे प्रभावित रहे हैं। 'पल्लव', 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानियों' में प्लाटोनिज्म अधिक स्वस्थ और पुष्ट होकर आया है।

प्रश्न उठता है, प्लाटोनिज्म है क्या ? यह एक दर्शन-विशेष है। कल्पना और स्वप्न की सहायता से एक आदर्श-लोक की स्थापना करना इस दर्शन का पावन उद्देश्य है, जिसमें स्नेह, सौन्दर्य और सहानुभूति

का प्रचार और प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक और जीवन का नवीन आदर्श होगा—शेली और पन्त का यही आदर्शवाद है जिसका स्वप्न इन दोनों ने देखा है। शेली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Prometheus Unbound) में और पन्त ने 'ज्योत्स्ना'-'गुञ्जन' में एक ऐसे ही आदर्श-लोक की कल्पना की है, जिसमें मानवता की मूर्ति, भ्रातृत्व-प्रेम, समानता, स्वतंत्रता, आध्यात्मिक पवित्रता तथा रुढ़ि-मुक्तता का प्रचार होगा। यह संसार एकान्ततः सुन्दर और मानवीय गुणों से युक्त होगा।

शेली और पंत में व्यक्तित्व की इतनी समानता होते हुये भी दोनों में थोड़ा अन्तर भी है। ये दोनों दो व्यक्ति हैं। यदि शेली में भावावेश है तो पंत में भावुकता, यदि शेली में चित्त की अशान्त क्रांति है तो पंत में चिन्तन, शांति और संयम। पंत का-सा संतुलित भावों का संयम शेली में दुर्लभ है।

पंत का आदर्शवाद उनके दर्शन का एक अभिन्न अंग है। 'गुञ्जन' के आदर्श-दर्शन को समझने के लिये 'ज्योत्स्ना' के क्षीर-सागर में अवगाहन करना होगा। 'गुञ्जन' और 'ज्योत्स्ना' दोनों एक दूसरे के पूरक हैं; दोनों एक दूसरे को समझने की कुन्जी हैं। 'गुञ्जन' के गीतों में कवि ने जो कुछ कहा है, उसे ही 'ज्योत्स्ना' में दृश्यात्मक रूप दे दिया गया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'पंतजी की सम्पूर्ण कृतियों में 'गुञ्जन' की कविताएँ दार्शनिक गूढ़ता के कारण अपने स्पष्टीकरण के लिये अधिक स्थान चाहती हैं।' इसीलिये डा० नगेन्द्र ने कहा कि 'गुञ्जन' की कविताएँ मनन की वस्तु हैं। इसी कारण वे हृदय को स्पर्श नहीं करतीं।'

पन्त के आदर्शवाद में इस कठोर भौतिक युग की उपेक्षा की गयी है। 'ज्योत्स्ना' में ज्योत्स्ना कहती है—'मनुष्य को यथार्थ प्रकाश की

आवश्यकता है। इस अनादि और अनन्त जीवन पर अनन्त दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला जा सकता है। ज्ञान-विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नहीं हो सकता। सरल, सुन्दर और उच्च आदर्शों पर विश्वास रखकर ही मनुष्य-जाति सुख-शांति का उपभोग कर सकती है, पशु से देवता बन सकती है।' यही बात 'गुञ्जन' में उस तरह कही गयी है—

सुन्दर विश्वासों से ही बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यों सहज सहज साँसों से चलता उर का मृदु स्पंदन।
—गुंजन

'ज्योत्स्ना' में कल्पना कहती है—'संसार की भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, उसके दुखों से जर्जर' मनुष्य की समस्त शक्ति इस समय केवल वाह्य प्रकृति के अत्याचारों से मुक्ति पाने की ओर लगी है जिसके लिये उसने भूत-विज्ञान की सृष्टि की है। मानव-जीवन के वाह्य क्षेत्रों एवं विभागों को सुगठित एवं सीमित कर, अपने आंतरिक जीवन के प्रति उदासीन होकर मनुष्य अपनी आत्मा के लिये नवीन कारा निर्मित कर रहा है।' पन्त ने 'गुञ्जन' में आज के मानव को यह शाश्वत संदेश दिया है—

जीवन की लहर-लहर से, हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अंतस्तल में, नित बूड़-बूड़ रे भाविक!

जीवन के अन्तस्तल में 'बूड़ना' 'ज्योत्स्ना' के लेखक के 'आंतरिक जीवन' को प्राप्त करना है जो—

सुख दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन!'

एक मात्र आधार है जो जीवन के अन्तर में डूबा वही 'गुंजन' के स्वर में स्वर मिलाकर यह कहेगा—

यह जीवन का है सागर
जग जीवन का है सागर
प्रिय-प्रिय विषाद रे इसका
प्रिय-प्रिय' आह्लाद रे इसका।

'ज्योत्स्ना' के कुमार का कहना है कि 'हम जीवन को सार-रूप में ग्रहण कर सकते हैं, संसार रूप में नहीं। जीवन को सार-रूप में ग्रहण करने पर यही संसार स्वर्ग हो जाता है, यही मानव देवता।' 'ज्योत्स्ना' का एक गीत इस भाव का परिचायक है—

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर
देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन-बंधन।

बंधन में ही 'विदेह' की तरह निर्मुक्त रहने में जीवन का सौन्दर्य है। जीवन को इसी निर्लिप्त दृष्टि से देख कर कवि 'गुंजन' में कहता है—

सुन्दर सुन्दर जग जीवन।

पन्त का आदर्श परंपरागत नहीं, चिरन्तन और चिर-नवीन है। आदर्श की व्याख्या इन्होंने इस तरह की है—'आदर्श चिरन्तन अनुभूतियों की अमर प्रतिमाएँ हैं। वे तार्किक सत्य नहीं, अनुभावित सत्य हैं। आदर्शों को सापेक्ष दृष्टि से देखने से उनका मूल्य नहीं आँका जा सकता। उन्हें निरपेक्ष मान लेने पर ही मनुष्य उनकी आत्मा तक पहुँच सकता है। निरपेक्ष सत्य शून्य नहीं, सर्व है। प्रत्येक वस्तु का निरपेक्ष मूल्य भी है। आदर्श व्यक्ति के लिये असीम है। देश, काल और समाज आदर्श की सीमाएँ हैं, सार नहीं, उनके इतिहास हैं, तत्त्व नहीं।' पंत देश-काल की रूढ़ियों में जकड़े हुये आदर्श को आदर्श

नहीं मानते। इनका आदर्श तो विश्व-जीवन को देश-काल से परे उठाकर एक में मिला देने वाला है।

'आदर्श स्वभाव के अनुरूप भी चलते हैं।' 'ज्योत्स्ना' में हेनरी कहता है—प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग (Positive Negative-atttitudes) सदैव ही रहेंगे, दोनों ही अपने-अपने स्थान पर सार्थक हैं पहला भोक्ता के लिये, दूसरा द्रष्टा के लिये, जिसे ज्ञान प्राप्त करना है।' पंत ने 'ज्योत्स्ना' में जिस आदर्श संसार का स्वप्न देखा है वह इस प्रकार है—'संसार से यह तामसी विनाश उठ जाय और यह सृष्टि प्रेम की पलकों में अपने ही स्वरूप पर मुग्ध, सौन्दर्य का स्वप्न बन जाय।' 'गुंजन' में इसी सौन्दर्य-पक्ष पर अधिक जोर दिया गया है।

पंत का आदर्शवाद भारत के 'अध्यात्म-प्रकाश' और पश्चिम के 'जड़वाद' का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। 'ज्योत्स्ना' में देव-व्रत कहते हैं—'पाश्चात्य जड़वाद की मांसल-प्रतिभा में पूर्व के अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थि-पंजर में भूत या जड़-विज्ञान का रूप-रंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षतः परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया है।' इसीलिये 'इस युग का मनुष्य न पूर्व का रह गया है, न पश्चिम का रह गया है, पूर्व और पश्चिम दोनों ही मनुष्य के बन गये हैं।' यथार्थ और आदर्श अथवा वस्तु-जगत् और अध्यात्म-जगत् का एकीकरण पंत के आदर्शवाद का व्याव-हारिक प्रयत्न है।

'गुंजन'-'ज्योत्स्ना' में पन्त ने हिन्दी-संसार को जो भाव और विचार दिये हैं, वे कवि-कल्पना की भाँति मनोहर तथा दार्शनिकता की भाँति गहन हैं। मानव-विश्व अपने सम्पूर्ण भेद-भावों को भुलाकर आत्मा के स्नेह-साम्राज्य में अपने को नियंत्रित कर सके तो वह आनन्द-

मय वातावरण को प्राप्त कर सकता है। मानव-हृदय की सरल सद्वृत्तियाँ, प्रकृति की कल्याणमयी विभूतियाँ—सुरभि, पवन, उषा, अरुण, किरण, छाया, तारा, ओस, जुगनू, कुसुम, भृंग, लहर, तितली आदि क्रियाशील होकर ही विश्व-जीवन को सुख-शांति प्रदान कर सकते हैं। इनके द्वारा वाह्य-विश्व में जो सुख, सौन्दर्य और प्रेम ओत-प्रोत हैं, वही हमारी सरल सद्वृत्तियों द्वारा हमें अपने मनःस्वर्ग में भी उपलब्ध हो सकते हैं। स्वप्न और कल्पना हमारे इस मनःस्वर्ग के सहायक हैं। ये दोनों मानव-हृदय में सृजन और पालन शक्तियों का उद्भव कर सकते हैं। विश्व में जो कुछ सत्यं शिवं सुन्दरं है, वह कल्पना और स्वप्न के रूप में हमारे मनोलोक में अन्तर्हित है। वही जब क्रिया-रूप में बाहर आ जाता है तब हम उसे प्रत्यक्ष देखने लगते हैं। संसार अपने मन के भीतर से ही सुखी और सुन्दर बनेगा, बाहर से नहीं—यही 'गुंजन' का अमर और आदर्श सन्देश है। यह पुस्तक पंत की चिन्तनशील आत्मा की प्रतिकृति है और इनका आदर्श इनके मन के अनुकूल है। यह शेलियन ढंग है, यह मैं पहले ही बता आया हूँ।

कुछ लोगों का कहना है कि 'पंत की फ़िलोसोफ़ी निष्क्रिय है।' उनके मतानुसार पन्त ने जिस सुनहरे आदर्श लोक की कल्पना की है, वह शेली की तरह ही, भावात्मक, स्वप्निल और अव्यावहारिक है। दूसरे शब्दों में यह कहा जायगा कि पन्त का आदर्शवाद एकांगी और मात्र काव्यात्मक है। कवि ने जो कुछ कहा है, वह हमारी हृदय-वीणा के तारों को अवश्य झंकृत करता है, लेकिन हमारी बुद्धि को संतुष्ट नहीं करता। उसमें हमारा मन नहीं रमता। हम थोड़ी देर के लिये विस्मृत, विस्मय और कुतूहल की भावनाओं से ओत-प्रोत अवश्य हो जाते हैं लेकिन हमारा बुद्धि-जीवी संसार अपनी आवश्यकताओं से वंचित ही रहता है। आँखों में सदा सपनों की रंगीन

दुनिया बसाने वाले कवि पन्त (जिन्होंने उषा, संध्या, चाँदनी, तारा, वेसम्त आदि की मनःकल्पित शोभा से ही अपनी आत्मा का शृंगार किया) के भाव-लोक का यही अधूरा सपना 'गुंजन' तक की रचनाओं में पाया जाता है। इसके बाद पन्त की प्रगतिशीलता भाव-परिवर्तन के प्रशस्त-पथ पर परिभ्रमण करती दीख पड़ती है। 'गुंजन' में कवि अधिकाधिक अन्तर्मुखी है, इसीलिये उसको समझने में थोड़ी कठिनाई होती है।

———

'गुञ्जन' में पन्त का समन्वयवाद

"पन्त जी ने 'पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिभा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश को आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थि-पंचर में भूतया जड़ विज्ञान के रूप-रंग भर कर' दर्शन की यह 'सापेक्षितः परिपूर्ण' मूर्ति निर्मित की है।"[1]

—डॉ० नगेन्द्र

कवि का हृदय कोमल होता है और महाकवि का उदार। उसकी कोमलता और उदारता उसके महान् व्यक्तित्व का द्योतक होती है। महाकवि अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को संसार के चिरन्तन प्रश्नों में समाहित कर देता है। यह उसका त्याग है और इसीलिये वह इस पृथ्वी पर अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न देव-दूत कहा जाता है। महाकवि संघर्ष को शांत कर सामंजस्य लाने की चेष्टा करता है। इसीलिये वह संघर्ष के स्थान पर समझौता चाहता है। जहाँ समझौता होता है वहाँ समन्वय होता है। समन्वय दो विरोधी विचारों—भावों के मधुर मिलन को कहते हैं। जब तक विरोध का शमन नहीं होता तब तक विद्रोह शान्त नहीं होता। विद्रोही भावों को शांति प्रदान करने के लिये एक पंच की जरूरत होती है। विश्व के समन्वयशील कवि पंच का काम करते रहे हैं। वह शांत-चित्त होकर दो दलों के उग्रविचारों को सुनता है, समझता है और अन्त में निष्पक्ष होकर अपना निर्णय देता है। उसका निर्णय दोनों दलों को मान्य होता है। यह है समन्वय की प्रक्रिया।

---

[1] सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४०—४१

पंत भारतीय–कवि–परंपरा के उत्कृष्ट कवि हैं जिन्होंने अपनी समन्वयशीलता का परिचय अपनी कृतियों में दिया है। समन्वयशील कवि भी विद्रोही होता है लेकिन उसका विद्रोह भड़कता हुआ आग का शोला नहीं है, वह है राख के नीचे दबी हुई चिनगारी। उसके होठों पर मधुर मुसकान की रेखा खिंची होती है लेकिन वह अपने अन्तर में अग्नि की चिनगारी छिपाये रहता है। उसकी भावनाएँ संयत और गंभीर होती हैं। पंत का कवि-व्यक्तित्व किसी भी महाकवि से घट कर नहीं है। 'गुंजन' मे इनकी समन्वयशीलता पहली बार मुखर हो उठी है। इसके पूर्व जैसा कि मैं बता आया हूँ, कवि अपनी व्यक्तिगत वेदना के क्रोड़ में सिमटा बैठा था, उसके जीवन का दैनिक कार्य आठ-आठ आँसू बहाना भर था। लेकिन 'गुंजन' में आकर उसने अपने व्यक्तित्व का कलेवर ही बदल डाला। वह संयत, गंभीर और चिन्तनशील हो गया। उसकी गंभीर चिन्तना क क्षेत्र इतना व्यापक हुआ कि कवि ने समस्त संसार के मानवीय चिरन्तन प्रश्नों को उसमें समेट लेने की सजग चेष्टा की और इसमें वह सफल भी हुआ। वास्तव में पन्त भारत-भारती के आधुनिक श्रेष्ठ महाकवि हैं।

जगत् के समन्वयशील कवि की दृष्टि जीवन और जगत् के चिरन्तन प्रश्नों पर होती है। वह उनका समाधान निकालने के लिये विकल और विह्वल रहता है। वह मौलिकता का प्रेमी होता है। वह कुछ नयी बातों की उद्भावना करता है। इसीलिये युग का महाकवि निर्वैयक्तिक होता है। वह अपने दुख-सुख, राग-विराग, आशा-निराशा से बिलकुल दूर रहता है। साथ ही, वह अतीत की चिन्तन धारा को मिटाना भी नहीं चाहता, उसे छोटा भी करना नहीं चाहता, लेकिन साथ ही वह पग-पग पर उसकी दुहाई भी नहीं देता, परास्त होकर वह उसके सामने झुकता भी नहीं। श्री 'अज्ञेय' के शब्दों में 'कवि का कार्य नये

अनुभवों की, नये भावों की खोज नहीं है, प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ही ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना है जो उन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी हैं। वह नयी धातुओं का शोधक नहीं है; हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग ढालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।[1] इससे यह स्पष्ट है कि श्रेष्ठ कवि अपने युग या भावी युग का निर्माण करने के लिये अतीत के उपादानों को चुनने में भी नहीं हिचकता। अतीत कवि को ज्ञान देता है और उसकी प्रज्ञा (अन्तर्चेतना) उसे विज्ञान देती है। अतीत और वर्तमान की नींव पर ही भविष्य की कल्पना की जाती है। इसीलिये कवि अपने युग का स्रष्टा भी होता है और भविष्य का द्रष्टा भी। पंत स्रष्टा भी हैं और द्रष्टा भी। आज वे 'नवल सृष्टि' की रूप-रचना तैयार करने में लगे हैं—

मैं सृष्टि एक रच रहा नवल,
भावी मानव के हित, भीतर
सौन्दर्य स्नेह उल्लास मुझे
मिल सका नहीं जग के बाहर!

उनकी हाल की रचनाएँ इसी ओर उन्मुख हैं। इसके विपरीत, 'गुंजन' में 'जग के दुर्गम अंधकार में' पड़े आज के मानव को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है—

धुन जग का दुर्गम अन्धकार
चुन नाम रूप का अमृतसार,
मैं खोज रहा खोया प्रकाश,
सुलझा जीवन के तार-तार।

जीवन के उलझे प्रश्नों के तारों को 'गुंजन' के कवि ने सुलझाने

[1] त्रिशंकु, पृ० ३६,

का सफल प्रयत्न किया है। इसके लिये कवि ने समन्वय-बुद्धि से काम लिया है। पंत का समन्वयशील कवि दर्शन की गुत्थियों को सुलझाने में अधिक व्यस्त दिखायी पड़ता है। काव्य कला के क्षेत्र में वे शुरू से ही स्वच्छंदवादी रहे हैं। 'पल्लव' की भूमिका में उनकी स्वच्छंद-कला की प्रवृत्तियों का परिचय मिल चुका है। उस क्षेत्र में पंत उदार न होकर उग्र और कठोर हैं। कवि का काव्य, भाषा तथा शैली उनके अतीत से बिलकुल भिन्न है। इसीलिये ये छायावाद के सबसे अधिक स्वच्छंदवादी कवि माने गये हैं।

साम्यवाद और गांधीवाद का समन्वय—पंत की समन्वय-बुद्धि को उनके व्यापक अध्ययन ने बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया है, उनके पाश्चात्य साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन का सुपरिणाम यह हुआ कि वर्तमान विश्व की समस्याओं को उन्होंने पूर्व और पश्चिम के सिद्धान्तों तथा विचारों को मिलाकर देखा। इस लिये इनकी विचार-धारा पर पूर्व के अध्यात्म और पश्चिम के भूत-विज्ञान का संतुलित प्रभाव दृष्टिगत होता है। पंत ने स्वयं बताया है कि 'मैं, अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ। कुछ लोग पंत को समाजवादी कहते हैं और कुछ लोगों का कहना है कि ये गांधीवादी हैं। लेकिन असल में श्री शांति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'पन्त न तो समाजवाद से विमुख हैं और न गांधीवाद से, वे दोनों के सम्मुख हैं। दोनों के भीतर जो सत्य है उन्हें स्वीकार करके दोनों को अपूर्णताओं की एक दूसरे से पूर्ति चाहते हैं; यों कहें, वे आत्मा की भूख भी मिटाना चाहते हैं और शरीर की भूख भी। वे आत्मवाद और भूतवाद के संयोजन से एक नवीन संस्कृति का 'उद्भव चाहते हैं।'[1] कवि को गांधीवाद और साम्यवाद का समन्वय स्वीकार है—

---

[1] युग और साहित्य, पृ० ३४६-४७

मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता, निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।

पंत को भारतीय दर्शन और मार्क्स-दर्शन, दोनों अपने में अपूर्ण जँचते हैं। वे कहते हैं—'भारतीय दर्शन की सामंत कालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणति व्यक्ति को प्राकृतिक मुक्ति में हुई है, दृश्य जगत् एवं ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र हैं, और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्ग युद्ध और रक्त क्रांति में परिणति हुई है,—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।' इसीलिये उन्हें इन दोनों के समन्वय की आवश्यकता पड़ी। वस्तुतः आने वाला युग पंत के इस दृष्टिकोण की प्रतीक्षा में है। 'गुंजन' का कवि भारतीय चिन्तक की तरह आत्मवादी है। मार्क्स-दर्शन की चर्चा 'गुंजन' में कहीं नहीं की गई है। यहाँ वह पूर्णतया भारतीय मनीषी का प्रतिनिधित्व करता है जिसने व्यक्ति की आत्मा को पूर्ण स्वतंत्र रखने की सलाह दी है। इसमें व्यक्ति-जीवन से संबंध रखने वाले चिरन्तन प्रश्नों पर ही मनन तथा चिन्तन किया गया है। पंत किसी भी 'वाद' के पोषक नहीं हैं, वे वस्तुतः मानवता के सत्य के कवि हैं।

द्वैतवाद और अद्वैतवाद का समन्वय—'गुंजन' में द्वैत और अद्वैत के समन्वय पर भी जहाँ-तहाँ जोर दिया गया है। पंत को इस बात का विश्वास नहीं है कि किसी विशेष-व्यक्ति में ईश्वर की विशेष शक्ति पूँजीभूत हो जाती है। वे यह मानते हैं कि सृष्टि के पर्दे के पीछे एक अलौकिक शक्ति छिपी है, जिसको उन्होंने 'मोती वाली मछली' का रूप दिया है, जिसको पाने के लिये जीवन-सागर के निस्तल जल में प्रवेश करना उसे अभीष्ट नहीं है। कवि द्वैत और अद्वैत दोनों की स्थितियों को मुक्त कंठ से स्वीकार करता है। भारतीय-दर्शन से उसकी

असहमति इसलिये है वह व्यक्ति के व्यक्तित्व को लोप कर देने का पाठ पढ़ाता है, तभी अद्वैत की सार्थकता है। इसके विपरीत, पंत द्वैत की स्थिति को इसलिये पसन्द करते हैं कि द्वैत में ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की रक्षा कर सकता है ताकि वह जीवन के सुख-दुःख का सौन्दर्य-पान कर सके। इसी भाव को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

आयेगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर।

—गुंजन, पृ० ७१

लेकिन साथ ही, प्राचीन द्वैतवादियों की तरह वे जड़ और चेतन की अलग-अलग सत्ता में विश्वास नहीं रखते। उनका विश्वास है कि जड़ और चेतन प्रकृति दोनों किसी चेतन सत्ता के प्रभाव से अनुप्राणित हैं। इनमें सौन्दर्य का आकर्षण इसलिये है कि उनमें किसी जागरुक शक्ति के प्राणों का स्पंदन है। कवि की यह भावना सर्ववाद (Pantheism) के अधिक निकट है। सर्ववाद में किसी ईश्वर की कल्पना नहीं की जाती लेकिन समस्त जड़-चेतन प्रकृति में किसी सूक्ष्म विराट् चेतन सत्ता की अवस्थिति अवश्य रहती है। इस व्यापक चेतन को कवि ने कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य का रूप दिया है तो कहीं प्रियतमा की रूप माधुरी का। इस तरह पंत ने द्वैत और अद्वैत का समन्वय उपस्थित कर एक नया मार्ग निर्मित किया है—वह है सर्ववाद का।

साकार और निराकार का समन्वय—पंत की विचारधारा का यह एक विशिष्ट गुण है कि जिस तरह वे 'संकीर्ण भौतिकता को नहीं चाहते, उसी तरह संकीर्ण आध्यात्मिकता को भी पसंद नहीं करते। ये दोनों अपने-अपने जिस सत्य की रेखा पर चल रहे हैं, पन्त उन्हीं

के अभिप्रायों का परस्पर समन्वय चाहते हैं। उनका दृष्टिकोण सापेक्षिक है। पंत को न तो सूरदास या तुलसीदास की सगुणोपासना में विश्वास है और न कबीर की निर्गुणोपासना में। उन्होंने दोनों की आवश्यकता समझी है। आत्मा की अजर-अमर सत्ता में उनका अखंड विश्वास है और यह अमिट सत्ता उस परमसत्ता का ही एक रूप है जो चिर-चेतन, शुद्ध, प्रबुद्ध और आनन्दमय है। जड़ जगत् और उसका सौन्दर्य इसी चेतन आत्मा की अभिव्यक्ति है। कवि के लिये जीव, जगत और ईश्वर सभी सत्य हैं। इन सब में चेतनशक्ति व्याप्त है। यह जड़ और चेतन दोनों प्रकृतियों में है। इसी विश्व-व्यापी आत्म-तत्व के प्रभाव से जहाँ एक ओर प्रेयसी की रूप-माधुरी समस्त विश्व में व्याप्त हो गयी है—

आज मुकुलित कुसुमित चहुँ ओर
तुम्हारी छवि की छटा अपार

—'गुंजन', पृ० ५६

वहाँ दूसरी ओर प्रकृति अपने समस्त सौन्दर्य के साथ प्रेयसी के व्यक्तित्व में समा गयी है—

रूप तारा तुम पूर्ण प्रकाम,
मृगेक्षिणि ! सार्थक तेरा नाम।

गुंजन, पृ० ६३

कवि को साकार-सृष्टि से प्रगाढ़ प्रेम है। अतएव, वह सृष्टि के विविध नाम-रूपात्मक साकार जगत् से प्रेम करता है। वह उसके कण-कण को सुन्दर बनाना चाहता है। उसे विश्व के तृण-तरु, पशु-पक्षी, नर, सुर, नारी सब भी अच्छे लगते हैं। निर्गुण संतों की तरह पंत संसार का त्याग करने की भावना कभी भी अपने मन में नहीं लाते। जीवन की कुरूपताओं को सुन्दरता प्रदान करना ही जीवन का लक्ष्य है। जीवन का

परिणाम विकास में है और विकास की परिणति सौन्दर्य में है, यह कवि को मान्य है।

मुक्ति और बंधन का समन्वय—संसार को सत्य करार देने वाले कवि पंत को जीवन-मुक्ति खलती है। इसलिये उन्होंने बताया है कि जीवन का वास्तविक आनन्द मोक्ष की प्राप्ति में न होकर, बंधन में है। वैष्णव कवियों और संत कवियों ने संसार को माया, बंधन आदि कह कर उसकी उपेक्षा की थी और बताया था कि जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। लेकिन पंत की दृष्टि में मोक्ष का दूसरा नाम व्यक्ति के व्यक्तित्व का लोप है। जो मुक्ति संसार से विरक्त तथा विमुख होकर प्राप्त हो वह कवि को अभीष्ट नहीं है। कवि को ज्ञान में विश्वास नहीं है। वह न तो मुक्ति के लिये उत्कंठित है और न ज्ञान के लिये ही। मोक्ष की प्राप्ति से इन्द्रियों की शांति भले ही हो जाय लेकिन इससे मन को शान्ति नहीं मिल सकती। कवि की दृष्टि में मुक्ति मन की एक विशेष दशा है। यह तभी होती है जब विश्व-सौन्दर्य के साथ हृदय का तादात्म्य होता है। संसार की सुषमा का उपभोग कर उसी का परित्याग करना हमारी सरासर भूल होगी। सच्ची मुक्ति शब्द, स्पर्श, रूप, रस और रंग के सौन्दर्य का रसपान करने में है। 'यशोधरा' में पंत की विचारधारा इस तरह प्रकट हुई है—

भव भावे मुझे और उसे मैं भाऊँ।
कह मुक्ति, भला किस लिये तुझे मैं पाऊँ

—*मैथिलीशरण*

कवि के लिये बंधन ही मुक्ति है और मुक्ति ही बंधन—

है सहज मुक्ति का मधुर क्षण,
पर कठिन मुक्ति का बंधन।

—*गुंजन पृ० २८*

वेदान्तियों की तरह निराकार ब्रह्म में आत्मा-विसर्जन कर देना, पंत की दृष्टि में, आसान काम है लेकिन संसार के बंधनों में बँध कर अपने व्यक्तित्व को महान् बनाये रखना कठिन काम है। मुक्ति और बंधन पर कवि का दृष्टिकोण अपना है। इसकी मौलिक व्याख्या से यह स्पष्ट है कि जीवन को सुखमय बनाने के लिये मुक्ति और बंधन के समन्वय की बड़ी आवश्यकता है।

सुख-दुःख का समन्वय—मैं बता आया हूँ कि सुख-दुःख पंत के काव्य का प्रिय विषय रहा है। जीवन के इन दो आवश्यक तत्त्वों के बीच समन्वय उपस्थित कर कवि ने जीवन को जीवन के योग्य बना दिया है। कवि का दृष्टिकोण पलायनवादी नहीं है। वह दुःख और सुख दोनों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करता है। साथ ही, वह यह मानता है कि दोनों में पारस्परिक संबंध है। जीवन में दुःख-सुख का आदान-प्रदान होता रहता है। जीवन में वेदना का भी महत्त्व है। यह मनुष्य की भावनाओं को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनाती है। लेकिन 'अविरत दुःख' और 'अविरत सुख' उत्पीड़न है। इन दोनों के मधुर मिलन से ही जीवन पूर्ण होता है। अब तक यही बताया गया था कि जीवन अपूर्ण है, मानव अपूर्ण है, सृष्टि की सारी वस्तुयें अपूर्ण। ईश्वर को छोड़कर सृष्टि में एक भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसको पूर्ण कहा जाय। लेकिन पंत के चिन्तन की यह मौलिकता है कि उसमें जीवन तथा मानव को पूर्ण सत्य कहा गया है। सुख-दुःख हमारे मन की दशाएँ हैं। मनुष्य भीतर से ही दुखी या सुखी होता है। इसलिये जीवन को विकासशील बनाये रखने के लिये बारी-बारी से इनका आना-जाना लगा रहना चाहिये। सुख-दुःख के प्रति पंत का यह दृष्टिकोण सापेक्षिक है। उनका निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है—

सुख-दुख के पुलिन डुबा कर
लहराता जीवन-सागर।

× × ×

सुख-दुःख के ऊपर मन का,
जीवन ही रे अवलम्बन ।

संसार में सुख-दुःख ही सब कुछ नहीं है। इससे ऊपर भी एक अजर-अमर तत्व है, वह मन है। सुख-दुःख से ऊपर मनुष्य जीवन के चरम-सत्य-परम सौन्दर्य---को जान सकता है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि पंत सुख-दुःख की समन्वयात्मक स्थिति को स्वीकार करते हैं तथापि वे यहीं रुक नहीं जाते। वे इससे भी ऊपर उठना चाहते हैं। यहाँ तक कि उन्हें 'सुख-दुःख' को अस्थिर कह देना पड़ा है—

'अस्थिर है जग का सुख-दुःख ।'

पंत आत्मा की शक्ति और उसकी महत्ता को कभी नहीं भूलते। इसलिये 'गुंजन' में वे आत्मदर्शी हैं।

साधना और कामना का समन्वय—'गुंजन' के कवि को श्रद्धा और विश्वास में अनन्य आस्था है। श्रद्धा और विश्वास, भक्ति तथा धर्म के मूलाधार हैं। भक्ति में साधना और कामना के लिये पर्याप्त स्थान है। कवि अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये मनःसाधना करना चाहता है और सामाजिक सेवा के लिये अपने मन में तरह-तरह की कामनाएँ करता है। वह अपने व्यक्तित्व को इसलिये महान् बनाना चाहता है ताकि वह दूसरों की सेवा करने में समर्थ हो सके। जो व्यक्ति सिर्फ अपना कल्याण करने के लिये, किसी निर्जन स्थान में बैठकर, साधना की समाधि लगता है, वह स्वार्थी है लेकिन जो पर-सेवा-भाव से आकुल होकर जीवन की साधना करता है, वह महान् है। पंत ने प्रार्थना की है कि उसका हृदय निर्मल और पर-सेवा की उन्नत भावनाओं से ओत-प्रोत हो—

निर्मल-कर्म-पथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अन्तर
पर-सेवा का मृदु-पराग भर ।

गुंजन पृ० ८०

व्यक्ति और समाज का समन्वय—व्यक्ति और समाज का सैद्धान्तिक संघर्ष जितना पाश्चात्य साहित्य में देखा जाता है उतना इस देश के साहित्य में नहीं देखा गया। फिर भी इस देश के साहित्य पर इसका न्यूनाधिक प्रभाव अवश्य पड़ा है। प्रश्न यह है कि जीवन में किसी विशेष व्यक्ति का प्रत्यक्ष हाथ होता है या समाज की सामूहिक शक्ति का। पश्चिम के विचारकों ने समाज को ही व्यक्ति की अपेक्षा सर्वोपरि माना है। हमारे देश के मनीषियों के विचार इससे बिलकुल भिन्न हैं। इस देश की चिन्ता-धारा में समाज की अपेक्षा व्यक्ति की महत्ता स्वीकार की गयी है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति शक्ति है, उसके पास इतनी शक्ति है कि वह समाज को, राज को तथा विश्व को परिचालित कर सकता है। राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, तुलसी, गांधी—ऐसी ही व्यक्ति-विभूतियाँ थे। पंत की दृष्टि में भी व्यक्ति शक्ति का पुंज है। समाज व्यक्तियों के समूह को कहते हैं। समाज तो एक निर्जीव संज्ञा है जिसमें व्यक्ति ही प्राणों का स्पंदन भरता है। यह सही है कि आज का मनुष्य-समुदाय रोटी के लिये समाज की जन-शक्ति लगाये हुये है लेकिन जीवन में रोटी की समस्या चिरंतन नहीं है। पंत के शब्दों में, यदि भावी समाज मनुष्य को रोटी की चिन्ता से मुक्त कर सका तो उसके लिये केवल सांस्कृतिक संघर्ष का प्रश्न ही शेष रह जायगा।' कवि ने व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य बनाये रखने की अपील की है। उन्हीं के शब्दों में—'मनुष्य की दैहिक प्रवृत्तियों और सामाजिक परिस्थितियों के बीच में जितना विशद सामंजस्य स्थापित किया जा सकेगा, उसी के अनुरूप, जन-समाज की सांस्कृतिक चेतना का भी विकास हो सकेगा। जिस सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक सदाचार और व्यक्ति की आवश्यकताओं की सीमाएँ एक दूसरे में लीन हो जायेंगी, उस समाज में व्यक्ति और समाज के बीच विरोध मिट जायगा।'[1] 'गुंजन' में यद्यपि व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध-

[1] आधुनिक कवि पंत, पृ० २२-२३

संघर्ष का कोई संकेत नहीं है तथापि इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने का संदेश अवश्य दिया गया है क्योंकि जिस समाज में व्यक्ति का चरित्र जितना ही ऊँचा उठा होगा, वह समाज उतना ही उन्नत होगा। व्यक्तित्व को महान् बनाने के लिये दो बातों की ओर संकेत किया गया है—आत्म-साधना और विश्व-साधना—

विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष उज्ज्वल औ कोमल।

गुंजन, पृ० ११

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'गुंजन' पंत की काव्य-साधना का वह संगम-स्थल है जहाँ उनकी विविध विरोधी प्रवृत्तियाँ एक साथ मिल गयी हैं। उनकी समन्वय मूलक प्रवृत्ति काव्य और दर्शन के समन्वय में भी देखी जा सकती है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—'पंत के दृष्टिकोणों में भिन्नता मिलती है। उनका दृष्टिकोण वास्तव में न तो शेली (Shelley) की भाँति सर्वथा मानसिक ही हैं, न वर्ड्सवर्थ की तरह आध्यात्मिक ही और न वह कीट्स (Keats) के सदृश ऐन्द्रिक ही हो सकता है। उसमें तो मानसिकता और प्राकृतिकता का भव्य-सम्मिश्रण मिलता है—कवि ने प्रकृति के ताने-बाने में मानव-आत्मा का रूप-रंग भर कर उसका अपूर्व अंकन किया है।" [१]

---

[१] सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४७

'गुञ्जन' में पन्त का सौन्दर्य-चिन्तन

'पन्त जी सुन्दरम् के ही कवि हैं—यद्यपि उनका सुन्दरम् शिवम् और सत्यम् से शून्य नहीं है।'

—डा० नगेन्द्र

हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवियों में पन्त ही एक ऐसे कवि हैं जिन्हें हम 'सुन्दरम्' का एक मात्र कवि कह सकते हैं। शुरू से ही इनकी एक टेक रही है—सौन्दर्योल्लास। 'पल्लव' के जिस कवि ने कहा था—

अकेली सुन्दता कल्याणि!
सकल ऐश्वर्यों की सन्धान!

'युगांत' में उसी कवि ने यह छवि-चित्र दिया—

आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
तब स्वर्ग सद्य सौन्दर्य-दृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त,
कूजन, गुंजन की व्योम-वृष्टि!

डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में 'सौन्दर्य-प्राकृतिक, मानसिक और आत्मिक ही पंत की कविता का असली विषय है।' कवि के सौन्दर्य-चिन्तन पर प्रकाश डालने के पहले हम यह बता देना चाहते हैं कि काव्य में सौन्दर्य का क्या स्थान है तथा इसकी व्यावहारिक उपयोगिता क्या है।

काव्योत्कर्ष के लिये सौन्दर्य-तत्त्व की आवश्यकता समझी गयी है। इस संबन्ध में पूर्व और पश्चिम के काव्याचार्यों का एकमत है; लेकिन उसके स्वरूप में भेद अवश्य है। काव्य के रसास्वादन के लिये सौन्दर्य-

तत्व का होना आवश्यक माना गया है। जिस काव्य में सौन्दर्यानुभूति जितनी अधिक होती है वह काव्य उतना ही अच्छा होता है। सौन्दर्य वहीं होता है जहाँ सजावट होती है। मनुष्य की यह स्वाभाविक कमजोरी है कि वह सुन्दर वस्तुओं को ललचाई हुई दृष्टि से देखता है, क्योंकि ऐसी वस्तुयें मादक और आकर्षक होती हैं।[1] लेकिन वाह्य सौन्दर्य का क्या ठिकाना आज है, कल नहीं। क्षण-क्षण बदलने वाले रूप-सौन्दर्य एक तो अस्थिर और परिवर्तनशील हैं, दूसरे उनके प्रभाव में भी एकता नहीं होती। हो सकता है कि जिस वाह्य-सौन्दर्य के आकर्षण से हम प्रभावित हों, दूसरा व्यक्ति न हो। काली लैला दुनिया भर के लोगों की दृष्टि में 'हुस्न की मलका' (रानी) नहीं हो सकती, मजनूँ के दिल में वह भले ही अपना स्थान बना ले। चमड़े की आँखों से वाह्य-सौन्दर्य के निरीक्षण में दृष्टि-भेद हो सकता है, यह स्वाभाविक बात है। चीन देश का नारी-सौन्दर्य हम भारतीयों को पसन्द नहीं आता और इसी तरह चीन वालों को भी हमारे देश की युवतियाँ पसन्द नहीं आतीं। यह तो नजर का फेर है। तो अंत में सूरदास के शब्दों में यही कहना पड़ता है कि 'ऊधो मन माने की बात।' प्रश्न यह होता है कि कविता में किस प्रकार का सौन्दर्य आपेक्षित होता है, क्योंकि सौन्दर्य का वाह्य-पक्ष खतरे से खाली नहीं है।

प्राचीन संस्कृत और हिन्दी साहित्य में सौन्दर्य-वर्णन की कमी नहीं है। कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, विद्यापति तथा रीतिकाल के कवियों ने, काव्य में, सौन्दर्य का काफी मात्रा में वर्णन किया है। इन समस्त कवियों ने नारी-सौन्दर्य की रूप-योजना में ही अपनी प्रतिभा की प्रचुरता दिखलायी। इनमें से कुछ कवियों को छोड़कर ऐसे बहुत ही कम कवि हुए, जिन्होंने अपने काव्य में सौन्दर्य-तत्व को स्वतंत्र-स्थान दिया हो। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में पंत का स्थान सब से ऊँचा

---

१. सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १८

है, ऐसा कहा जा सकता है। हाँ, कालिदास ने सौन्दर्य की योजना और उसका वास्तविक रूप-विधान प्रस्तुत करने में सब से अधिक परिश्रम अवश्य किया है यह असंदिग्ध बात है। 'शकुन्तला', 'कुमार संभव' आदि ग्रन्थों में उन्होंने सौन्दर्य के तात्विक स्वरूप पर, जहाँ-तहाँ, अपनी धारणाएँ प्रकट की हैं। प्रकृति के वर्णन में, नारी के रूप-विधान में और उज्ज्वल प्रेम के निरूपण में कालिदास ने सौन्दर्य की सार्थकता सिद्ध की है। शकुन्तला के शरीर-सौन्दर्य का कितना रमणीय तथा आकर्षक वर्णन कवि ने इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है—

अधर किसलय रागः कोमल विटपानु कारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीय यौवन मंगेषु सन्नद्धम॥

शकुन्तला १/१६

शकुन्तला का अधर कोमल किसलय के समान रक्तवर्ण है। उसकी सुकुमार भुजाएँ लता की कोमल शाखायें हैं। उसके अंगों में यौवन (उरोज) खिले हुये पुष्प के समान आकर्षक हैं। पंत को नारी-सौन्दर्य का वर्णन करने की प्रेरणा संभवतः कालिदास से मिली होगी, ऐसा जान पड़ता है। 'गुंजन' की कविता 'भावी पत्नी के प्रति' में कवि ने नारी के प्रकृत सौन्दर्य का जो रूप-विधान किया है वह कालिदास की शकुन्तला के समान ही अनिंद्य सुन्दर है—

अरुण-अधरों की पल्लव-प्रात,
मोतियों-सा हिलता-हिम हास।
इन्द्र धनुषी-पट से ढँक गात
बाल-विद्युत कर पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास,

तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिय, प्राणों की प्राण !

—गुंजन, पृ० ४१—४२

मैं कह चुका हूँ कि सौन्दर्य के वाह्य-रूप पर भरोसा नहीं किया जा सकता। फिर सौन्दर्य का सार्वकालिक रूप क्या है? कालिदास के 'कुमार संभव' में छद्मवेशी महादेव ने तपस्विनी पार्वती के पास जब शंकर की कुरूपता की निंदा की, तब पार्वती ने कहा—'ममात्र भावै कर संमना स्थितम्'— 'उनके (शिव) प्रति मेरा हृदय एक मात्र भाव के रस में अवस्थित है।' रवि बाबू के शब्दों में 'भाव-रस में सुन्दर और असुन्दर का कठिन विच्छेद दूर हो जाता है। मजनूँ ने इसी भाव-सागर में डूब कर अपनी लैला के चरम सौन्दर्य का दर्शन किया था। 'फूल की पंखुरियों, दीपकों की पंक्तियों और चाँदी-सोने की थालियों से यदि भोजन-गृह सजा हुआ हो तो अच्छा है, किन्तु यदि निमंत्रित व्यक्ति को यजमान् (Host) से आदर के स्थान पर दुत्कार मिले, उसे प्रसन्नता प्राप्त न हो, तो उसे यह सब सजावट और सुन्दरता अच्छी नहीं लगती—क्योंकि यही प्रसन्नता अंतर का ऐश्वर्य है। प्रसन्नता की मीठी हँसी, मीठा बचन और मीठा व्यवहार इतना सुन्दर होता है कि वह केले के पत्ते का, सोने की थाली की अपेक्षा, अधिक मूल्य रखता है।' अतः रवि बाबू का कहना है कि 'जो व्यक्ति समझदार है, वह चित्र में रंग की तड़क-भड़क को देख कर मुग्ध नहीं हो जाता। वह मुख्य के साथ गौण का, बीच के साथ चारों ओर का और आगे के साथ पीछे के सामंजस्य को ढूँढ़ा करता है। रंग आँखों को खींचता है, किन्तु सामंजस्य की सुन्दरता को देखने के लिये मन की आवश्यकता है। उसको गंभीर रूप से देखना पड़ता है, इसलिये उसका आनंद भी गंभीरतर होता है।' कालिदास के 'अनुसार आकृति की सुंदरता और हृदय की वक्रता दोनों साथ-साथ नहीं रह सकती—'न तादृशा आकृति

विशेषा गुण विरोधिनो भवन्ति ।' उनकी दृष्टि में सौन्दर्य को वाह्य-साधनों की अपेक्षा नहीं है। वास्तविक सौन्दर्य सभी अवस्थाओं में मनोरम एवं रमणीय होता है—

अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्व मा कृति विशेषाणाम् ।'

शकुन्तला १ १८

उनका मत है कि समस्त दृश्य-प्रकृति में जो सौन्दर्य या रमणीयता फैली हुई है, मानवीय लावण्य उसी का अंगभूत है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि सौन्दर्य साधन नहीं, साध्य है। हिन्दी के महाकवि 'प्रसाद' ने सौन्दर्य की परिभाषा इन पंक्तियों में दी है—

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं ।

—कामायनी

इस सौन्दर्य को प्रसाद ने निम्नलिखित पंक्तियों में साकार-रूप दे दिया है—

अम्बर हिम श्रृंगों से
कलरव कोलाहल सान लिये
विद्युत की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये।

—कामायनी

प्रसाद के शब्दों में सौन्दर्य 'अन्तःचेतना का उज्ज्वल वरदान' है, 'विद्युत' की प्राणमयी धारा' है, एक 'उन्माद' है। यह हृदय की अनुभूतियों का विषय है। "प्रसिद्ध दार्शनिक ह्यूम (Hume) ने भी कहा था कि

'Beauty is not quality in things themselves, it exists merely in the Mind which comtemplates them' प्रसिद्ध अंग्रेजी-आलोचक अबर क्रोम्बी (Abercrombie) ने भी इस सौन्दर्य-शक्ति की महत्ता स्वीकार करते हुये लिखा है कि—'So We are driven onward up ward in the wind of beauty' अतएव, प्रो० शिव नन्दन प्रसाद के शब्दों में "स्थूल बाह्य-सौन्दर्य से सूक्ष्मभाव-सौन्दर्य अधिक श्रेयस्कर है। इसीलिये भारतीय वाङ्मय में सदा से रूप-सौन्दर्य की अपेक्षा भाव सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि पाश्चात्य कलाकारों ने, विशेषतः ग्रीस के प्राचीन कलाकारों ने, शरीरवयाबों के सुन्दर सामंजस्यपूर्ण संगठन और संचालन में ही सौन्दर्य के आदर्श की चरम परिणति मानी है। फिर भी, पश्चिम के कुछ श्रेष्ठतम और अमर कलाकारों की कृतियों में उन तत्वों की अपेक्षा भावों की कोमल कमनीयता का प्राधान्य है। बात यह है कि बाह्य-रूप भाव का आधार है और कारण भी। रूप का बिना भाव का उद्बोधन कठिन है और भाव के बिना रूप का अस्तित्व निरर्थक, क्योंकि चरम आस्वादनीय पदार्थ रस-अवस्था को प्राप्त भाव है, रूप नहीं। अतएव, एक सुन्दर गुलाब के फूल से एक सुन्दर नारी की मुखाकृति अधिक महत्व रखती है, क्योंकि प्रथम में भाव नहीं है और द्वितीय में लज्जा, व्रीड़ा और उत्कंठा आदि अनेक भावों का अस्तित्व है। इस प्रकार कविता में जड़-रूप सौन्दर्य की अपेक्षा चेतन भाव-सौन्दर्य अधिक महत्व रखता है।"[1] इस दृष्टि से विचार करने पर सौन्दर्य साधन भीहै और साध्य भी।

'दीपशिखा' की भूमिका में श्रीमती महादेवी वर्मा लिखती हैं कि "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अनेकता में अनन्त।" इसमें महादेवी ने

१. काव्य लोचन के सिद्धान्त, पृ० १३४

सौन्दर्य को 'सत्य' के शिखर पर पहुँचने का साधन कहा है। लेकिन जिस अर्थ में उन्होंने सौन्दर्य को साधन कहा है वह भावात्मक या आध्यात्मिक है। रवि बाबू ने लिखा है कि "सत्य के साथ मंगलमय के पूर्ण सामंजस्य को यदि हम देख सकें तो फिर सौन्दर्य हमारे लिये अगोचर नहीं है।...मंगलमय वस्तु हमारा भला करती है—इसलिये हम उसे भला कहते हैं। वास्तव में जो भी वस्तु मंगलमय होती है, वह हमारी आवश्यकताओं को पूरा करती है और सुन्दर भी होती है। नीति के जो पंडित हैं, वे उस मंगलमय वस्तु का संसार में नीति दृष्टि से प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं और कवि लोग मंगल की उसकी अनिर्वचनीय सौन्दर्य की मूर्ति में लोगों के निकट प्रकाशित करते है।"[1] इस तरह सौन्दर्य का संबंध सत्य और शिव दोनों से है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सम्मिलित अभिव्यक्ति जिस काव्य में होती है, वह कृति अमर होती है। 'गुंजन' इस दृष्टि से एक अमर रचना है क्योंकि इसका कवि इन तीन तत्त्वों की वास्तविकता के रहस्यों को समझने में समर्थ हो सका है। श्री गुलाबराय के शब्दों 'में, "कवि 'रसो वैसः' (सत्य) की उपासना करता है। वह सत्य और शिव की युगल मूर्ति को सौन्दर्य का स्वर्णकिरण पहना कर उनकी उपासना करता है। सत्य कर्त्तव्य-पथ पर आकर शिव बन जाता है और भावना से समन्वित हो सुन्दरम् के रूप में दर्शन देता है। सुन्दरम् सत्य का ही परिमार्जित रूप है। सौन्दर्य सत्य को ग्राह्य बनाता है।"[2] पंत ने इन तीनों में एक ही रूप का दर्शन किया है—

यही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप,
लोक सेवा में शिव अविकार।

—पंत

---

[1] साहित्य, पृ० ३५ [2] काव्य के रूप

गीता के १७वें अध्याय में योगिराज कृष्ण ने 'वाणी के तप' पर ज़ोर देते हुए कहा है कि—

अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते ।'

—गीता

ऐसे वाक्यों का बोलना जो दूसरों के चित्र में उद्वेग उत्पन्न न करे, सत्य हो, प्रिय तथा हितकर हो तथा वेदशास्त्रों के अनुकूल हो, वाणी का तप कहलाता है। इस श्लोक में आये तीन शब्द 'सत्यं प्रिय हितं' के अन्तर्गत 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का नवीन रूप अन्तर्युक्त हो जाता है। भारत के अधुनिक साहित्य में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' जैसे शब्दों का व्यवहार अरिस्टौटल (Aristotle) द्वारा प्रतिपादित The truth, the good, the Reauty का शाब्दिक अनुवाद है।[1] इस तरह रवि बाबू के शब्दों में यह स्पष्ट है कि 'सत्य की पूजा सौन्दर्य में है।' सौन्दर्य की उपासना मन की उच्चतम दशा है जिसका संबंध प्रजा (Intuition) से है। इसके अतिरिक्त एक बात और विचारणीय है। सौन्दर्यानुभूति की परिणति आनन्दानुभूति और रसानुभूति में होती है। यह सौन्दर्य-चिन्तन की पराकाष्ठा है। आनंदोपलब्धि हो जानें पर सत्योपब्धि आप-ही-आप हो जाती है। आनन्द मन की एक अवस्था है।...अनन्दानुभूति का विचार करते समय पात्र विशेष की स्थिति—दिक् और काल का ज्ञान आवश्यक है। 'सौन्दर्य का बोध किसी व्यक्ति-विशेष में होता है। अतः सौन्दर्य की अनुभूति व्यक्ति के स्वभाव पर भी निर्भर करती है। रवि बाबू ने लिखा है कि 'सौन्दर्य-बोध को पूर्ण रीति से प्राप्त करने के लिये मनुष्य को शिक्षा की आवश्यकता है, गंभीरता की आवश्यकता है और अन्तरिक शांति की आवश्यकता है। इस प्रकार सौन्दर्य-चिन्तन एक तरह की मनः साधना है।' रूप-सौन्दर्य से भाव-सौन्दर्य की ओर

[1] काव्य के रूप : श्री गुलाबराय

प्रगति जब अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच जाती है तो भाव-सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त कर लेता है' और तब फिर दुनियाँ की कोई भी वस्तु असुन्दर नहीं होती। इस महिम, विराट् और उदात्त सौन्दर्य की झाँकी पाना साधारण काम नहीं है। इसके लिये पंत जैसे ऊँचे व्यक्तित्व का कवि चाहिये। प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'पंत जी का गुंजन' में लिखा है कि 'गुंजन' का कवि सत्य और सौन्दर्य का वास्तविक साक्षात्कार कर पाता है।...सौन्दर्य अब उसके लिये वाह्य-पार्थिव, आकृति या शारीरिक रूपरेखा पर अनिवार्य रूप से आधारित नहीं है। उन्होंने मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लिया है—उस सौन्दर्य को देखा है जो मरता नहीं, बदलता नहीं, छीना नहीं जाता, जो अजर, अमर, अविनाशी है। यह सौन्दर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की सीमाओं में अबद्ध नहीं, व्यक्ति-निरपेक्ष का सार्वभौम तत्व है जो विविध नाम रूप (प्रेयसी, मधुबन, अप्सराएँ, चाँदनी) द्वारा समय-समय पर अपनी अभिव्यक्ति करता है। कवि ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है वह शारीरिक सौन्दर्य नहीं है। वह अतीन्द्रिय और भावात्मक है। कवि ने जहाँ-जहाँ सौन्दर्य का चित्रण किया है वहाँ रूप का नहीं, प्रभाव का प्रेषण करना उसको अभीष्ट रहा है।"[1]

ऊपर हमने सौन्दर्य का सैद्धान्तिक विवेचन किया है। अब मैं इस विवेचना के आधार पर 'गुंजन' के सौन्दर्य-चिन्तन पर प्रकाश डालूँगा।

पंत का कवि-जीवन प्राकृतिक-सौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण से आरभ हुआ है। 'वीणा'-'ग्रंथि'-'पल्लव'-काल में कवि को प्राकृति सुषमा के प्रति गहरी ममता थी। प्रकृति के वाह्य-सौन्दर्य में उसका तन-मन इतना रमा हुआ था कि वह कुछ दूसरी बात सोच ही नहीं पाता था। प्रकृति के प्रति उसके हृदय में इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि प्रकृति-सौन्दर्य के सामने नारी-सौन्दर्य नगण्य था। 'वीणा' में उसने कहा था कि—

[1] पंत जी का गुञ्जन, पृ० १६५

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

पंत को कविता लिखने की प्रेरणा भी प्राकृतिक सौन्दर्य से मिली थी। प्रकृति के विविध रंगीन रूपों के क्षण-क्षण बदलते हुये रंगों—आकारों—ने ही कवि को सौन्दर्य के प्रति प्रेम और जिज्ञासा की दृष्टि दी थी। प्रकृति का यह आकर्षण उसे आरंभ से ही अपनी ओर खींचता रहा। पंत ने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में इस संबंध में जो अपना वक्तव्य दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति-प्रेम ने ही उनमें एक 'अज्ञात आकर्षण' को जन्म दिया है और उस 'अज्ञात आकर्षण' ने 'अव्यक्त सौन्दर्य' को। उसका हृदय उस सौन्दर्य के भीतर अपने को खो देने को उत्सुक रहा है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति के सौन्दर्य ने ही उसमें विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य-भावना भर दी है, जिसने उन्हें चिन्तक बना दिया है। पंत ने प्रकृति के उन्मुक्त सौन्दर्य-रूप का ही अत्यधिक वर्णन किया है। प्रकृति की कुरुपताओं का वर्णन 'परिवर्तन' कविता को छोड़ कर और कहीं नहीं मिलता, क्योंकि कवि की सहज प्रवृत्तियाँ उस ओर नहीं रमतीं। वह आरंभ से प्रकृति के सुन्दर-पक्ष का चित्रकार रहा। पंत की प्रकृति-पूजा यद्यपि 'गुंजन' में आकर मानव-पूजा में परिणत हो गयी है, फिर भी उसके प्रति उनका सहज-प्रेम व्यक्त होकर ही रहा है। पंत कहीं भी हों वे प्रकृति की सुषमा को भूल नहीं पाते। ऐसा गहरा है उनका प्रकृति-प्रेम।

पंत ने अक्सर प्रकृति को 'सखी', 'सजनी', आदि कहकर संबोधित किया है—

हाँ, सखि आओ, बाँह खोल हम
लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,

फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में !
हो जावें द्रुत अन्तर्धान ।

कवि के प्राकृतिक सौन्दर्य के आधार ये हैं--बसन्त, तितली, फूल, चाँदनी मधुकरी, ओसकण, विहगों का कलरव, जुगनू, संध्या आदि। बसन्त की श्री-सुषमा के प्रति उसके हृदय में अनन्य प्रेम है। 'गुंजन' के प्रथम गीत में बसन्त के प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा गया है जिसमें भौंरा का गुंजन करते हुये, एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ते हुए दिखलाया गया है। इसी तरह 'मधुबन' शीर्षक कविता में प्रकृति की सुन्दर, सुखद और शीतल सुषमा का मनोहर चित्र अंकित किया गया है। 'नौका-विहार', 'चाँदनी', 'एक तारा' शीर्षक कविताओं में भी प्रकृति के स्वतंत्र रूपों का वर्णन किया गया है। कवि का उन्मुक्त प्रकृति-प्रेम इन गीतों में प्रकट हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य की श्री-सुषमा का वर्णन करने में पंत को उतनी ही सफलता मिली है जितनी कवि-कुल गुरु कालिदास तथा अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ को।

पंत को जब तक 'ग्रंथि' की नायिका से प्रेम नहीं हुआ था तब तक वे प्रकृति के खुले पृष्ठों का अध्ययन करते रहे; लेकिन जब उसकी आँखें किसी सौन्दर्य की प्रतिमा की आँखों से उलझ गयीं तब वे उसकी आँखों में प्रकृति की समस्त श्री-सुषमा को उड़ेल कर उसका सौन्दर्य-चयन करने लगे। इसके पूर्व वह केवल भावुक थे और अब वह भावुकता के पीछे दीवाने हुये क्योंकि अब तक वे नारी-के-रूप-बाण से घायल हो चुके थे। अब वह काल्पनिक सौन्दर्य की सृष्टि रचने में संलग्न हो गये--

लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से,

छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित-गढ़ी से सीप

ग्रंथि पृ० ६८

लेकिन शीघ्र ही कवि की स्वप्न-शशि निराशा के बादलों में छिप जाती है और वह 'हा' कर उठता है। 'गुंजन' में यद्यपि कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन की निराशजन्य भावनाओं को व्यक्त नहीं किया है तथापि एक-दो गीत ऐसे अवश्य आये हैं जिनमें वह अपने हृदय की उमड़ती हुई वेदना को दबा नहीं सका है। 'झर गई कली' वाले गीत में मानों कवि ने अपनी पूरी प्रेम-कहानी कह दी है। लेकिन तुरंत ही वह यह कहकर अपने मन को संतोष देता है कि 'जग-जीवन में लेन-देन तो होता ही रहता है, इसके लिये व्यर्थ चिन्ता करने की अब कोई आवश्यकता नहीं।' वह भावुक से चिन्तक हो जाता है। उसकी सौन्दर्य-भावना संयत और व्यवस्थित हो जाती है। जिस नारी के शारीरिक सौन्दर्य पर उसका मन-मयूर नाच उठता था अब वह उसके अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश पाने की चेष्टा करता है। वह अपनी 'भावी पत्नी' की मनः कल्पना करता है—

न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओं की-सी वाण
वाल-रति-सी अनुपम असमान—
न जाने, कौन, कहाँ, अनजान,
प्रिय, प्राणों की प्राण !

—गुञ्जन, पृ० ३६

कवि की 'सुन्दरता कल्याणी' अब आँखों का आवरण हटाकर उसके हृदय प्रदेश में प्रवेश करती है। उसकी प्रेयसी प्राकृतिक सौन्दर्य के कण-कण में व्याप्त हो जाती है—

खोल सौरभ का मृदु कच-जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे जड़ खग-बाल,
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद।

—गुंजन, पृ० ४२

'अप्सरा' में कवि नारी-सौन्दर्य की विराट्, महिम तथा उदात्त छवि का दर्शन करता है। यहाँ का सौन्दर्य आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँच कर परम सत्य का साक्षात्कार करता है। विश्व के कण-कण में वह व्याप्त है जो अकथ, अलौकिक, अमर और अगोचर हो उठता है, जो 'सिर्फ भावों का आधार' है। यह है रूप-सौन्दर्य पर भाव-सौन्दर्य की विजय, जिसके लिये कवि अब तक प्रयत्नशील रहा। इस विराट् सौन्दर्य की व्याख्या कवि ने इस तरह की है—

प्रति युग में आती हो रंगिणि!
रच-रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि ईप्सित अप्सरि,
त्रिभुवन में लीन।
अग-अंग अभिनव शोभा
नव वसन्त सुकुमार,
भृगुटि-भंग नव-नव इच्छा के
भृङ्गों का गुंजार,
शत-शत मधु-आकांक्षाओं से
स्पंदित पृथु उर-भार,
नव-आशा के मृदु मुकुलों से
चुम्बित लघु-पदचार।

अप्सरा, पृ० ६६

'गुंजन' की अंतिम पंक्तियों में, ऐसा लगता है, कवि को उस विराट् सत्य और सौन्दर्य का वास्तविक साक्षात्कार हो गया है, जब वह कहता है—

हो गए तुम से एकाकार
प्राण में तुम और तुम में प्राण

गुञ्जन, पृ० १०८

'गुंजन' में रूप-सौदर्न्य क्रमशः भाव-सौन्दर्य में परिणत होता चला गया है। अन्त में, यह भाव-सौन्दर्य भी आध्यात्मिक सौन्दर्य में बदल जाता है जब सत्यं शिवं और सुन्दर में कोई अंतर दृष्टिगत नहीं होता। इस तरह हम देखते हैं कि पंत वस्तुवादी सौन्दर्य-लोक से अध्यात्मवादी सौन्दर्य-लोक में पहुँच कर शांति का अनुभव करता है। इस स्थिति में पहुँच कर मनुष्य को सुख और दुःख की कोई अनुभूति नहीं होती। पन्त के शब्दों में यह 'सुख-दुख से ऊपर मन का' की स्थिति है।

कवि जब सौन्दर्य की संकीर्ण गलियों से निकल कर उसके विराट् रूप का दर्शन करता है तब उसके विचार, उसके सिद्धान्त, उसके दृष्टिकोण सब कुछ बदल जाते हैं। जीवन और जगत् में उसे सर्वत्र सौन्दर्य की ही मधुरिमा देखने को मिलती है। वह उल्लास और आह्लाद से भर जाता है। जिस ओर वह अपनी आँखें फेरता है उधर ही वह 'हिमहास' की सरिता प्रवाहित होते हुये पाता है। दुनिया की कोई भी वस्तु उसे असुंदर नहीं दीख पड़ती। सर्वत्र सौन्दर्य का ही राज्य है। प्रातःकाल वह विहगों को जग-जीवन का सुन्दर तथा सुखद गीत गाता हुआ पाता है, सन्ध्या में भी यही गीत सुनाई पड़ता है—

गाता खग प्रातः उठ कर—
सुन्दर, सुखमय जग-जीवन !
गाता खग सन्ध्या-तट पर—
मंगल, मधुमय जग-जीवन !

—गुंजन पृ० ३०

× × ×

विश्व के मानव भी उसे सुन्दर दिखाई पड़ने लगते हैं—

मेरे विमुग्ध-नयनों की
तुम कान्त-कनी हो उज्ज्वल;
सुख के स्मिति की मृदु-रेखा,
करुणा के आँसू कोमल।

—गुंजन पृ० ३५

सौन्दर्य के इस विराट् रूप को पाकर कवि का हृदय अनुभूतियों से भर जाता है। सारी सृष्टि उसे प्रिय, सुन्दर, सुखद और मादक मालूम होती है। तब वह इस आह्लाद के आवेश में गा उठता है—

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर सुखर,
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर।

—गुंजन पृ० २६

आचार्य शुक्ल का कथन है कि "कलावाद' के प्रभाव से जिस 'सौन्दर्यवाद' का चलन योरप के काव्य-क्षेत्र के भीतर हुआ, उसका पंत जी पर पूरा प्रभाव रहा है।"[१] मैं कह चुका हूँ कि पंत के कवि-निर्माण में देशी-विदेशी अनेक कवियों का योग रहा है। इस बात का स्वयं पन्त ने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में स्वीकार करते हुये लिखा है—'यदि लिखना एक 'unconscious-consious process' है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों (देशी-विदेशी कवियों) की निधियों का यत्र-तत्र उपयोग किया है और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है'।[२] इस दृष्टि से पंत के कवि-व्यक्तित्व पर पाश्चात्य 'कलावाद' का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं माना जा सकता क्योंकि कवि ने कई

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७८४, [२] आधुनिक कवि पंत पृ० १३,

स्थानों पर अपने सौन्दर्य-चयन को अपने जीवन की साधना कहा है, जिसको शुक्ल जी ने भी स्वीकार किया है--

धूल की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमयगान।
सुमन दल चुन-चुन कर निशि भोर
खोजता है अनजान वह छोर।

डॉ० नगेन्द्र का भी कहना है कि 'उसमें भी जो बात सब से मुख्य प्रतीत होती है, वह है उनकी (पंत की) सुमन-चयन-प्रकृति।' पंत के सौन्दर्यवाद पर पाश्चात्य कलावाद का प्रभाव पड़ा है या नहीं, इस विवाद में पड़ने की मैं जरूरत नहीं समझता। लेकिन इतना तो अवश्य मानता हूँ कि पाश्चात्य कलावाद में जिस पलायन- प्रवृत्ति को अत्यधिक प्रश्रय दिया गया है उससे पंत ने अपने को बचाने की भरसक चेष्टा की है क्योंकि कलावाद में 'कला कला के लिये है' वाला सिद्धान्त ही अधिक मुखर हो उठा है जो इस कवि को स्वीकार नहीं है। पंत ने यह स्पष्ट कहा है जो कि 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' में मेरी सौन्दर्य-कल्पना क्रमशः आत्म-कल्याण और विश्व-मंगल की भावना की अभिव्यक्ति करने के लिये उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।' उन्होंने अन्यत्र लिखा है 'मैं 'पल्लव' से 'गुंजन' में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ।' कवि के इन विचारों से यह सिद्ध है कि 'गुंजन' में उसका सौन्दर्य-चिन्तन उतना गहरा नहीं है जितना कि मानव मन के चिरन्तन प्रश्नों का मनन और चिन्तन। मैं समझता हूँ कि पंत के सौन्दर्यवाद पर कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कीट्स का ही अधिक ऋण है। पाश्चात्य कलावाद से ये दूर ही रहे हैं। हाँ, 'गुंजन' की पूर्ववर्ती रचनाओं में वे पलायनवादी अवश्य थे लेकिन अब वे मनवता के सुन्दरम्' शिवम् और सत्यम् के पुजारी हैं।

छायावाद के आलोक में 'गुञ्जन'

हिन्दी में 'छायावाद' एक विवाद-ग्रस्त विषय है। इसलिये इसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। यह भी निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता कि इसका वास्तविक स्वरूप क्या है क्योंकि इसके जन्म से ही इस पर आलोचकों की भँवें तनी रही हैं और तभी से इसे कड़ी आलोचना का शिकार होना पड़ा है। 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' की कहावत इस पर अच्छी तरह लागू होती है। 'गुंजन' की छायावादिता का अध्ययन करने के पहले उसके अनिश्चित रूप की एक हल्की झाँकी ले लेना अनुचित न होगा क्योंकि जब तक हम छायावाद की कसौटी निश्चित तैयार नहीं कर लेते तब तक 'गुंजन' की छायावादिता का मूल्य आँकने में असमर्थ ही रहेंगे।

हिन्दी में छायावाद का आरंभ कैसे हुआ, इसके बारे में अनेक रोचक कहानियाँ कही जाती हैं। स्व० रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि हिन्दी में छायावाद का आगमन बंगला के माध्यम से हुआ। अपने 'इतिहास' में उन्होंने लिखा है कि "मैथिली शरण गुप्त, श्री मुकुटधर पाण्डेय आदि कई कवि खड़ी बोली को अधिक कल्पनामय और अन्तर्भाव-व्यंजक रूप-रंग देने में प्रवृत्त हुये। यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता बना ही रही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ 'रहस्यवाद' या 'चित्र-भाषावाद' को एकान्त ध्येय बनाकर चल पड़े।...इस बँधे हुये क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।"[1] शुक्ल जी के मतानुसार हिन्दी में छायावाद का आगमन एक आकस्मिक घटना है

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास ७२५

और बंगला के माध्यम से 'योरोपीयकाव्य' का 'अनुकरण' कर इसने रहस्यवाद, प्रतीकवाद, प्रकृतिवाद, कलावाद जैसे 'वादों' को जन्म दिया। यह भारतीय काव्य-परंपरा से बिलकुल अलग चीज है। इसके विपरीत, श्रीमती महादेवी वर्मा का कथन है कि 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था जिसके कारण मनुष्य को अपने सुख-दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है।'[१] महादेवी के मत से छायावाद मनुष्य के हृदय और प्रकृति के अभिन्न संबंध का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यह प्राचीन भारतीय-काव्य की धारा से संबंधित है। देवी जी के विचार शुक्ल जी के विश्वास से बिलकुल भिन्न हैं। उन्होंने आगे चल कर लिखा है कि "छायावाद आज के यथार्थ से दूर जान पड़ने पर भी भारतीय काव्य की प्रेरणाओं के निकट है। इसके प्रतिनिधि कवि भारतीय संस्कृति-दर्शन तथा प्राचीन साहित्य से विशेष रूप से परिचित रहे। पश्चिमी और बंगला-काव्य-साहित्य से उनका परिचय हुआ अवश्य, परन्तु इसका अनुकरण-मात्र काव्य को इतनी समृद्धि नहीं दे सकता। विशेषतः बंगला से उन्हें जो मिला वह तत्वतः भारतीय ही था, क्योंकि कवीन्द्र रवीन्द्र स्वयं भारतीय संस्कृति के सबसे समर्थ प्रहरी थे।" हिन्दी के छायावाद पर दिये गये ये विचार उस व्यक्ति के हैं जो स्वयं छायावादी कविता के उन्नायकों और पोषकों में से एक है। अतः इसकी सच्चाई में विश्वास किया जा सकता है। महादेवी ने ऊपर जो कुछ कहा है उससे यह स्पष्ट होता है एक हिन्दी का छायावाद उसके कवियों की युग युग की भारतीय सांस्कृतिक चिन्तन-पद्धति का आधुनिक संस्करण है। छायावादी काव्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो० नन्द दुलारे वाजपेयी ने छायावाद को और भी व्यापक तथा गहरे अर्थ में लिया है। उन्होंने शुक्ल जी के मत का प्रतिवाद करते तथा महादेवी के

[१] महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—'छायावाद' शीर्षक लेख

उपरिलिखित विचारों को पुष्ट करते हुये लिखा है कि "छायावाद को हम शुक्ल जी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एवं लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकते। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी।"[1] वाजपेयी जी के मत से छायावाद में 'एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना' का उदय हुआ है। इसके अतिरिक्त, इसमें 'एक स्वतंत्र दर्शन' (Independent philosophy) की अवतारणा भी हुई है जो इस देश की चिन्ता-धारा से पृथक् नहीं है। यद्यपि हिन्दी के महाकवि स्व० जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को 'अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट शैली मात्र' कहा है तथापि, वे यह मानते हैं कि 'छायावाद अद्वैत-रहस्यवाद की सौन्दर्यमूलक अभिव्यंजना है जो साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष की अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' और 'इदम्' से समन्वय का सुन्दर प्रयत्न हुआ है।' प्रसाद जी ने शुक्ल जी की ही बातों को प्रकारान्तर से दुहराया है। शुक्ल जी ने छायावाद को दो अर्थों में लिया है—रहस्यवाद के अर्थ में; वे छायावाद और रहस्यवाद को एक ही वस्तु समझते हैं और काव्य-शैली की विशिष्ट पद्धति के रूप में। अन्तर इतना ही है कि जहाँ प्रसाद जी छायावाद या रहस्यवाद को देशी चिन्ता-धारा का एक अभिन्न अंग मानते हैं वहाँ शुक्ल जी उसे विदेशी समझते हैं। 'हरिऔध' जी तथा मिश्र बंधुओं ने भी छायावाद को काव्य की 'एक विशिष्ट शैली' ही कहा है। हिन्दी में छायावादी काव्य-साहित्य के आलोचकों और मर्मज्ञों का नितान्त अभाव है। यही कारण है कि अब तक इसका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो सका है। हिन्दी में एक भी ऐसी स्वतंत्र आलोचनात्मक पुस्तक नहीं है जिसमें छायावाद के भिन्न-भिन्न पहलुओं की विवेचना की गई हो। खंडनात्मक आलोचना की कभी नहीं है। छायावाद के साहित्य में

[1] जयशंकर प्रसाद पृ० १८

दोष-दर्शन करने वाले आलोचकों की कमी नहीं है। ऐसे आलोचकों बेहद कमी खटकती है जिन्होंने छायावादी साहित्य का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन किया हो। इसके कुछ अपवाद अवश्य हैं। उनमें प्रो० नन्द दुलारे वाजपेयी, महादेवी, डॉ० नगेन्द्र, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन आलोचकों ने छायावाद की गहराई में डूबकर उसकी वास्तविकता को जानने की भरसक चेष्टा की है। दिनकर, डॉ० केसरी नारायण, डॉ० नागेन्द्र तथा प्रो० नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपनी-अपनी आलोचनात्मक पुस्तकों में छायावाद की जो सहानुभूति-पूर्ण और मार्मिक व्याख्या की है, वह अन्यत्र नहीं पायी जाती।

श्री 'दिनकर' ने अपनी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति 'मिट्टी की ओर' में छायावाद के संबध में बिलकुल नया दृष्टिकोण दिया है। उनका कहना है कि "छायावाद हिन्दी में उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था। यह केवल साहित्यिक शैलियों का ही नहीं, अपितु, समग्र जीवन की परम्पराओं, रूढ़ियों, शास्त्र-निर्धारित मर्यादाओं एवं मनुष्य की चिन्ता को सीमित करने वाली तमाम परिपाटियों के विरुद्ध जन्मे हुये एक व्यापक विद्रोह का परिणाम था और मनुष्य की दबी हुई स्वतंत्रता की भावना को प्रत्येक दिशा में उभारने वाला था। छायावाद का इतिहास उस युग का इतिहास है जब मनीषियों ने पहले-पहल अपने आपको पहचाना और रुढ़ियों के संकेत कर चलने से इन्कार कर दिया।"[1] छायावाद के क्रांतिकारी कवियों में, दिनकर लिखते हैं, "पंत जी ही ऐसे कवि थे (हैं) जिन्होंने अपने पक्ष की प्रबलता को भली भाँति जानने वाले कर्म पुरुष की स्पष्टता के साथ आरंभ में ही 'पल्लव' की भूमिका में उन सभी उद्देश्यों की घोषणा कर दी थी जिनकी स्थापना के लिये वे साहित्य में आये। 'पल्लव' की भूमिका छायावाद का मेनिफेस्टो (Manifesto) थी और आंदोलन का रुख उस लेख में

[1] मिट्टी की ओर पृ० १२-१३

जितनी स्पष्टतापूर्वक प्रकट हुआ उतना साफ और किसी निबन्ध में नहीं। यह भी ध्यान देने की बात है कि नए कवियों में जनता ने पन्त जी को ही अपना सर्वाधिक प्रेम अर्पित किया और आज वे ही छायावाद का सुधार भी कर रहे हैं।"[1] श्री दिनकर के इन विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में छायावाद नये क्रांतिकारी विचारों का विस्फोट है और उसकी रूप-रेखा निश्चित करने में पन्त ने जितने संयम और साहस से काम लिया उतना दूसरे कवि ने नहीं किया। महादेवी ने भी लिखा है कि 'जितनी बड़ी क्रान्ति छायावाद काव्य ने की उतनी बड़ी क्रांति हिन्दी कविता के किसी युग में नहीं हुई। भाषा, भाव, शैली-व्यंजना—सभी में शतप्रतिशत क्रांति हुई।" अब हिन्दी के मान्य आलोचक यह स्वीकार करने लगे हैं कि हिन्दी का छायावादी काव्य क्रांति का प्रतीक है। हिन्दी के विद्वान प्रगतिवादी आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान ने यह सहर्ष स्वीकार किया है कि 'छायावादी कवि एक प्रकार का क्रान्तिकारी कवि था, क्योंकि उसकी वाणी, उसके भाव-चित्रों में सामंती प्राचीन के प्रति गहरा प्रतिवाद था।' अब लोग छायावाद की तह में पैठकर उसके भाव-पक्ष पर प्रकाश डालने लगे हैं। साथ ही, उस काल की सामाजिक, अर्थिक और राजनैतिक अवस्थाओं की पृष्ठ-पीठिका को ध्यान में रखकर उसकी (छायावाद) विवेचना भी होने लगी है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने छायावाद का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुये तथा उस युग की आर्थिक स्थितियों का विश्लेषण करते हुये यह सिद्ध किया है कि 'हिन्दी में छायावाद की कविता पूँजीवाद की कविता है।' हमें इस विवाद में पड़ना नहीं है।

सामान्यतः छायावादी कवि पर एक भारी आक्षेप लगाया जाता है—छायावाद का कवि पलायनवादी है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने छायावाद पर इस बात आक्षेप का लगाया है कि 'छायावादी कवियों की

[1] वही पृ० २०-२१

चेतनाहीन अनुभूति वास्तव में एक ऐसे संसार की कल्पना न कर सकी जिसमें आधुनिक विषमताएँ नष्ट हो चुकी हों)'[१] श्री दिनकर ने भी इसका समर्थन करते हुये लिखा है कि 'छायावादकालीन रचनाओं में यह संकेत भी नहीं मिलता कि कवियों ने समकालीन जीवन को भली-भाँति देखकर उसे रुक्ष एवं अकाव्यात्मक समझकर छोड़ दिया हो। अधिकांश कवियों ने आस पास की दुनियाँ को समझने का प्रयास तक नहीं किया।' श्री दिनकर के इस आक्षेप से हम असहमत हैं। यह सच है कि छायावाद की रचनाओं में युग की हलचल नहीं देखी जाती लेकिन यह भी सच है कि सभी बड़े बड़े छायावादी कवियों ने तत्कालीन युग की मूल समस्याओं को समझने का प्रयास अवश्य किया है। डा० केसरी नारायण शुक्ल ने ठीक लिखा है कि "छायावादी कविता जन-जीवन से उदासीन रही, फिर भी वह युग के प्रभाव से बच न सकी। युग-धर्म या समय की छाप छायावादी काव्य पर पड़ी हुई है। छायावाद का युग राष्ट्रीय जागरण का युग था।...राष्ट्र जीवन की विवशता और उसके उत्साहपूर्ण बलिदान की झलक छायावादी काव्य के बीच मिलती है। जिस प्रकार राष्ट्रीय जीवन स्वतंत्रता की भावना से ओत-प्रोत था वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में — सामाजिक, नैतिक, आर्थिक—उसको संकुचित और बंदी बनाने वाली रूढ़ियों के मानने को तैयार नहीं था; उसी प्रकार छायावादी कवि भी स्वच्छंदता के लिये लालायित था।...दमन-चक्र और दरिद्रता में जो निराशा जगी उसकी अभिव्यक्ति प्रायः सभी छायावादी कवियों की रचना में मिलती है।...अतएव, छायावाद अकारण और अनायास न था। छायावाद की मूल प्रवृत्तियों के कारण भी सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे में मिल जाते हैं।...उसका जन्म तथा विकास सहेतुक है। एक बात और, राष्ट्रीय जन-जागरण की कर्मशीलता के युग में छायावाद की

---

[१] अधुनिक हिन्दी साहित्य में 'छायावादी कविता में असंतोष-भावना' लेख से;

रहस्य-भावना और अंतर्मुखी प्रवृत्ति लोगों को कुछ विलक्षण प्रतीत होती है, किन्तु ऐसी बात नहीं है। संघर्ष के प्रत्येक युग के पहले और उसके आरंभिक वर्षों में अधिकांश देशों—फ्रांस, आयर्लैंड, रूस, इंगलैण्ड—के साहित्य में इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं।... हमारे देश की राष्ट्रीय क्रांति के बीच छायावाद में एक ओर तो स्वच्छंदता की प्रवृत्ति लक्षित होती है और दूसरी ओर रहस्यात्मकता और अंतर्दर्शन की प्रवृत्ति है।...हिन्दी साहित्य में छायावाद अलग और अनोखी घटना नहीं है।...इस प्रकार छायावाद में पलायन और प्रगति दोनों छिपे हैं। एक ओर यदि जन-जीवन से उदासीनता और कृत्रिमता है तो दूसरी ओर विद्रोह और सत्य की संजीवनी है।...इस पलायन और प्रगति के कारण भी स्पष्ट हैं।'[1]

'पलायन' और 'प्रगति' छायावादी काव्य की एक भारी असंगति है जिसका स्पष्ट निदर्शन 'गुंजन' है। छायावादियों पर यह व्यर्थ का आक्षेप लगाया गया है कि वे जीवन के प्रति सदैव उदासीन रहे। बात यह है कि हिन्दी के छायावादी कवि अपने युग से काफी ऊपर उठ चुके थे। तत्कालीन जीवन की विभीषिकाओं तथा दुःख-दैन्य की कुरूपताओं को वे अपनी नग्न आँखों से देख चुके थे। इसका स्पष्ट संकेत 'गुंजन' की निम्नलिखित पंक्तियों में मिल जाता है—

जग के दुख-दैन्य...शयन पर
यह रुग्णा-जीवन वाला।

× × ×

'चाँदनी' के इस रूप में समाज की वर्तमान विषम अवस्था का चित्रण किया गया है—

---

[1] आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० १८३-१६३

एकाकीपन का अंधकार
दुस्सह है इसका मूक-भार,
इसके विषाद का रे न पार

—गुंजनः 'चांदनी'

छायावादी कवियों ने भारत के जर्जर जीवन को एकांगी दृष्टि से कभी नहीं देखा। उनके सामने विश्व जीवन की समस्या थी। उन्हें अपना देश तो प्रिय था ही इसीलिये लगभग सभी छायावादी कवियों ने भारत-माता की मूक की वेदना की अभिव्यंजना की है, लेकिन उनका सारा जीवन विश्व की 'दुख-दैत्य की शैया' पर लेटा रहा। इसलिये उनके काव्य का विषय मानवता थी। उन्होंने सारे विश्व को परतंत्र भारत के चश्मे से देखने का प्रयत्न किया था। 'गुंजन' में पंत मानवता के कवि हैं। वे 'जग-जीवन' के दुःख से दुःखी हैं। वे कहीं भी साम्प्रदायिक भावों को प्रश्न नहीं देते। वर्तमान मानवता की आज वही अवस्था है जो पंत की चाँदनी की है—

पीली पड़, निर्बल, कोमल,
कृश देह-लता कुम्हलाई;
रे म्लान अंग, रंग, यौवन।
चिर-मूक सजल नत-चितवन!
जग के दुख से जर्जर-उर,
बस मृत्यु-शेष है जीवन!!

गुंजन, पृ० २४

जब कवि कहता है कि 'जग पीड़ित है अति दुख से' तो इससे वर्तमान विश्व-जीवन की दुरवस्था प्रकट होती है। छायावादी कवि प्रत्येक युग का अमर कवि होता है। वह उन्हीं बातों को अपने काव्य का विषय बनाता है जो सार्वभौम सत्य है। जिस कवि ने समूचे विश्व को अपने

हृदय के छोटे-से कोने में स्थान दिया है, जो मानवता के दुःख से आकुल व्याकुल है, उस कवि को हम पलायनवादी कैसे कह सकते हैं ? जो जग-जीवन को 'सुन्दर से सुन्दरतर' और 'सुन्दरतर से सुन्दरतम' बनाना चाहता है वह कवि जीवन के प्रति उदासीन कैसे हो सकता है ? जो विश्व-कल्याण के लिये अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को भुलाकर आत्म उत्सर्ग कर देने में भी हिचकता नहीं, वह जीवन के कर्त्तव्यों के प्रति अकर्मण्य कैसे हो सकता है ? पंत इसी प्रकार के कवि हैं। ये छायावाद के एक उत्कृष्ट प्रतिनिधि-कवि हैं। डा० भटनागर के शब्दों में "पंत सच्चे अर्थों में रोमाण्टिक कवि हैं।...छायावाद काव्य का प्रतिनिधि कवि उन्हीं को हो कहा जा सकता है।"[१]

'गुंजन' पंत की उस चेतना का परिणाम है जब कवि अपने निराश-जीवन के कुहासे से निकलकर बाहर आता है। कुछ लोग 'पल्लव' को छायावादी रचना कहते हैं लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। 'पल्लव में' छायावाद की काव्य-शैली तो मिलती है, उसकी आत्मा नहीं मिलती। वास्तव में, 'गुंजन' पंत की कवि-साधना का ज्वलंत उदाहरण है। साथ ही यदि मैं 'गुंजन' को 'छायावाद की गीता' कहूँ तो संभवतः कोई अत्युक्ति न होगी। छायावाद की सामान्य प्रवृत्तियाँ इस काव्य-पुस्तक में सहज ही उपलब्ध होती हैं। इस पुस्तक में जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण आस्तिक है जो छायावाद की एक विशेष प्रवृत्ति हैं। श्री दिनकर के शब्दों में 'गुंजन' पंतजी के निसर्ग-प्रिय आनन्द गीतों का संग्रह है, परंतु यह आनन्द निरे भावुक कवि की कल्पना का आनन्द नहीं है। उसमें आशावादी चिंतक की प्रसन्न मुद्रा एवं जीवन के प्रति अधिक जागरूक भावों का तेज है। 'गुंजन' की कविताओं में उस कवि के मनोभाव हैं जो जीवन के समीप आकर, उसी के आस-पास अपने आनंद के उपकरणों की खोज करता है। परियों का देश उसे अब भी प्रिय है,

[१] हिन्दी साहित्यः पृ०, ३०१।

किन्तु अब उस देश का संबंध धरती से भी हो गया है मानो मनुष्य चन्द्रमंडल में आने जाने लगा हो। 'गुंजन' की कविताओं में प्रकृति के रूपों का जो चित्रण हुआ है, उसमें अज्ञात रूप से जीवन के प्रति कवि की जिज्ञासा परिव्याप्त मिलती है।"[१]

मैं कह चुका हूँ कि शुक्ल जी, डॉ० केसरी नारायण शुक्ल, प्रसाद जी जैसे विद्वानों ने छायावाद और रहस्यवाद को 'एक ही चीज़' माना है। इसके विपरीत, श्री दिनकर का कहना है कि, सबसे बड़ी गलती छायावाद को रहस्यवाद सिद्ध करने में हुई। रहस्यवाद की रचनाएँ वे ही होती हैं जो ज्ञान और भक्ति के समन्वय से जन्म लेती हैं और जिनमें अध्यात्म की ओर बढ़ते हुये भावुक संत का धुँधला उन्माद होता है।··· छायावादी कविताओं में कहीं भी प्राचीन संत कवियों की प्रार्थना की शालीनता, आध्यात्मिक विरह की बेचैनी तथा आनन्द के लोक में आत्मा के महाजागरण का उल्लास नहीं मिलेगा। जो कुछ मिलता है, वह है गहरी अस्पष्टता, गहरा धुँधलापन और प्रत्येक वस्तु को एक नयी दृष्टि से "देखने का गहरा मोह।"[२] हिन्दी के आलोचक यदि छायावाद और रहस्यवाद को 'एक ही चीज' सिद्ध करने की चेष्टा न करते तो छायावादी कवियों पर पलायनवादिता का अभियोग नहीं लगाया जाता। लेकिन भ्रमवश ये इतने दिनों तक भ्रम-जाल में पड़े उपेक्षित रहे। पर आज हमने उनके महत्व को समझा है। इसीलिये आज हम उनके उद्धार के लिये बेचैन हो उठे हैं। पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला जैसे महाप्राण कवियों का जन्म सूर-तुलसी के बाद ही समझना चाहिये। हिन्दी के आलोचकों से एक भूल और हुई है। उन्होंने छायावादी कवियों की काव्य-रचनाओं को ही पढ़कर उनके कवि-व्यक्तित्व पर पलायनवाद का लेबुल लगाया है। उनके गद्य-साहित्य का अध्ययन पद्य-साहित्य के साथ नहीं किया गया। यही कारण है कि पाठकों के

---

[१] मिट्टी की ओर: पृ० ३३२, [२] वही पृ० २३

सामने इन कवियों का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उपस्थित नहीं किया गया। महादेवी के संस्मरण के चित्रों, पंत की कहानियों, प्रसाद-निराला की कहानियों तथा उपन्यासों में उनकी छायावादिता का दर्शन करने का प्रयत्न किसी आलोचक ने नहीं किया। कवि की मनोदशा उसकी समस्त गद्य-पद्य की रचनाओं में छिपी होती है। ऐसा कभी नहीं होता कि कविता में उसका रूप कुछ है और गद्य में दूसरा ही। 'गुंजन' में पंत का हृदय स्फटिक की तरह निर्मल है, फिर रहस्यवाद के लिये इसमें कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

डॉ० नगेन्द्र ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सुमित्रानन्दन पंत' में 'छायावाद' की एक नयी परिभाषा देते हुये लिखा है कि 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है। इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप, रंग, रूढ़ियाँ आदि सम्मिलित हैं और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह। नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छंद कल्पना और टेकनीक का विद्रोह।"[1] सारांश यह कि छायावाद ने बिलकुल नयी मनोदृष्टि अपनायी जिसमें परम्परा और रूढ़ि को कोई स्थान नहीं दिया गया। छायावादी कवियों ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भावों को अपनाया और इस तरह वे आत्मनिष्ठ होते चले गये। वे क्रमशः व्यक्तिवादी होते गये, जो प्रगतिवादी आलोचकों को बहुत अधिक अखरा। उन्होंने उनकी इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को पूँजीवाद के अंदर सम्मिलित कर दिया। यह सच है कि छायावादी कवि व्यक्तिवादी अधिक होता है। वह हृदय की आँखों से ही संसार को देखने का प्रयत्न करता है। लेकिन ऐसा क्यों हुआ?— इसकी ओर हमारे आलोचकों का ध्यान नहीं गया है। हर वस्तु को

---

[1] सुमित्रानन्दन पंत, पृ० २,

साम्यवाद के सिद्धान्तों का चश्मा लगाकर देखने से बात बिगड़ जाती है। जिस युग में छायावाद पूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा था वह काल गांधी जी के प्रभाव का समय था। यदि उस युग में गांधी जी न होते तो हमारे कवि द्विवेदी-काल के विचार-भँवरों में ही पड़े रहते। गांधीवाद ने हमारे छायावादी कवियों की अन्तर्चेतना को जगाया। उन्होंने न केवल अपनी आँखें खोलकर अपने देश की दैन्य-दशा की ओर देखा वरन् उन्होंने अपने हृदय के नेत्रों को खोलकर विश्व की समस्याओं को समझने का प्रयत्न भी किया। उस युग में स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, गाँधीजी, रवि बाबू जैसे महामानव न हुये होते तो इस देश का साहित्य भारतेन्दु-युग की भाव-धारा में तैरता होता। इन देव-पुरुषों ने जिस बात का महान् पाठ तत्कालीन भारतीय कवियों को पढ़ाया, वह था आस्तिकता और विश्वास का। हिन्दी के लगभग समस्त छायावादी कवि आस्तिक हैं। श्री भगवतीचरण की तरह नास्तिक कवि उस समय दुर्लभ था। 'गुंजन' में पंत आस्तिक हैं—'ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे'—उन्हें आत्मा की शक्ति पर पूरा विश्वास है—'आत्मा है सरिता के भी।' मैं कह आया हूँ कि छायावाद भारतीय काव्य-परंपरा से पृथक् नहीं है। इस देश का साहित्य सदैव आत्मवादी रहा है। वह व्यक्ति का स्वातंत्र्य बनाये रखने के लिये आत्म-विस्तार करने का पाठ पढ़ाता है। 'गुंजन' का कवि भी आत्मिक विस्तार करने में लगा है। वह अपनी समस्त मनोभावनाओं को भूल कर विश्व-सेवा के लिये अपना उत्सर्ग कर देना चाहता है—'तप रे, विधुर-विधुर मन, विश्व-वेदना में तप प्रतिपल।' वह जड़ और चेतन की चेतनता में पूर्ण आस्था रखता है। छायावाद के पास एक अपना निजी दर्शन है, जिसकी विवेचना हम अन्यत्र कर चुके हैं।

छायावाद नव-जागरण का साहित्य है। इसका आधार बना—प्रकृति और प्रेम। छायावादी साहित्य में प्रकृति के विभिन्न स्वतंत्र रूपों

और प्रेम की पावनता का प्राचुर्य रहा। इन दोनों क्षेत्रों में कवियों ने अपने व्यक्तित्व को दृढ़ने का भरसक प्रयत्न किया। प्रकृति में उन्होंने अपनी ही शोभा का विस्तार देखा, अपनी ही इच्छा, आशा-निराशा की झाँकी ली। प्रकृति कवि के वैयक्तिक जीवन का प्रतीक बन गयी। इतना होने पर भी एक बात की कमी बनी ही रही। यद्यपि छायावादी कवियों ने प्रकृति को अपने काव्य में काफी ऊँचा स्थान दिया, तथापि वह गौण ही बनी रही। बात यह है कि इन कवियों ने प्रकृति को अपने काव्य का साधन बनाया था, साध्य नहीं, लक्षण बनाया था, लक्ष्य नहीं। कुछ इसके अपवाद अवश्य हैं। उनकी प्रकृति-पूजा अन्य छायावादी कवियों से भिन्न है। यद्यपि उनके हृदय में प्रकृति के वाह्य सौन्दर्य के प्रति प्रगाढ़ प्रेम रहा तथापि यह सदा बना नहीं रहा। ज्यों-ज्यों उनकी दृष्टि वस्तुनिष्ठ होती गयी त्यों-त्यों वे प्रकृति के प्रति विमुख होते गये। 'गुंजन' में प्रकृति के रूप अवश्य व्यक्त हुये हैं लेकिन यहाँ की प्रकृति कवि की अनुभूति और कल्पना की अनुगामिनी है। प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों का उपयोग जितना पंत ने किया उतना हिन्दी के दूसरे कवियों ने नहीं किया। यह सब कुछ होते हुये भी 'गुंजन' में प्रकृति जिस रूप में आयी है वह छायावाद काव्य का चरम रूप है।

छायावाद के अधिकांश कवि निराश प्रेमी होते हैं। वियोग की ज्वाला से उनका हृदय जलता होता है। वे अपनी प्रेयसी को पाने का सतत् प्रयत्न करते हैं लेकिन उसको वे नहीं पाते। उनकी प्रेम-भावना क्रमशः पावन होती गयी है। अन्त में यह पावन प्रेम अध्यात्म के उस उच्च शिखर पर पहुँच जाता है जहाँ से फिर वापस लौटना नहीं होता। कवि आँख मूँद कर उस विराट् महिम सौन्दर्य में सदा के लिये लीन हो जाता है। तब वह प्रकृति के कण-कण में उस उदात्त सौन्दर्य का दर्शन पाकर मन-ही-मन प्रसन्न होता है। तब उसके हृदय की सारी निराशा जाती रहती है। 'गुंजन' का प्रेम नैसर्गिक है। वह ऐन्द्रिकता से दूर

हटकर अनुभूति की एक उच्च भाव-भूमि पर खड़ा हुआ है। पंत अपनी प्रेयसी के अनुपम सौन्दर्य को विश्व के कण-कण में व्याप्त पाते हैं। सारी सृष्टि सौन्दर्य का प्रतीक बन गयी है। छायावाद में नारी और प्रेम को मनोदशा की पावन भाव-भूमि पर रखा गया है। यह प्रेम रीतिकालीन कवियों का वासनात्मक प्रेम नहीं है। यहाँ का प्रेम विरह का नीड़ है; यह 'निशिदिन बरसत नयन हमारे' वाला प्रेम है। प्रेमी का हृदय रोता है लेकिन होठों पर मुसकान होती है। उसका कलेजा जलता है पर दूसरे प्यासों को जल देने के लिये उसके हृदय में भाव-सरिता हिलोरें मारती है। वह अपने लिये कंगाल है, दूसरों के लिये दानी। पंत एक ऐसे ही कवि हैं।

छायावाद काव्य की निजी अभिव्यंजना पद्धति है, जो नितांत नवीन है। इसकी काव्य-शैली तथा भाषा पर अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों का प्रभाव है। 'अनमिका' में 'निराला' ने इस नयी शैली की ओर इशारा करते हुये लिखा है—

'मैंने 'मैं' शैली अपनायी।' इस 'मैं' शैली ने 'मैं' की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की माँग की। जिस तरह छायावाद के भाव-पक्ष में स्वतंत्र विचारों तथा भावों की उद्भावना हुई उसी तरह उसके कला-पक्ष में भी एक जबर्दस्त क्रांति हुई। द्विवेदी-काल की काव्य-शैली की प्रतिक्रिया छायावाद काव्य में हुई। पंत का 'गुंजन' छायावाद की काव्य-शैली का अभिनव रूप उपस्थित करता है जिसकी व्याख्या हम अलग से करेंगे। यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि छायावादी काव्य में व्यक्तिवादी भाव-धारा की प्रमुखता के कारण लगभग सब कवियों ने प्रगीत ही लिखे, खंड काव्य या महाकाव्य लिखने का प्रयास कुछ ही कवियों ने किया।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि "छायावाद के भीतर रवीन्द्र

का भी अनुकरण था और अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों का प्रभाव भी; वह जीवन की सबसे बड़ी क्रांति का भी प्रतीक था और उसकी स्थूलता से दूर भागने का प्रयास भी; आकाश में आच्छन्न होने वाले बादल जिस क्रांति से उमड़े थे, छायावाद भी ठीक उसी क्रांति का पुत्र था, जिस क्रांतिकारी भावना के कारण वाह्य जीवन में राजनीतिक दुरवस्थाओं की अनुभूतियाँ तीव्र होती जा रही थीं, वही भावना साहित्य में छायावाद का रूप धारण कर खड़ी हुई थी और मनुष्य की मनोदशा, विचार एवं सोचने की प्रणाली में विप्लव की सृष्टि कर रही थी। वह जीवन की निराशा का भी प्रतीक था और उससे मानसिक मुक्ति पाने का साधन भी। वह 'सान्त' का अनन्त से मिलने का प्रयास भी था और 'सिन्धु' से मिल जाने के लिये 'विन्दु' की बेचैनी भी। उसमें धर्म, समाज और संस्कृति सभी के नवजागरण का एक मिश्रित आलोक था जो साहित्यिक अनुभूति के भीतर से प्रकट होने के कारण सभी से भिन्न और सभी के समान मालूम होता था। दुःख है कि इस विशाल सांस्कृतिक जागरण को उचित समय पर उचित आलोक नहीं मिल सका जिसके कारण उसकी वह प्रतिष्ठा नहीं हो सकी जिसका वह अधिकारी था।"[1] पन्त का 'गुंजन' इन्हीं भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में पंत के बारे में लिखा है कि, यदि 'छायावाद' के नाम से एक 'वाद' न चल गया होता. तो पंतजी स्वच्छंदता के शुद्ध स्वाभाविक मार्ग पर ही चलते।' इसमें कोई संदेह नहीं कि पंत के मार्ग में 'वाद' ने कोई अवरोध उपस्थित नहीं किया। उनकी मनोवृतियाँ इतनी स्वच्छंद हैं कि वे किसी भी 'वाद' के विवाद में नहीं पड़े। आज भी वे स्वच्छंद पथ के पथिक हैं। उनका विकास 'स्वाभाविक मार्ग' पर हो रहा है। हाँ, यह अवश्य है कि वह मार्ग अब समतल भूमि को छोड़कर पहाड़ की चोटियों को चूमने लगा है।

---

[1] मिट्टी की ओर, पृ० ११

कुछ लोग कहते हैं कि छायावाद की मृत्यु हो चुकी, इसलिये इसकी शव-परीक्षा भी होने लगी है। 'आधुनिक कवि' भाग २ में पन्त ने स्वयं लिखा है कि छायावाद इसलिये अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिये उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रह कर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।'[१] यदि छायावाद आज नहीं है तो क्या 'गुंजन' भी महत्त्वहीन हो गया, क्या यह भी छायावाद के साथ जाता रहा। मैं बता आया हूँ कि छायावाद का जितना अधिक संबंध मन की अन्तर्चेतना से है उतना बुद्धि या मस्तिष्क से नहीं। जिस काव्य का लगाव हृदय के राग-तत्त्वों से जितना अधिक होगा वह काव्य उतना ही अधिक जीवित रहेगा। 'गुंजन' इसलिये अमर रहेगा कि इसमें कवि ने जीवन के चिरन्तन प्रश्नों के समाधान पाने की खोज की है। सच तो यह है कि छायावाद आज भी नहीं मरा है। उसका शरीर भले ही बदल गया हो, लेकिन उसकी आत्मा आज भी ज्यों-की-त्यों बनी है।

---

[१] 'आधुनिक कवि—२, ५ ११

'गुंजन' में पन्त का प्रकृति-प्रेम

सृष्टि के आदि-काल से लेकर अब तक मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध अटूट रहा है। 'मनुष्य किसी भी अवस्था में प्रकृति से दूर नहीं रह सकता। मनुष्य मात्र की दो ही अवस्थाएँ होती हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। दोनों ही दिशाओं में प्रकृति की प्रधानता है। संसार का मनुष्य अनन्त आकाश, मेघ, नक्षत्र, वर्षा, ग्रीष्म, शीत, पशु, पक्षी आदि से भागकर कहाँ जा सकता है? संसार-त्यागी मनुष्य साधु, संन्यासी ऋषि, तपस्वी आदि भी इनसे नहीं बच सकते। इतना ही नहीं, विरत मनुष्य और भी अधिक प्रकृति की गोद में चला जाता है। वह वन, पर्वत आदि के समान कोई निर्जन स्थान चाहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध सहज और अटूट है। अतः मनुष्य पर प्रकृति का प्रभाव पड़ना एक सनातन सत्य है। प्रकृति का यह प्रभाव हमारे ऊपर मुख्यतः उसके सौन्दर्य द्वारा पड़ता है। लहलहाते हुये मरकत के वर्ण खेतों और वन-स्थलियों, चिकनी अमल शिलाओं पर गिरते हुये रजत जल-प्रपात, झुककर तीर के नीर को चूमती हुई डालों पर ध्वनि विविध विहंगावली, सशाद्वला भूमि में नक्काकार पड़ते हुये नालों, मुकुलित अमराइयों पर कोकिलों की तानें, खिले हुये पुष्पों की दीपावली को देखकर मानव-मन अपनी अलौकिक सत्ता अवश्य भूल जाता है।"[1] प्रकृति के उसी मादक रूप पर हिन्दी के एकमात्र प्रकृति-कवि पंत अपना तन-मन हार बैठे हैं। प्रकृति पन्त की प्रकृति (स्वभाव) की चिर सहचरी है जिसके बिना ये एक पल भी जी नहीं सकते। कवि को प्रकृति से ही कविता लिखने की प्रेरणा मिली है। 'आधुनिक कवि' भाग २ में पन्त लिखते हैं कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण

---

[1] हिन्दी काव्य में प्रकृति—श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तव, ५-६-७

से मिली है, जिनका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर, एक अयन्क्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था तो वह दृश्यपट, चुपचाप मेरी आखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में दूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी हुई, ये हरित नील धूमिल, कूर्माचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमाचल को धारण की हुई हैं और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाई हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर कुछ काल के लिये, भुला सकती हैं। और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की ही तरह निश्चय रूप से अवस्थित है।'

पंत की उपरिलिखित पंक्तियों से एक बात साफ हो जाती है कि प्रकृति-प्रेम ने कवि के हृदय में एक 'अज्ञात आकर्षण' को जन्म दिया है और इस 'अज्ञात आकर्षण' ने सौन्दर्य को। कवि का हृदय उस अलौकिक सौंदर्य के भीतर अपने को खो देने पर मजबूर करता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति ने ही 'विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य-भावना दी है, जिसने उसे चिन्तक बना दिया है। प्रकृति-दर्शन के जिस रूप को पंत ने अपनाया है वह 'गुंजन' में आकर मुखर हो उठा है। यद्यपि यह पुस्तक प्रकृति-काव्य नहीं है तथापि कवि के प्रकृति-दर्शन का सामूहिक रूप यहाँ विकसित हो पाया है। 'वीणा' के कवि का किशोर-हृदय विरासत में मिले रीति-काल के 'प्रथम-स्पर्श में आने पर उसमें रम नहीं पाया। 'कनक छड़ी-सी कामिनी' में कैशोर्य नहीं उलझा। किशोर को सौंदर्य चाहिये, पर उसमें कौतुक-कौतूहल भी हो, मात्र मादकता

नहीं। इसीलिये पंत का भावुक हृदय प्राकृतिक सौंदर्य में खूब रमता है। अपने प्रारम्भिक जीवन में वह समझ नहीं पाता है कि सघन विटपों की शीतल छाया और प्रकृति की ममतामयी गोद छोड़कर लोग कामिनियों के केशपाश में इच्छापूर्वक कैसे अबद्ध हो जाते हैं—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

वह तो जीवन के प्रभात से ही देखता आ रहा है कि आकाश में बादलों की टुकड़ियों ने घिर-घिर कर उसे आनंद से उल्लसित किया। चंदा मामा ने रात में चाँदनी बिखेर कर उसके साथ लुका-छिपी की, उसने अनुभव किया कि चंचल समीर आकर उसे गुदगुदा देता है और उसे अब भी याद आ रहा है कि ये सारे दृश्य नींद में भी सपने बनकर उसे रिझाया करते हैं। 'वीणा'-काल में वह देखता था कि सौंदर्य अपनी सम्पूर्ण सुषमा के साथ उषा के सहाए कपोलों पर प्रतिफलित होता है, असंख्य तारे रजनी रानी का हार बनकर झलमल झलमल करते हैं, मलयानिल उसकी मनुहार में अविश्रान्त-भाव से दौड़-धूप किया करती है। और तब कवि सोचता है कि प्रकृति के इतने अशेष सौंदर्य को छोड़कर, वह अपने मन को नारी की अंगयष्टि में ही क्यों बाँध दे ? इस प्रकार पंत का प्रारंभिक विकास ऐन्द्रिकता से हटकर चलना चाहता है; वह ऐन्द्रिकता को परा-भूत कर विशुद्ध प्राकृतिक सौंदर्य का दर्शन करना चाहता है।

किन्तु उसकी सवेगप्रगति में बाधा दे जाती है कवि की विस्मय भावना—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल-चंचल ?

—गुंजन, पृ० १२,

चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणों ! गाओ पवन ! वीणा बजा।

यहां दृष्टिकोण 'गुंजन' में आकर 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता का आधार बन गया है। 'गुंजन' में आकर पंत ने अपनी ऐन्द्रिक अनुभूति को सम्पूर्ण विश्व में आत्मसात करके देखा है। समग्र प्राकृतिक चेतना उसी ऐन्द्रिकानुभूति से मानो प्राणवती हो उठी है—

खोल सौरभ का मृदुकच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
चूम लघु-पद चंचलता, प्राण !
फूटते होंगे नव जल स्रोत,
मुकुट बनती होगी मुसकान,
प्रिय, प्राणों की प्राण।

कवि की 'प्राण' जब मुसका देती है तो प्रभात भी सस्मित हो उठता है; सलज्ज उषा भी विहँस पड़ती है। निखिल-विश्व ऐन्द्रिकता में परिणत हो जाता है। यह भावना बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ जाती है कि स्वयं प्रकृति पुष्पलावी कन्या होकर कवि के सामने भर-भर डाली फूलों का हासबनकर उल्लास, कोकिल के कुछ कोमल बोल, शरद्-रजत मुसकान आदि बेचने चली आती और पूछती है—

लाई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल ?
तरल तुहिन-वन का उल्लास,
लोगी मोल, लोगी मोल ?

—गुंजन, पृ० ७५

इस तरह 'गुंजन' में कुतूहल और विस्मय के आधार पर कवि ने प्रकृति

का खूब शृंगार किया है। यदि कहीं चित्रात्मक प्रणाली का भी आश्रय लिया है तो वहाँ भी 'साड़ी की सिकुड़न' और त्रियंग दृष्टि ही का उन्हें दर्शन होता है, 'नौका-विहार' में।

गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर।
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभासे भर
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।

—गुंजन, पृ० १०१

'गुंजन' में यों तो यत्र-तत्र कुछ रहस्य के कण के छींटे मिल जाते हैं किन्तु ऐन्द्रिकतानुभूति की लवण-पयोधि में उनकी सत्ता का बोध हो ही नहीं पाता। सच तो यह है कि प्रकृति के नाना रूपों के सौंदर्य की भावना पंत ने 'गंजन' में स्त्री-सौंदर्य का आरोप करके ही की है। कवि ने स्वयं कहा है कि प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखने वाली, नारी के रूप में देखा है—

उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही माँ,
वह अपनी वय- वाली में—

कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी रूप में अंकित किया है।"[1] तब कवि प्राकृतिक दृश्यों को कुतूहल भरी आँखों से देखने में अधिक आनन्दानुभूति का अनुभव करता है। वह भादो की अँधेरी रात में शत-शत जुगनुओं को पेड़ों की झुरमुट में झुक-झुक कर, भुक-भुक करते देखता और देखता है कि प्रभात के आते ही आते घोसलों से निकल कर चिड़ियाँ चहक उठती हैं।

[1] आधुनिक कवि, भाग २, पृ० ३

कवि विस्मय की भावना से अभिभूत हो जाता है। वह सोचता है कि रात में नीड़ में सोये कुहुकिनी को कैसे पता चल गया कि उषा अपनी रंगीन डोरियाँ (किरणें) फेंकती चली आ रही है। संध्या का समय हो रहा है और कवि देखता है कि सूर्य की ये किरणें सरिता के वक्ष से उठ कर वृक्ष की फुनगियों पर जा पहुँचती हैं और फिर वह देखता है कि—

तरु-शिखरों से वह स्वर्ग विहग,
उठ गया खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा नीड़ में रे किस मग,

—गुञ्जन पृ० ८५

पंत की दृष्टि में प्रकृति अद्भुत कौतुक कर रही है। वह—

मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल
नवनील नील कोमल कोमल
छाया तरुवन में तमश्यामल।

—गुंजन, पृ० ८५

फिर दूसरे ही क्षण वह देखता है—

जगमग-जगमग नभ का आँगन,
लद गया कुन्द कलियों से घन—

—गुञ्जन, पृ० ८५

इस प्रकार के प्रकृति के सौन्दर्यमय रूप का निरीक्षण करने में पन्त को नैसर्गिक सुख मिलता है।

पन्त के प्रारंभिक कवि जीवन में विशुद्ध सौन्दर्य और ऐन्द्रिक सौन्दर्य में द्वन्द्व था। वह 'गुञ्जन' से यौवन की कसमसाहट का अनुभव होने पर

उनकी ऐन्द्रिकता सम्पूर्ण प्रकृति पर, नाना रूप-रंगों में, छा गयी है। कवि प्रकृति की वर्ण-विपुलता के बीच अपने प्रेम के व्यापक रूप का दर्शन करने लगता है।

पंत के प्रकृति प्रेम का मूलाधार है विस्मय-भावना और यह भावना 'गुञ्जन' में भी उद्बुद्ध हुई है किन्तु कवि इससे ऊपर उठने का प्रयत्न भी करता है। उसका विस्मय आह्लाद और उल्लास में परिणत हो गया है। वह सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य का अखन्ड राज्य स्थापित पाता है। उसको तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुखर, सब कुछ सुन्दर और सुखकर दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार 'गुञ्जन' में पंत प्रकृति-प्रेमी उतना नहीं जितना कि वह सौन्दर्य-प्रेमी हैं। कवि का यह सौन्दर्य-चिन्तन मन की एक अन्तर्दशा है जिसमें वे बराबर स्वप्निल से, आत्म-विस्मृत से, प्रतीत होते हैं। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है कि 'गुञ्जन' में कवि ने प्रकृति के नाना-रूपों में उस विराट् और महिम सौन्दर्य का दर्शन किया है जिसका रूप कभी विकृत नहीं होता, जो शाश्वत और चिरन्तन सत्य है। अतः यह उचित ही कहा गया है कि 'प्रकृति-प्रेम' ने जहाँ एक ओर कवि के हृदय में एक 'अज्ञात आकर्षण' को जन्म दिया है वहाँ दूसरी ओर 'अव्यक्त सौन्दर्य' 'गुञ्जन' में यह 'अव्यक्त सौन्दर्य' 'भावी पत्नी' और 'अप्सरा' में प्रकट हुआ है। विराट् सौन्दर्य का दर्शन कर लेने पर कवि के मन का विस्मय-भाव दूर हो गया है। 'गुञ्जन' में कवि प्रकृति के विशुद्ध सौन्दर्य का दर्शन कर सका है। यही इस काव्य की सरलता है।

कुछ लोगों की यह शिकायत है कि 'पंत महादेवी या प्रसाद की तरह प्रकृति की तह में नहीं पैठते क्योंकि उन्हें डूब जाने का भय है और इसीलिये उन्हें 'सतह की चल-जल-माली' ही ज्यादा भाती है। पन्त पर इस तरह का आक्षेप लगाने के पहले यह अच्छी तरह जान

लेना चाहिये कि पंत अंग्रेजी के रोमान्टिक कवि वर्ड्सवर्थ तथा कोलरिज और छायावादी कवि प्रसाद और महादेवी की तरह रहस्यवादी नहीं हैं। उनकी कविता में जो रहस्यवाद बताया जाता है वह व्यर्थ का है। कवि के शब्दों में केवल आश्चर्य और कौतूहल की व्यंजना ही प्रकृति के माध्यम से हुई है। इसमें जीव, ब्रह्म या आत्मा की एकता का स्वप्न देखना या शंकर का अद्वैतवाद देखना अपनी आँखों को धोखा देना है। इसलिये कवि प्रकृति के अन्तर-प्रदेश में पहुँचने की आवश्यकता नहीं समझता। यद्यपि कभी-कभी उसके मन में इस तरह की स्वाभाविक उत्सुकता जगती है कि दूर तक फैले हुये खेतों और मैदानों के छोर पर वृक्षावलि की जो धुँधली हरिताभ-रेखा-सी क्षितिज से मिली दिखाई पड़ती है उसके पार किसी-न-किसी प्रकार का एक मधुर-लोक अवश्य होगा—

दूर उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील झंकार,
छिपा छायावन में सुकुमार,
स्वर्ग की परियों का संसार।

—गुञ्जन,

इतना होने पर पंत का कहना है कि जीवन की तह में जो परमार्थ-तत्व छिपा हुआ कहा जाता है, उसे पकड़ने और उसमें लीन होने के लिये बहुत से लोग अन्तर्मुख होकर गहरी डुबकियाँ लगाते हैं, पर मुझे तो उसके व्यक्त आभास ही रुचिकर हैं, अपनी पृथक् सता विलीन करने में भय-सा लगता है—

पर मुझे डूबने का भय है,
भाती तट की चल-जल-माली।

—गुञ्जन,

शुक्ल जी के शब्दों में, 'पन्त जी की स्वाभाविक रहस्य-भावना को प्रसाद और महादेवी की साम्प्रदायिक रहस्य-भावना से भिन्न समझना चाहिये।'[1] यह सब कुछ होते हुये भी मैं तो यह कहना चाहूँगा कि पंत में प्रकृति के विविध रूपों के प्रति गहरी अनुभूति है। यदि इसका उनमें अभाव होता तो फिर प्रकृति के कण-कण में वे विराट् सौन्दर्य का दर्शन कैसे कर सकते थे। प्रकृति के माध्यम से उन्होंने जीवन के बहुत-से उलझे प्रश्नों का समाधान निकाला है। प्रकृति, कवि के लिये, आराध्य देवी और अध्यापिका दोनों है। उदाहरणार्थ—

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा!

—गुञ्जन, पृ० २१

पन्त के लिये प्रकृति साधन और साधना दोनों हैं। उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है—उनका प्रकृति-प्रेम। हिन्दी में ऐसा एक भी कवि नहीं है जिसने प्रकृति को अपने जीवन का प्रधान अंग और अपनी काव्य-कला का माध्यम बनाया हो। प्रकृति के विविध रूप-रंगों के प्रति कवि के हृदय में इतना तीव्र आग्रह है कि वह एक पल के लिये भी उसको छोड़ नहीं सकता। लोग कहते हैं कि आज के पन्त कल के पन्त नहीं रहे। यह सच है कि कवि के विचारों में क्रमशः परिवर्तन होते गये हैं लेकिन उनकी कविता में प्रकृति-प्रेम उनका अक्षय-धन बन कर सदैव सुरक्षित रहा है। यद्यपि उन्होंने प्रकृति के प्रति कभी-कभी उदासीन होकर भाव प्रकट किये हैं—

कहाँ मनुज के अवसर
देखे मधुर प्रकृति मुख

---

[1] शुक्ल जी का इतिहास, पृ० २६०

भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?

—युगवाणी,

श्री शांति प्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'यह उसी कवि का प्रश्न है जिसने स्वयं एक दिन हमारे काव्य-साहित्य में प्रकृति-सुषमा की चारु-चित्रशाला सजा दी थी। आज वह अपनी सृष्टि को निराधार पा रहा है।'[1] पन्त की उपरिलिखित पंक्तियाँ कवि के अव्यस्थित विचारों की परिचायक हैं। शुरु से ही उनकी एक टेक रही है—सौन्दर्योल्लास। यह 'उल्लास' कवि को प्रकृति के उद्यान से ही मिलता रहा है। उन्होंने स्वयं कहा है 'मेरा विचार है कि 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक मेरी सभी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम किसी रूप में वर्तमान है।' पंत का यह प्रकृति-प्रेम उनकी नव-प्रकाशित रचनाओं—स्वर्ण-धूलि, स्वर्ण किरण, युग-पथ में भी सुरक्षित है।

हाँ, तो मैं कहा चुका हूँ कि पंत की प्रकृति साध्य और साधन दोनों काम करती है। विराट् सौन्दर्य की झाँकी प्राप्त करना कवि के प्रकृति प्रेम की पराकाष्ठा है। इसी उच्च भाव-भूमि पर पहुँचने के लिये कवि ने प्रकृति-मन्दिर में गहरी साधना की है। इसके अतिरिक्त पन्त ने अपनी काव्य-कला को अभिव्यंजना-शैली का नवीन आवरण प्रदान करने के लिये प्रकृति को अपने काव्य का साधन बनाया है जिससे हिन्दी काव्य साहित्य में एक काव्य-शैली की नई धारा बही। कवि ने स्वयं लिखा है कि 'प्रकृति' निरीक्षण से मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है।' नारी के रूप-चित्रण में, अपनी मानसिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये कवि ने प्रकृति के उपादानों को चुनकर अपनी काव्य-कला को सजाने-सँवारने की चेष्टा

[1] युग और साहित्य, पृ० ३३०

की है। यह कला कालिदास और रवीन्द्र कवीन्द्र को अच्छी तरह मालूम थी। इस क्षेत्र में पंत भी एक अत्यन्त कुशल कवि हैं। हिन्दी के समस्त छायावादी कवियों ने प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को व्यक्त करने की चेष्टा की है। 'सुमित्रा नन्दन पन्त और गुञ्जन' के लेखक श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है कि 'गुञ्जन' में प्रकृति का प्रयोग प्रधानतः तीन प्रकार से किया गया है। पहले तो वह साधारण रूप है जिसमें कवि प्रकृति के उपकरणों की उपमा नारी के अंग-प्रत्यंगों से देता है—

अरुण अधरों की पल्लव प्रात
मोतियों-सा हिलता हिम-हास
इन्द्र धनुषी पट से ढक गात
बाल विद्युत का पावस लास।

—गुंजन, *'भावी पत्नी के प्रति'*

'दूसरे, कवि अपनी रूप-रानी को प्रकृति से भी श्रेष्ठ मान कर चलता है इसका 'गुंजन' में बाहुल्य है—

सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव केलि विनोद।
चूम लघु-पद-चंचलता, प्राण!
फूटते होंगे नव जल-स्रोत!

—गुञ्जन पृ० ४२,

× × ×

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु-सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्यास।
छा गया मधुबन में मधुमास।

—गुंजन, पृ० ५८,

'तीसरे, कवि ने कहीं-कहीं प्रकृति के द्वारा दृष्टान्त तथा उपदेश भी दे दिये हैं। जीवन को सरिता मान कर उन्होंने अपने जीवन संबन्धी सिद्धान्तों को समझाया है—

बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना।
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

—गुंजन, पृ० २२

'गुंजन' में प्रकृति के उपरिकथित सिर्फ तीन ही रूप नहीं हैं, कुछ और भी हैं। लेकिन 'गुंजन' जैसी काव्य-पुस्तक में प्रकृति के भिन्न रूपों को खोजना उचित नहीं होगा। 'गुंजन' महाकाव्य नहीं है, यह गीतों का एक संग्रहमात्र है जिसमें कवि के हृदय की भावनाएँ और अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। गीत मानव-मन की सहज प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है। इसलिये गीत-काव्य में प्रकृति के उन्हीं रूपों की अभिव्यक्ति होती है जिनकी ओर कवि की अभिरुचि अधिक होती है। साथ ही 'गुंजन' जैसी काव्य-पुस्तक में कवि के प्रकृति-दर्शन (Philosophy of Nature) की खोज करनी चाहिये। मैं ऊपर की पंक्तियों में यह लिख आया हूँ कि पंत के प्रकृति-प्रेम में एक दर्शन अवस्थित है जिसका क्रमिक विकास हुआ है—प्रकृति के ऐन्द्रिक रूप से उठ कर कवि अलौकिक सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुआ है। 'गुंजन' में प्रकृति-चित्रण का यही प्रधान उद्देश्य रहा है।

एक बात और विचारणीय है—'गुंजन' में, पर्याप्त मात्रा में, प्रकृति का वर्णन हुआ है; फिर भी उसमें प्रकृति की प्रधानता नहीं है। प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का आभास कम मिलता है। इसीलिये इसमें अन्य

छायावादी कवियों की तरह उसका आलंबन के रूप में चित्रण भी अधिक नहीं हुआ है। यहाँ प्रकृति प्रतीक बन कर आयी है—कभी कवि की मनोदशा और अनुभूतियों के और कभी आध्यात्मिक तथा रहस्य-पूर्ण तत्त्वों के रूप में। प्रकृति की शोभा और सुषमा आध्यात्मिक बन गई है और उसका वर्णन अप्राकृतिक और अस्वाभाविक हो गया है। उषा, प्रफुल्लता और संध्या उदासी का प्रतीक बन गई है। 'झंझा झकोर गर्जन' मानसिक द्वन्द्व का उपमान बना है और 'नीरदमाला' भावनाओं की व्यंजना। पंत को वर्षा की अँधेरी रात, पुष्प-दल पर चमकती हुई ओस की बूँदों और बसन्त की सुषमा में मौन-निमंत्रण' मिला है। इसका परिणाम यह हुआ कि आँखों में सदा सपनों की दुनिया बसाने वाले कवि पंत प्रकृत को जिस रूप में वह है, उस रूप में नहीं देख सके। वे उषा, संध्या, चाँदनी, तारा, वसन्त आदि की मनः-कल्पित शोभा से इतना अभिभूत हुए कि वे निजी अनुभूति के रूप से प्रकृति को देखने लग जाते हैं और तब उस अनुभूति को अपनी निर्बन्ध कल्पना से सजाने लग जाते हैं। वे अपनी अनुभूति का एक चित्र सजाते हैं, पर तृप्त न होकर पुनः दूसरा अंकित करते हैं और इसी प्रकार अव्याहत भाव से चित्र-पर चित्र दिये जाते हैं। यह शेलियन (Shelleyan) ढंग है, ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु शेली के निर्बन्ध प्रेम और स्वतंत्रता की शक्ति का समावेश पंत में नहीं है। मालूम होता है कि पंत किसी लज्जालु स्वाभिमानी व्यक्ति की तरह अकेले, बैठ कर, आँखें बन्द किये, प्रकृति की एक झलक को आँखों में समेट कर, उस पर रेशमी धागों की जालियाँ, पूरी वर्ण-विपुलता के साथ, बुनने लग जाते हैं। शायद इसीलिए उन्होंने प्रकृति के उस सशक्त रूप का दर्शन नहीं किया जिसकी अनुभूति बायरन (Byron) के अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ('Herolds' pilgrimage) के चौथे सर्ग में हुई थी—

Roll on, thou deep & dark blue ocean—roll !
Ten thousand fleets sweep over thee in vain;
Man works the earth with ruin-his control
of Stop with the shore.

प्रकृति का यह ओजस्वी स्वरूप हिमवान-प्रदेश के वासी कवि पंत को न जाने क्यों, प्रिय न हुआ ?

———

'गुञ्जन' की काव्य-कला

कवि. नवयुग की चुन भाव राशि,
नव छन्द, आभरण, रस, विधान,
तुम बन न सकोगे जनमन के
जाग्रत भावों के गीतयान ?

—पंत

हिन्दी में पंत एक विद्रोही कवि हैं। 'पल्लव' की कविताएँ कवि के विद्रोही भावों की परिचायक हैं। इसलिये इसने आधुनिक हिन्दी कविता में ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर लिया है क्योंकि इसके द्वारा ही हिन्दी काव्य की प्रचलित .परिपाटी के प्रति विद्रोह और नवीन कविता की काव्य-शैली का हुँकार हुआ। पंत ब्रजभाषा-कवियों का 'घन की घहर, मेकी की भहर, झिल्ली की झहर, बिजली की बाहर, मोर की महर' समस्त संगीत तुक की एक ही नहर में' बहा देने वाली कला से बहुत असन्तुष्ट थे। इसके अतिरिक्त ये द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता और उसकी स्पष्ट उपदेशात्मकता से भी काफी परीशान हो चुके थे। वे हिन्दी कविता में काव्य-शैली की एक नई धारा बहाना चाहते थे। उन्होंने रूढ़िगत काव्य के पुराने सिद्धान्तों को त्याग कर नये प्रयोगों को अपनाया। उन्होंने पुराने काव्याचार्यों की काव्य-परिभाषाओं पर व्यंग्य-बाण छोड़ते हुये 'पल्लव' की भूमिका में लिखा कि 'हमलोग 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' को अच्छी तरह समझ गये हैं।' अंग्रेजी कवि शेली की इस काव्य-परिभाषा 'Poetry is the record of the best and the happiest moments of the happiest and the best minds से प्रभावित होकर उन्होंने कविता की एक स्वतंत्र परिभाषा दी है जो पुरानी परिभाषाओं से बिल्कुल भिन्न है। वे लिखते हैं कि "कविता

परिपूर्ण क्षणों की वाणी है। हमारे जीवन का पूर्ण रूप, हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन-छंद हो बहने लगता है, उसमें एक प्रकार की संपूर्णता तथा संयम आ जाता है।"[१] विद्वान् आलोचक श्रीयुत् पं० रामदहिन मिश्र ने पंत की उपर्युक्त काव्य परिभाषा की प्रत्यालोचना अपनी पुस्तक 'काव्यालोक' में की है जो आधे से कम सत्य भी है। यहाँ उस व्यर्थ के विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। पंत के शब्दों में 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है, एकाकी जीवन बिताने वाला कवि ही जीवन के 'परिपूर्ण क्षणों' की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। पंत ऐसे भावुक कवि के लिये यह दुर्लभ नहीं है क्योंकि उनके कवि-जीवन के अरंभ में उन्हें 'प्रकृति के एकाकी निरीक्षण से ही कविता लिखने की प्रेरणा मिली थी। 'गुञ्जन' में कवि ने स्वयं लिखा है कि—

आज छाया बन-बन मधुमास,
मुग्ध मुकुलों में गन्धोच्छ्वास;
लुढ़कता तृण-तृण में उल्लास,
डोलता पुलकाकुल वातास,
फूटता नभ में स्वर्ण विहान,
आज मेरे प्राणों में गान!

—गुंजन, पृ० १०६.

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि "पंत की कविताएँ उस बनबाला शकुन्तला की तरह मनोहर हैं जिसका हृदय सुन्दर, स्निग्ध और स्नेहार्द्र है—जो प्रकृति के अंचल में ही खेली और खिली है, जिसकी स्निग्ध वेणी में बसन्त के समस्त सुरभित पुष्प गुँथे हुए हैं और जो विस्मय एवं कुतूहल की आँखों से बासन्ती के वैभव को देखती है तथा उसी में अपना मन मिला देती है।"[२]

[१] पल्लव की भूमिका
[२] हमारे साहित्य निर्माता, पृ० १७२

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि पंत की कविता उनके एकाकी जीवन के क्षणों का चिन्तन और मनन है। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण, जीवन और जगत् का गंभीर मनन-चिन्तन उनकी कविताओं के रोम-रोम में समा गये हैं। 'गुञ्जन' की कविताएँ कवि के इसी निरीक्षण, चिन्तन और मनन की परिणाम हैं। इस विवेचन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि पंत की कविता में वस्तु (Matter) की ही प्रधानता है। और कौशल (Technique, Form) गौण है। 'गुञ्जन' की काव्य-कला का अध्ययन करने के पूर्व इस बात की जानकारी कर लेना अनुचित न होगा कि काव्य में वस्तु और कला के अस्तित्व का क्या स्वरूप है।

यह बात सब लोगों को स्वीकार है कि काव्य का उद्देश्य सौन्दर्य की सृष्टि करना होता है और काव्योत्कर्ष के लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। साधारणतः कलाकृतियों के संबन्ध में यह कहा जाता है कि वे सुन्दर होती हैं। सामान्यतः एक चित्र अथवा मूर्ति को हम सुन्दर कहते है। प्रश्न यह होता है कि क्या उसी अर्थ में पंत के गीत या कविता को सुन्दर कहा जा सकता है? डॉ० देवराज ने इसका उत्तर देते हुए अपने एक लेख 'कलागत सौन्दर्य और महत्ता' (साहित्य-संदेश, जुलाई, १९४६ ई०) में लिखा है कि 'सुन्दर' विशेषण का प्रयोग दृश्य पदार्थों के लिये ही होना चाहिये। संगीत में दृश्य-तत्व का अभाव रहता है, अतः उसे सुन्दर कहना ठीक नहीं जँचता। काव्य-साहित्य में दीखने वाला तत्व छुपे हुये शब्द हैं, किन्तु शब्दों के छुपे रूप को सौंदर्य का अधिष्ठान किसी ने नहीं कहा है। फिर कविता में सुन्दर क्या हो सकता है?...यदि सौंदर्य काव्य-साहित्य का गुण है तो वह शब्दबद्ध अनुभूति का गुण ही हो सकता है न कि भाषा या माध्यम का।" प्रसिद्ध दार्शनिक एस एले-क्जेन्डर का भी यही मत है कि 'सौंदर्य कला के माध्यम का गुण है और उसका महत्व विषय' वस्तु (Matter) से निरूपित होता है। माध्यम को एक विशेष ढंग से नियोजित करके ध्वनियों अथवा शब्दों के एक विशिष्ट संगठन से कलाकार सौंदर्य की सृष्टि करता है। माध्यम का ठीक उपय.

न होने पर कला असुन्दर हो जाती है।' हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य में कला इसलिये अपूर्ण है क्योंकि उसका मुख्य संबन्ध जीवन की विषय-वस्तु से है, अभिव्यक्ति के सौंदर्य की ओर उसका ध्यान नहीं है। छायावाद के समर्थक प्रगतिवाद की आलोचना इसी दृष्टि से किया करते हैं। इसके विपरीत, यह भी कहा जाता है कि छायावादी काव्य सुन्दर भले ही हो, महान् नहीं है। उसमें जीवन और सभ्यता के प्रति गंभीर दृष्टि का अभाव है। इस तरह की खंडनात्मक आलोचना प्रगतिवादी काव्य के वातावरण में पलने वाले कवियों की ओर से प्रायः की जाती है। सत्य कहाँ छिपा है, इसी का निर्णय करना है। कवि वर्ड्सवर्थ ने कहा है कि 'Gods approve the depth and not tumult of soul' 'देवताओं को अंतरात्मा की गहराई प्रिय है, आकुल उत्तेजना नहीं।' वस्तुतः सच्ची कविता में 'अन्तरात्मा की गहराई' ही अधिक होती है—यह छायावाद काव्य का एक भारी गुण है। प्रगतिवादी काव्य में अनुभूति की तीव्रता (Tumult of the soul) तो है, अनुभूति की गहराई नहीं है। जिस कवि की कविता में अनुभूति की गहराई (Depth of the soul) होती है उसकी कविता अमर होती है। बिहारी की कविता में इसकी कमी है। तुलसीदास की कविता में इसका चरमोत्कर्ष है। 'अनुभूति की गहराई' में ही सौंदर्य की स्थिति होती है। इसीलिये कविता में विषय-वस्तु की महत्ता पर अधिक जोर दिया जाता रहा है क्योंकि, डॉ० देवराज के शब्दों में, 'कलात्मक अनुभूति तब ही सुन्दर कही जा सकती है जब उसकी विवृत्ति का विषय वस्तुगत सौन्दर्य हो। सुन्दर की अनुभूति ही सुन्दर अनुभूति है।'

पंत का 'गुञ्जन' छायावाद काव्य का मणियुक्त मोर-मुकुट है। यह छायावाद की समस्त विशेषताओं को लेकर कवि की कलम से उद्भूत हुआ है। 'गुञ्जन' के संबन्ध में यह नहीं कहा जाना चाहिये कि अन्य छायावादी रचनाओं की तरह, जैसा कि प्रगतिवादी आलोचक अक्सर कहते हैं, इसमें 'जीवन और सभ्यता के प्रति गम्भीर दृष्टि का अभाव

है।' मैं लिख आया हूँ कि 'गुञ्जन' का कवि कल्पना के कुहासे से निकल कर वस्तु जगत की ठोस भूमि पर उतर आया है। उसने जीवन और जगत् की समस्याओं को अपनी व्यापक दृष्टि से देखने, समझने और उनका समाधान निकालने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से ऊँची कविता के लिये जिन विस्तार, गहराई, नूतनता आदि पहलुओं की अपेक्षा की जाती है वे इसमें सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। 'गुञ्जन' के विषय-पक्ष की विवेचना हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि 'गुञ्जन' की कविताएँ अमर हैं। इसलिये इनकी अमरता में तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता। इस काव्य-पुस्तक में काव्य की कला और विषय दोनों के बीच, संयम, संतुलन और सामञ्जस्य उपस्थित किया गया है। एक उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया जा सकता है—

अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप;
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
मधुरता में सी भरी अजान,
लाज की छुई मुई-सी म्लान,
प्रिय प्राणों की प्राण।

—गुञ्जन, पृ० ५३.

यह एक सुन्दर कविता का उदाहरण है। इसमें पंत की काव्य-कला मुखर हो उठी है। इस काव्य के सौंदर्य का कारण ललित-पद योजना और अनुभूति की गहराई दोनों हैं। उपरिलिखित पंक्तियों में नारी की कोमलता और उसका सौंदर्य सजीव हो उठा है। कवि ने विषय के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। कहीं भी उक्ति-वैचित्र्य या अतिशय कल्पना को उद्यान नहीं है। नारी की लज्जा और उसकी कोमलता में

जो सौंदर्य की स्वाभाविक अभिव्यंजना हुई है वह कृत्रिम और अलौकिक भी नहीं है। इसी तरह तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों ने भी विश्व साहित्य में अमरता प्राप्त कर ली है—

बहुरि बदन-विधु अंचल ढाँकी।
पियतन चितै दृष्टि करि बाँकी॥

शेक्सपियर की ये पंक्तियाँ भी अमर हो गई हैं—

To-morrow, & to-morrow, & to-morrow.
Creeps in this petty pace from day to-doy,
To the last syllable of recorded time,
And-all our yesterday lighted fools,
he way to duski death, Out, out brief candles
Life's but a walking shadow, a poor player
That struts and frets its hour upon the stage,
And then is heard no more, it is a tale
Told by an ediot, full of sound and fury
Signifying nothing-

—Macbeth

'गुञ्जन' में जीवन, जगत और मानव के संबन्ध में इस तरह की बहुत-सी उत्कृष्ट कविताएँ लिखी गयी हैं जो विश्व-साहित्य की अमर निधियाँ हैं। अतः 'गुञ्जन' सार्वकालिक विश्व-काव्य है।

अस्तु, काव्य-कला एक संश्लेषणात्मक प्रक्रिया है। कवि अपने अर्थ पूर्ण शब्दों के माध्यम से अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को पाठकों के हृदय तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। सजग पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य को कला नहीं कहा है। उनके अनुसार कविता मानव-मन की रस-दशा की अभिव्यक्ति है और रस-दशा

हृदय की मुक्तावस्था का वह नाम है जब हृदय लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित होता है। कला लौकिक है और काव्य आध्यात्मिक। कला कौशल की सचेतन अभिव्यक्ति है और काव्य हृदय की स्वाभाविक (Spontacious) मुक्तावस्था की परिणाम।' लेकिन आये दिन कला का सम्बन्ध जीवन से बैठाया जाता है। प्रेमचन्द्र, रायकृष्णदास, टाल्सटाय, आई० पी० रीचार्डस प्रभृति विद्वानों ने बताया है कि कला का सम्बन्ध जीवन से है। आज यह सब सम्मति से मान लिया गया है कि काव्य एक कला है और उसका उद्देश्य कवि की अनुभूतियों को पाठकों के हृदय तक पहुँचा कर उन विशिष्ट अनुभूतियों द्वारा पाठकों के व्यक्तित्व का आज्ञात रूप से परिमार्जन करना है। पंत को भी यह सिद्धांत मान्य है। इसलिये उनकी कविता में प्रेषणीयता के लिये सबसे अधिक गुंजाइश है। 'गुंजन' की कविताएँ मनन की वस्तु हैं इसलिये इनमें प्रेषणीयता उतनी नहीं है, जितनी चिन्तन की गम्भीर अनुभूति। इसलिये साधारण लोगों को इसकी कविताएँ गूढ़ और अस्पष्ट मालूम होती हैं। अब तक हमने 'गुञ्जन' की काव्य-कला से सम्बन्ध रखने वाली सामान्य बातों का ही निर्देश किया। अब हम गुञ्जन में कवि की कला की अभिव्यंजना-पद्धति की विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

'गुञ्जन' की कला और उसकी अभिव्यंजना—पंत चिन्तक भी हैं और एक कुशल कलाकार भी। दर्शन और काव्य-कला का यही मधुर सामंजस्य पंत की कविता का प्राण है। इनका विद्रोह सबसे अधिक कला के क्षेत्र में ही हुआ है। जहाँ एक ओर उन्होंने द्विवेदी-युग के उपयोगितावाद के विरुद्ध भावुकता का विद्रोह खड़ा किया वहाँ दूसरी ओर कला में रूढ़ि और रीति की जटिलता के विरुद्ध अपनी आवाजें बुलन्द कीं। वे केशव की भाँति कविता-कामिनी को अलंकारों के बोझ से मार डालना नहीं चाहते; वे चाहते हैं कि वह अपने प्रकृत तथा स्वाभाविक रूप में पाठकों के सामने उपस्थित हो। पंत का यही

काव्यादर्श है। जिस तरह कवि का भाव-जगत् सदैव परिवर्तनशील रहा उसी तरह उसकी काव्य-शैली भी बदलती रही है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, 'पल्लव' से 'गुंजन' तक कवि की कला में एक रूपता मिलती है। कविता में अनुभूति, कल्पना, सूक्ष्मदर्शिता, संगीत-मय प्रवाह, भाषा की सांकेतिकता आदि विशेष गुण मिलते हैं। 'युगांत' में कवि की कला और शैली में परिवर्तन देखा जाता है। 'गुंजन में जो कला तितली के पंख लेकर उड़ी थी, वह 'युगान्त' में आकर मांसल हो गई। एक शब्द में कवि की नारी-कला पौरुषमय हो गयी। फिर, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में पन्त की शैली का मनोच्छ्वास दीर्घ होता गया और वह क्रमशः चिन्तन और साधना में क्षीण दिखलाई पड़ने लगा। इतना होने पर भी पंत का प्रकृति-प्रेम, कल्पना की उड़ान, गीति काव्य का सौष्ठव तथा भाषा का माधुर्य हमें सर्वत्र मिलता है।' जिस तरह गुलाब की पंखुरियों के मध्य में पराग की स्थिति होती है उसी तरह 'गुञ्जन' पन्त जी की काव्य-चेतना के मध्य-विन्दु में स्थित है। इस-लिये इसकी पूर्ववर्त्ती रचनाओं और परवर्ती रचनाओं की समस्त काव्य-गत और शैलीगत विशेषाएँ 'गुंजन' में समाहित हो गयी हैं। एक शब्द में, 'गुंजन' वर्तमान काव्य-कला की प्रतिनिधि रचना है। आज और कल के कलाकार पंत का दर्शन इसी में हो जाता है। इतना होते हुये भी 'गुंजन' की काव्य-शैली अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न अवश्य है। शुक्ल जी का कहना है कि 'गुंजन' में कवि का जीवन के भीतर अधिक प्रवेश ही नहीं है, उसकी काव्य-शैली को भी हम अधिक संयत और व्यवस्थित पाते हैं। प्रतिक्रिया की झोंक में अभिव्य-जना के लाक्षणिक वैचित्र्य आदि के अतिशय प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति हम 'पल्लव' में पाते हैं वह गुंजन' में नहीं है। उसमें काव्य-शैली अधिक संयत और गंभीर हो गई है।'[1]

---

[1] शुक्ल जी का इतिहास, पृ० ७६२

'गुंजन' के कवि पंत ने वर्तमान हिन्दी कविता-कला को अभिव्यंजना-शैली का बिलकुल नया रूप दिया है—नये छंद, नये आभरण, नये रस-विधान, नये गीति-तत्व—सब कुछ नये हैं। इसके लिये कवि को अपने युग की कवि-परम्परा से भी काफी संघर्ष करना पड़ा है। उन्हें द्विवेदी युगीन आलोचकों की कठोर समीक्षाओं का आघात भी सहना पड़ा है। 'गुंजन' में कवि ने इसका संकेत अन्योक्ति अलंकार के आवरण में कर दिया है। प्राचीन परंपरागत कविता-पद्धति का समर्थ-आलोचक विहंगम (कवि) से प्रश्न करता है—

तेरा कैसा गान,
विहंगम ! तेरा कैसा गान ?

तत्कालीन आलोचकों को पंत की कविता अस्पष्ट, गूढ़ और अनबूझ पहेली-सी जँची। उन्होंने कवि पर तरह-तरह के आक्षेप लगाये—

न गुरु से सीखे वेद-पुराण,
न षड्दर्शन, न नीति-विज्ञान;
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छंदों की पहचान ?
न कर पिक-प्रतिभा का अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान !
हँसते हैं विद्वान !
गीत-खग, तुझ पर सब विद्वान् !

—गुंजन, पृ० १०५

काव्य-शैली की दृष्टि से पंत आरम्भ से ही स्वच्छन्दवादी कवि रहे हैं। 'साहित्य के इतिहास में कभी कभी ऐसा युग भी आता है जब साहित्य की पद्धति और रचना-कौशल (Technique) धीरे-धीरे विशिष्ट प्रकार से गूढ़ हो जाता है, काव्यादि में प्रयोग के लिये जीवन-व्यापारों अथवा अनुभूतियों के चुनाव तथा उसकी अभिव्यक्ति के ढंग व्यक्तिगत स्वतंत्रता

की प्रवृत्ति रह नहीं जाती।...उसी की प्रतिक्रिया होती है और तब जान-बूझकर प्राचीन के विरुद्ध विद्रोह और नूतन के प्रति मोह की प्रवृत्ति बढ़ती है।"[१] पंत की काव्य-कला द्विवेदी-युग की काव्य-कला का प्रतिक्रिया में खड़ी हुई जो हिन्दी कविता के लिये एकदम नयी साबित हुई। लोगों का चौंकना स्वाभाविक ही था। अभिव्यञ्जना-शैली की यह नूतन पद्धति कवि को अंग्रेजी कवियों की काव्य-पुस्तकों से मिली। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों, जैसे, कीट्स, शेली, वर्ड्सवर्थ, वायरन — की रचनाओं से पंत इतने प्रभावित हुए कि वे उनकी काव्य-कला को अपनी कविता में अपना लेने का लोभ संवरण न कर सके। अतएव, पंत ने हिन्दी में काव्य की नई अभिव्यंजना शैली का नया द्वार खोल दिया जिससे होकर हिन्दी के अन्य कवि भी आने-जाने लगे। पंत की रचना शैली का जितना अनुकरण हिन्दी कवियों ने किया उतना किसी भी दूसरे हिन्दी कवि का नहीं हुआ। उनकी कविता में आधुनिक अंग्रेजी-हिन्दी कविता की समस्त काव्यगत, शैलीगत और कलागत विशेषताएँ पाई जाती हैं। यदि कोई भी व्यक्ति आधुनिक हिन्दी कविता, विशेष रूप से छायावादी कविता की सामान्य विशेषताओं से अवगत होना चाहता है, तो सिर्फ पंत के 'गुञ्जन' का अध्ययन कर लेने से ही उसका काम चल जायगा। संक्षेप में, 'गुञ्जन' आधुनिक हिन्दी कविता की एक प्रतिनिधि रचना है। साथ ही, छायावादी कविता में भी इसका उच्च स्थान है।

पंत की कविता पर न तो अभिव्यञ्जनावाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा न कलावाद का ही; न तो प्रतीकवाद का प्रभाव है और न प्रकृतिवाद का ही। उनकी कला में स्वाभाविक स्वच्छंदता पायी जाती है। पाश्चात्य साहित्य का अत्यधिक अध्ययन करते रहने के कारण इन पर लगभग समस्त 'वादों' का थोड़ा-बहुत परोक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा है लेकिन किसी भी खास 'वाद' का साक्षात् प्रभाव उन पर नहीं है। शुक्ल

---

१. काव्यालोचन के सिद्धान्त प्रो० शिवनन्दन प्रसाद, ५-८५

जी ने 'पल्लव' की कविताओं को पढ़कर यह अच्छी तरह जान लिया था कि "यदि 'छायावाद' के नाम से एक 'वाद' न चल गया होता तो पंत जी स्वच्छन्दता के शुद्ध स्वाभाविक मार्ग (True romantic) पर ही चलते।" सच तो यह है कि पंत आज भी स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। वे किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं करते।

'गुञ्जन' के गीत—पंत ने अपनी काव्य-कला की अभिव्यञ्जना गीतियों के माध्यम से की है। गीत उनके काव्य के प्राण हैं। गीत उनके प्राणों का स्पन्दन है। 'गुञ्जन' में उन्होंने यह स्पष्टतः स्वीकार किया है कि—

पार करते अनन्त अज्ञात,
गीत मेरे उठ सायं-प्रात;
गान ही में रे मेरे प्राण
अखिल-प्राणों में मेरे गान
आज मेरे प्राणों में गान।

—गुञ्जन, पृ० १०६

आधुनिक हिन्दी में गीतिकाव्य के जन्म देने वालों में पंत का स्थान ऊँचा है। 'वीणा' और 'पल्लव' के अधिकांश छन्द शुद्ध गीतिकाव्य की विभूतियाँ हैं। उनके शुद्ध गीतिकाव्य का उदाहरण 'मौन निमन्त्रण' है। यद्यपि पंत ने अपनी हृदयगत भावनाओं को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त होने दिया है तथापि ये महादेवी, बच्चन, निराला, प्रसाद, भगवती चरण वर्मा तथा रामकुमार वर्मा की तरह कुशल गीतकार नहीं हैं। 'वीणा' और 'पल्लव' में उनके कुछ अच्छे गीत अवश्य मिलते हैं लेकिन 'गुञ्जन' में चिन्तन और मनन की अतिशयता के कारण गीत की विशेषताएँ क्षीण होती गई हैं। फिर भी कुछ ऐसे गीत हैं जिन्हें हम ऊँचे दर्जे के गीत अवश्य कह सकते हैं। प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने 'गुंजन' के गीतों के संबन्ध में ठीक ही कहा है कि 'गुंजन' की रचनाओं में वे समस्त

विशेषताएँ हैं जिनकी प्रगीत मुक्तक में अपेक्षा रहती है।[१] यों तो इसके गीतों में गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ, थोड़ी-बहुत प्रत्येक गीत में मिल जायेंगी लेकिन सच तो यह है कि 'गुंजन' में उच्च कोटि के गीतों का अभाव ही है। मैं कह चुका हूँ कि इसके गीत दार्शनिक चिन्तन के भार से दबे हैं। चिन्तना मन की एक साधना है, जिसके लिये पर्याप्त समय की अपेक्षा होती है। इसीलिए इस काव्य-पुस्तक के अधिकांश गीत बहुत लम्बे हैं। शुद्ध गीत को लम्बा नहीं होना चाहिये। गीत सख्या १, २, १३, २२, ३२, ३५, ३८ ही ऐसे गीत हैं जो संक्षिप्त हैं और जिन्हें हम अच्छे गीतों के अन्तर्गत रख सकते हैं।

'गुंजन' के गीत गेय हो सकते हैं लेकिन ये गेय नहीं हैं। छायावाद के अधिकाश कवियों ने प्रगीत मुक्तकों की ही रचना की, गीतों का नहीं। प्रगीत मुक्तकों को गीत समझ लेना भारी भूल होगी। 'गुंजन' में प्रगीत मुक्तकों की ही अधिकता है, गेय गीतों की नहीं। यद्यपि ये प्रगीत गेय भी हो सकते हैं लेकिन ये संगीत के शास्त्रानुमोदित ढंग पर परिचालित नहीं हैं। प्रो० रामखेलावन पाण्डेय ने गीति काव्य के इन दो भेदों—गेय गीत और गीत—में इस प्रकार अंतर बताया है—'गीति-काव्य का सबसे अधिक प्रचलित रूप गीतों में मिलता है। गीत गेय काव्य का विकसित रूप है। गेय काव्य में जहाँ गेयता और संगीत के शास्त्रीय निर्वाह का आग्रह है वहाँ गीतों में संगीत की नहीं, संगीतात्मकता की अपेक्षा रहती है। गीति-काव्य के इस प्रकार के वर्गीकरण में संगीत मुख्य कसौटी है। संगीत को ही विभाजक रेखा समझना चाहिए। शुद्ध गीतों में अनुभूति अथवा भावना की सहज अभिव्यक्ति होती है, जिसमें शब्द और लय अनुभूति की व्यंजना में सहायक होकर उसका संकेत देते हैं।"[२]

१. पंतजी का गुञ्जन, पृ० १६६
२ गीतिकाव्य पृ० २२२ २३

इस तरह, 'गुंजन' के गीतों में न तो शास्त्रानुमोदित गेयता है और न व्यक्तिगत भावना की सहज अभिव्यक्ति। 'अप्सरा'-गीत अलंकारों के बोझ से दबा है, 'एक तारा' में दार्शनिक चिन्तन है और 'नौका विहार' में दृश्य जगत् की चित्रमत्ता साथ ही हम देखते हैं कि 'गुंजन' में उच्च कोटि के कुछ गीत अवश्य हैं जिनमें हृदय के किसी एक ही भाव (Untied emotion) की अभिव्यक्ति हुई है, जिनमें भावना का उत्कर्ष क्रमशः गतिशील होता गया है।

'गुंजन' के गीतों के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। मैं अन्यत्र कह चुका हूँ कि इसके गीत एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं। ये समस्त गीत एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। सारे गीतों को कवि ने चुन-चुन कर उनका एक व्यवस्थित क्रम स्थिर किया है। 'गुंजन' की सूची' देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन गीतों की व्यवस्था और क्रम-बद्धता में कवि की मनोदशा का सीधा विकास हुआ है। फिर भी, गीतों की क्रमबद्धता में अस्तव्यस्तता अवश्य आ गई है। इसलिये इसके कुछ गीतों का क्रम उलट-पलट गया है जिससे ये गीत एक दूसरे से स्वतंत्र मालूम पड़ते हैं। 'गुंजन' के गीत प्रगीत मुक्तकों की श्रेणी में रखे जायेंगे, लेकिन इन समस्त प्रगीतों में कवि की मनोदशा का क्रमिक विकास हुआ है। इसलिये ये गीत स्वतंत्र न होकर एक दूसरे पर अवलंबित हैं।

'गुंजन' की काव्य-शैली—अब मैं 'गुंजन' की काव्य-शैली पर विचार करूँगा। 'गुंजन' छायावादी काव्य-शैली की एक प्रौढ़ रचना है। छायावादी काव्य की मौलिकता के सबसे अधिक दर्शन नवीन उपलक्षण, प्रतीक तथा साम्य-योजना में हुये। पंत कवि परंपरा-प्राप्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उद्भावना करने में एक कुशल कवि हैं। उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-अनुभूति की गंभीरता तथा हृदय की सरसता ने मिल कर नवीन, सुन्दर और प्रभावपूर्ण प्रतीकों का सर्जन किया है। कवि की काव्य-शैली में नवीन उद्भावनाएँ अधिक हुई

हैं। पंत की कविता में नवीन काव्य-कला के प्रति अधिक ममता है, प्राचीन शैली के प्रति कम। लेकिन उन्होंने प्राचीन अलंकारों की महत्ता को कुछ हद तक अवश्य स्वीकार किया है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' में उन्होंने लिखा है कि "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिये नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार हैं; भाषा की पुष्टि के लिये, राग की परिपूर्णता के लिये आवश्यक उपादान हैं।" पंत ने अलंकारों का प्रयोग अधिकतर भाषा को सजाने-सँवारने के लिये तथा भावों में तीव्रता और स्पष्टता लाने के लिये किया है। उन्होंने कहीं भी 'भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिये नहीं बुनी है।' पंत 'सुन्दरम्' के कवि हैं। इसलिये इस 'सुन्दरम्' को अपने काव्य की कसौटी मान कर ही उन्होंने अलंकारों को अपनी कविता में स्थान दिया है। भाषा को सुन्दर आवरण देने के लिये अलंकारों का व्यवहार होता है। छायावादी कवियों ने अपनी प्राचीन काव्य-परंपरा से प्राप्त अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। इस दृष्टि से छायावाद के अधिकांश कवि रीतिकाल के कवियों के बहुत अधिक निकट मालूम होते हैं। क्योंकि दोनों ने अलंकारों का बहुत अधिक प्रयोग किया है। लेकिन दोनों की व्यावहारिक टेकनीक में उतना ही अंतर है जितना पुरुष और नारी में। पहली बात तो यह है कि रीति काल के कवियों ने अलंकारों को साध्य मान कर कविताएँ की थीं, लेकिन छायावादी कवि अलंकार को साधन मानते हैं, साध्य नहीं। इनका लक्ष्य जीवन की गहनतम अनुभूतियों को अलंकारों के माध्यम से अभिव्यंजित करना है। दूसरी बात यह है कि जहाँ रीति काल के कवियों ने संस्कृत-साहित्य, शास्त्र में दिये गये अलंकार के लक्षणों का ज्यों-का त्यों अनुसरण किया है, वहाँ छायावादी कवियों ने अपनी स्वच्छंद प्रवृत्तियों तथा रुचि-स्वातंत्र्य का परिचय दिया है। इनके द्वारा व्यवहृत अलंकारों में इतनी अधिक मौलिकता और नवीनता पायी जाती है कि काव्य शास्त्र में वर्णित अलंकारों की परिधि में वे अन्तर्हित नहीं हो पाते।

'गुंजन' की पंक्तियों में हम देखेंगे कि बहुत से अलंकार वे ही हैं जो प्राचीन अलंकार-शास्त्र में आये हैं लेकिन उपयोग बिलकुल नये ढंग से हुआ है।' इनमें जितने नये और पुराने अलंकारों का व्यवहार हुआ है, उनका उद्देश्य भावों की तीव्र अनुभूति कराना है। अलंकार का आधार साम्य-योजना है। इस साम्य के अनेक भेद हैं—शब्द-साम्य, रूप-साम्य, धर्म-साम्य और प्रभाव-साम्य। कविता का उद्देश्य वस्तु-बोध के साथ भावोद्रेक कराना है। इसलिये रूप-साम्य और धर्म-साम्य रहने पर भी यदि अलंकारों में प्रभाव-साम्य का अभाव रहा तो उनका कुछ भी महत्व नहीं। सच्ची कविता हृदय पर प्रभाव डालती है। अतएव, रूप-सादृश्य तथा धर्म-सादृश्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य की ही अधिक महत्ता है। छायावादी काव्य में शब्द—साम्य को आधार मान कर चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं है। पंत ने अपनी काव्य-कला में अलंकारों के प्रयोग में विशेष श्रम नहीं किया है,। वे स्वयं प्रसूत हुये हैं। प्राचीन कविता के अलंकारों में जितनी कृत्रिमता आ गयी थी, पंत की कविता (छायावाद) में उतनी ही स्वाभाविकता आ गई है। यद्यपि उन्होंने शब्द-साम्य पर भी अपनी दृष्टि रखी है तथापि उनकी नजर प्रभाव-साम्य पर ही अधिक होती है। डॉ० नगेन्द्र के कथनानुसार 'पंत की अलंकार-योजना में पश्चिमीय पॉलिश अधिक है—उनमें अभिव्यंजनावाद बोल रहा है, परन्तु भारतीय अलंकार शास्त्र के भी आप कम ऋणी नहीं हैं—विशेषकर सादृश्य-मूलक अलंकारों को तो आपने काफी अपनाया है। उपमा और रूपक पंत जी की कविता में मणियों की भाँति चमकते हैं।' पूर्णोपमा का एक उदाहरण लीजिये—

मृदुर्मिल-सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध-कवि के डर के छू तार
प्रणय का-सा नव-गान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,

पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान;

—गुंजन, पृ० ४३.

पंत ने इसमें उपमाओं की भीड़ लगा दी है। लेकिन ये उपमाएँ सभी नवीन हैं। उनमें परम्परा की गन्ध तनिक भी नहीं है। यहाँ पर सौन्दर्य और कोमलता को घोषित करने के लिये दो साम्यों की योजना की गयी है। एक उपमान मृदुल लहरियों के झील में उठता हुआ अरुण सरोज है और दूसरा कवि के हृदय में प्रेम-गीत की शनैःशनै उद्भावना है। यौवन का विकास कमल की क्रमशः बढ़ती हुई शोभा और कवि-हृदय में धीरे-धीरे उठते हुये प्रेम के गीत के समान है। कवि अपनी प्रेयसी के यौवन की विकासशील स्थिति को मूर्त्त-रूप देने की चेष्टा करता है, यहाँ कवि ने अपने भावों को चित्रमत्ता प्रदान करने का प्रयत्न किया है। यों तो पंत पुराने उपमानों का प्रयोग लगभग कम ही करते हैं लेकिन जहाँ वे उनका प्रयोग करते भी हैं तो उनके व्यवहार में नवीनता होती है। उपरिलिखित पंक्तियों में मुख की उपमा सरोज से दी गयी है। पुराने कवियों ने भी ऐसा ही किया है। लेकिन जिस नये ढंग से कवि ने इसका प्रयोग किया है, वह कवि की प्रतिभा का द्योतक है। भावों को मूर्त-रूप देने में पंत की काव्य-शैली बड़ी ही कुशल है। ऐसे अवसर पर प्राचीन कवियों ने दूर की कौड़ी लाने की चेष्टा की है, अप्रस्तुत योजना की अति कर दी है। लेकिन इस कवि ने सरसता के साथ ही स्वाभाविकता की भी रक्षा की है। कवि ने काव्य की पुरानी नींव पर बिलकुल नये ढंग का काव्य-महल खड़ा किया है। उपकरण तो पुराने हैं, सूझ नयी है। प्रस्तुत के आधार पर की गयी अप्रस्तुत—योजना काव्य की मार्मिकता बढ़ा देती है। छायावाद के प्रतिनिधि कवि पंत के अप्रस्तुत कुछ पुराने हैं और कुछ नये। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, इन्द्र धनुष, उषा, प्रभात, सुमन, बिजली, मछली, लहर, ज्योत्स्ना, हिमजल, आँसू, किरण, तिमिर, अंजन, समीर, आदि प्रच-

लित अप्रस्तुत हैं लेकिन कल्पना, मादकता, मूर्छना, स्मृति, स्वप्न, विस्मृति, सुकुमारता, अकांक्षा, लालसा, लज्जा, स्पृहा आदि जैसे सूक्ष्म और नवीन अप्रस्तुत अपनाये गये हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में कुछ नये अप्रस्तुतों की योजना की गयी है जिससे भाव मूर्त्त हो गये हैं—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप।

× ×

नवल-कलिकाओं की-सी बाण,
बाल-रति-सी अनुपम, असमान

+ + +

जननी-अंचल में भूल सकाल
मृदुल उरकंपन-सी वपुमान;
स्नेह-सुख में बढ़ सखि! चिरकाल
दीप की अकलुष-शिखा समान।

—*भावी पत्नी के प्रति, पृ० ३६;*

इन समस्त उपमा अलंकारों में जिन उपमानों का उपयोग किया गया है उनमें रूप-साम्य की योजना न होकर प्रभाव-साम्य की योजना है। आधुनिक-काव्य-शैली और प्राचीन काव्य-शैली में यही अंतर है कि प्राचीन काव्य में जहाँ रूपसाम्य तथा धर्म-साम्य की अधिकता रहती थी वहाँ आधुनिक काव्य में प्रभाव-साम्य की योजना रहती है। पंत इस कला में पूरे दक्ष हैं।

पंत के प्रिय अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकार भी अधिक आये हैं। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण लीजिये—

खोल सौरभ का मृदु-कच-जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग-बाल,
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद,
चूम लघु-पद-चंचलता, प्राण।

—'गुंजन', पृ० ४२

इस उत्प्रेक्षा में नया प्रयोग हुआ है। यहाँ प्रकृति पर मानव-भावनाओं का आरोप हुआ है। प्रकृति को मानव की सहचरी के रूप में उपस्थित किया गया है। 'कच-जाल' पर 'सौरभ' का आरोप कवि की नयी सूझ है।

पंत की कविता में दो अलंकार विशेष रूप से आते हैं—समासोक्ति और अन्योक्ति। 'गुंजन' में भी इनकी कमी नहीं है। समासोक्ति अलंकार के न जाने कितने सुन्दर उदाहरण पंत की रचनाओं में मिलते हैं। 'गुंजन' से एक उदाहरण लीजिये—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शरद-हासिनी !
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव अनिमिष एकाकिनि !

—गुंजन, पृ० ८७

कवि ने इन पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार (पाश्चात्य काव्य में व्यवहृत एक अलंकार, और समासोक्ति, का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। चाँदनी को कवि ने एक सुन्दर नारी का रूप दिया है। इसमें पाश्चात्य और भारतीय अलंकारों का समन्वित प्रयोग किया गया है। पंत की काव्य-कला में इन्हीं दो शैलियों का अच्छा समन्वय हुआ है। कवि ने न केवल चाँदनी का मानवीकरण (Personification) किया है वरन् उसके चित्रमय भावात्मक (Abstract) सौन्दर्य का वर्णन

अनेक उपमानों के सहारे भी किया है। आकाश के नील-कमल पर बैठ कर मुसकाने वाली शरदकालीन चाँदनी अपनी कोमल हथेली पर चन्द्रमुख रख कर चुपचाप अकेली अपलक संसार को देख रही है। इसमें कवि ने स्वस्थ्य कल्पना, भावात्मक सौन्दर्य और स्वच्छ रूप का विधान किया है। इसमें अमूर्त्त भाव को मूर्त रूप दिया गया है। पंत इस कला में बड़े निपुण हैं।

'गुंजन' में अन्योक्ति का व्यवहार भी अच्छा हुआ है। वर्तमान कविता में इसका प्रयोग बहुत हुआ है। अन्योक्ति वर्तमान काव्य-शैली का एक आवश्यक अंग बन गयी है। इसमें किसी विशेष भाव की अभिव्यंजना होती है। इसके लिये कवि प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग करता है। पंत की कविता में इसका अभाव नहीं है। 'गुंजन' में ऐसे अनेक गीत आये हैं जिनमें कवि ने प्रतीकों के सहारे अपने विशेष भावों को किसी प्रयोजन से प्रेरित होकर प्रकट किया है। एक अंग्रेज आलोचक, डब्लू० टी० स्टेस (W. T. Stace) ने बताया है कि 'In truth Symbolism is the mark of an infirm mind. It is the Measure of our weakness and not our strength. It is produced and propagted by those who are unable to rise above materialistic level'[1] वस्तुतः बात ऐसी नहीं है जैसा कि स्टेस साहब समझते हैं। भारतीय साहित्य में अन्योक्ति या प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग होता रहा है। वेदों, उपनिषदों, कबीर की वाणियों आदि में इनका काफी प्रयोग हुआ है। प्रतीक मानव मन के अस्पष्ट भावों को व्यक्त करने का एक साधन है। पंत ने अपनी कविता में अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये इसका व्यवहार किया है। कुछ उदाहरण लीजिये—

सुनता हूँ, इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली,

---

[1] A Critical Study of Greek Philosophy P. 12

पर मुझे डूबने का भय है,
भाती तट की चल-जल माली।

—गुंजन, पृ० ७१

इन पंक्तियों में मछली या मोती ब्रह्म का प्रतीक है, 'निस्तल जल' परमार्थ या जीवन की तह का प्रतीक है। कवि इन प्रतीकों के सहारे यह बतलाना चाहता है कि इस जीवन की तह में जो परमार्थ तत्व छिपा हुआ कहा जाता है, उसे पकड़ने और उसमें लीन होने के लिये बहुत से लोग अन्तर्मुख होकर गहरी-गहरी डुबकियाँ लगाते हैं, पर कवि को तो उसके व्यक्त आभास ही रुचिकर हैं। अपनी पृथक् सत्ता विलीन करते उसे भय लगता है। इसी तरह 'गुंजन' के प्रथम गीत 'वन-वन उपवन' में भी कवि ने अन्योक्ति के सहारे अपने प्रयोजनीय अर्थ की अभिव्यंजना की है।

वन बन उपवन
छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन,
नव वय के अलियों का गुञ्जन!

इसमें प्रतीक योजना है। इसमें दोहरे अर्थ रखे गये हैं। 'अलि' छायावादी कवियों का भी प्रतीक है और अन्तरात्मा का भी; 'छाया' छायावाद का प्रतीक है और आध्यात्मिक जगत् का भी। 'गुञ्जन' मन की चंचलता का प्रतीक है। इसी तरह गीत संख्या ४४, १८, १६ आदि में भी अन्योक्ति का अच्छा प्रयोग किया गया है। इसमें मानव-हृदय की अमूर्त भावनाओं की अभिव्यक्ति करने की गुंजाइश रहती है। अब तक हमने यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि प्राचीन अलंकारों को पंत ने किस तरह नवीन ढंग से अपनाया है और इससे उनकी काव्य-कला अधिक चमत्कृत हुई है।

पाश्चात्य काव्य-कला से प्रभावित होने के कारण पाश्चात्य काव्य-कला-शास्त्र में वर्णित कुछ अलंकारों को अपना कर पंत ने 'गुञ्जन'

की कविता, कामिनी का शृंगार किया है। अंग्रेजी अलंकार-शास्त्र में लक्षणा-मूलक अलंकारों की प्रधानता होती है। इसमें आये विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) और मानवी करण (Personification) इन दो अलंकारों को आधुनिक कवियों ने विशेष रूप से अपनाया है। इनमें पहला अलंकार-विशेषण-विपर्यय भाषा की लक्षणा-शक्ति का द्योतक है और दूसरा अलंकार मानवीकरण, मूर्त्तिमत्ता तथा चित्रमत्ता का परिणाम है। विशेषण-विपर्यय भारतीय काव्य-शास्त्र में आये प्रयोजनवती लक्षणा का ही दूसरा नाम है। पन्त के 'गुञ्जन' में अंग्रेजी के इन दो अलंकारों का प्रयोग बहुलता के साथ हुआ है। शब्द-शिल्पी पंत की काव्य-कला में विशेषण-विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'गुञ्जन' के प्रथम गीत में ही इसका व्यवहार हुआ है—

छाया-उन्मन-उन्मन गुञ्जन।

'उन्मन गुञ्जन' एक लाक्षणिक प्रयोग है। 'गुञ्जन' कभी उन्मन नहीं हो सकता, गुञ्जन करने वाला जीव भले ही हो। 'उन्मन गुञ्जन' का अर्थ विशेषण- विशेष्य संबन्ध के आधार पर लक्षणा द्वारा 'भौंरों का गुञ्जन' लिया जायगा। इसी तरह—'रे गन्ध-अन्ध हो ठौर-ठौर' में भी लाक्षणिकता है। अर्थ होगा गंध के कारण बेसुध।

'गुञ्जन' में मानवीकरण अलंकार का भी सफल प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। सूक्ष्म भावों के गोचर-विधान से प्रभविष्णुता बहुत अधिक बढ़ जाती है। कल्पना का क्रीड़ा करना, पीड़ा का खेलना, अभिलाषा का सिसकना, आशा का हँसना, उल्लास का नाचना, स्वप्न का विचरना आदि के प्रयोग मानवीकरण अलंकार के अन्तर्गत आयेंगे।। इसके द्वारा कवि ने भावों को मूर्त्तता प्रदान की है। उसने चाँदनी को दुलहिन का रूप दिया है—

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर

वह छवि की छुई मुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर

—गुंजन, पृ० ८६

पंत की काव्य-कला की सबसे बड़ी शक्ति चित्रण की शक्ति है। इस कला में प्रसाद के बाद पंत को ही सबसे अधिक सफलता मिली है। अमूर्त्त भाव को ठोस चित्र का रूप दे देना उन्हें अच्छी तरह मालूम है। काव्य-चित्र और संगीत की सरिता इनकी कविता-धारा में बहाई गई है। सुहाग की मधुमयी रात में प्रियतम के पास जाती हुई पंत की 'प्राण' का कितना सजीव चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में अंकित किया गया है—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात।
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जड़ित पद, नमित-पलक-दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण!
मधुरता में सी मेरी अजान,
लाज की छुईमुई-सी म्लान
प्रिये, प्राणों की प्राण

—भावी पत्नी के प्रति।

पंत की ये पंक्तियाँ अमर हो गई हैं। शब्दों के संयम और भावों की सरसता और स्वाभाविकता के लिये यह अवतरण अमर रहेगा। इसका प्रत्येक शब्द एक सजीव चित्र की भाँति अपने उपयुक्त स्थान पर जड़ा हुआ है। 'जड़ित-पद, नमित-पलक दृग-पात' में ठिठकी हुई म्लान मुखी लज्जावती नारी का स्पष्ट रूप खड़ा किया गया है। डॉ० नगेन्द्र के कथनानुसार, कुशल चित्रकार की प्रतिभा का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वह अपने चित्र में उन वस्तुओं का ही अंकन करे जो

प्रभावोत्पादक और आह्लादकारी हैं और अन्य साधारण अथवा वाँछित प्रभाव में बाधक सभी वस्तुओं को छाँट-छाँट कर अलग कर दे।'[1] पंत की चित्र-ग्राहिणी शक्ति इन सार-वस्तुओं को छाँट कर अलग कर लेने में कुशल है। इनकी चित्रण-कला में संश्लिष्ट चित्रों की ही अवतारणा हुई है। एक उदाहरण लीजिये—

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनन्त, नीरव भू-तल!
सैकत-शैया पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।

—गुञ्जन, पृ० १०

'गुञ्जन' की 'नौका विहार' कविता मूर्त चित्रों के लिये अमर बनी रहेगी। इसी तरह 'एक तारा' कविता की आरंभिक पंक्तियों में संध्या का स्वाभाविक और सजीव चित्र आँका गया है—

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।
खग-कूजन भी हो गया लीन, निर्जन गो-पथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म-क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशांति हो रहा चीर
संध्या—प्रशान्ति को कर गंभीर।

—गुंजन पृ० ८४

पंत की चित्र-अंकन कला की एक और खूबी है। उनकी अंकन-कला का एक महत्वपूर्ण अंग उनके सचित्र-विशेषणों है। शब्द-संयम इस कवि की काव्य-कला की अपनी विशेषता है। चित्रांकन करने के लिये

[1] सु० न० पंत पृ० ५३

कवि विस्तार की अपेक्षा संकोच और सिकोड़ से काम लेता है। उन्हें अपनी भाषा-शक्ति पर इतना अधिकार है कि वे एक ही शब्द से एक सजीव चित्र उपस्थित कर सकते हैं। इस प्रकार के एक शब्द चित्र (One word Picture) अन्यत्र नहीं मिलते। पंत की कविता में यह दुर्लभ नहीं है। एक शब्द-चित्रण उनकी काव्य-शैली का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। संध्या का चित्रांकन करने के लिये कवि ने कुछ ही नपे-तुले शब्द चुन लिये हैं—'नीरव संध्या मे प्रशान्त' इसमें 'नीरव' और 'प्रशान्त' शब्द संध्या के वातावरण को वाणी प्रदान करते हैं। इसी तरह 'शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना, उज्ज्वल. अपलक, अनन्त, नीरव, भू तल' में प्रत्येक शब्द उन्मुक्त भूतल के स्वच्छ वातावरण को स्पष्ट कर रहा है।

पंत की काव्य-भाषा उनकी काव्य-कला से पृथक सत्ता नहीं रखती। इस कवि को शब्दों के अन्तर्वाह्य रूपों का जितना गहरा ज्ञान है उतना हिन्दी के कम ही कवियों को है। इसीलिये पंत का प्रत्येक शब्द व्यञ्जना-पूर्ण (Suggestive) है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर जड़ दिया गया है। इनका एक एक शब्द अपना मूर्त रूप और स्वतन्त्र सत्ता रखता है। शब्दों द्वारा चित्रांकन करने की कला पंत को अच्छी तरह मालूम है। पंत ने स्वयं लिखा है कि "कविता के लिये चित्रभाषा की ही आवश्यकता पड़ती है। इसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार के चित्र, चित्र में झंकार हों।" शब्दों और भाषा की इतनी प्रखर परख पंत जैसे कवि में ही संभव हो सकती है। एक उदाहरण लीजिये। 'गुंजन' में कवि ने लिखा है—

प्रिय प्रिय विषाद यह अपना,
प्रिय प्रि' आह्लाद रे अपना।

डॉ० नगेन्द्र ने इसकी व्याख्या इस तरह की है—"जो संकेत और व्यंजना 'प्रि' आह्लाद में है वह प्रियाह्लाद में नहीं। क्योंकि आह्लाद में पृथक् रहने पर, जो हृदय को खिला देने की शक्ति है वह समस्त 'प्रियाह्लाद' में नहीं,

उसकी 'आ'-बहुलता में एक अनावश्यक संगठन सा आ जाता है जिसमें बिखरने का भाव पूर्णतया लुप्त हो जाता है। प्रत्येक शब्द के स्वतंत्र अस्तित्व के संबन्ध में पंत ने लिखा है कि—"भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः संगीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। जैसे, 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता से हृदय का अनुभव होता है। ऐसे ही हिलोर में उठान, लहर में सलिल के वक्षस्थल की कोमल कम्पन, तरंग में लहरों के समूह का एक दूसरे को ढकेलना, उठ उठ कर गिर पड़ना, बढ़ो बढ़ो कहने का शब्द मिलता है..."

पंत की काव्य-कला में एक बात और उल्लेखनीय है। इस कवि को न केवल शब्दों के द्वारा चित्रांकन करने आता है वरन् वह वर्णों के सहारे भी हमारी कर्णेन्द्रिय और चक्षुन्द्रिय को चित्र के रंगों का सूक्ष्म परिज्ञान करा सकता है। अंग्रेजी के कीट्स, रोसेटी, स्विनवर्न, राबर्ट ब्रिजेज और संस्कृत के बाणभट्ट, कालिदास आदि कवियों के बाद हिन्दी में पंत ही एक ऐसे कवि-पुंगव हैं जिन्हें वर्णों का सूक्ष्म परिज्ञान (Sense of Colour) है। हिन्दी के पुराने कवियों में विद्यापति, बिहारी, सूर आदि को भी इसकी परख थी। पंत की वर्ण-योजना बड़ी आकर्षक है। उन्होंने इसके द्वारा अपनी कविता में सुन्दर और सजीव चित्रों की अवतरणा की है। चित्रों में रूप-रंगों का अंकन करने में ये पटु तो हैं ही, साथ ही स्पर्श (Touch) और गन्ध का भी आस्वादन कराने में ये प्रवीण हैं। 'गुंजन' के 'नौका विहार' को पढ़कर पाठक अपने को बीचि-जाल में पाने लगता है—

चाँदी के-साँपों-सी रत्न मल, नाचती रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं सी खिंच सरल-तरल

इसी कविता के दूसरे पद (Stanza) में मन्द-मन्द संचरण करती हुई

नौका हमारे सामने आती दिखाई पड़ने लगती है, जैसे वह हमारी आँखों के सामने ही संचरण कर रही है—

सिकता की सस्मित-सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर,
मृदु मन्द मन्द, मंथर मंथर, लघु तरिणि, हंसिनी-सी सुंदर,
तिर रही, खोल पालों के पर।

'गुंजन' के प्रथम गीत में कवि ने हमारी आँखों को आम के बौरों तथा भौरों के रंग का सूक्ष्म परिज्ञान कराया है—

रुपहले सुनहले-आम्र-बौर,
नीले पीले औ ताम्र-भौंर।

इतना ही नहीं, पन्त की वर्ण-योजना क्रमशः इतनी सूक्ष्म होती गयी है कि भाव और भाषा के सहयोग से उन्होंने हमारे कानों को आराम देने वाले सुन्दर और सुखद ध्वनि-चित्रों की भी अवतारणा की है। इस कला में भी वे कुशल कलाकार हैं। ध्वनि-चित्रण में व्यंजना का प्राधान्य रहता है। पन्त 'सुन्दरम्' के ही कवि हैं, इसलिये इनके ध्वनि-चित्र भी कर्णेन्द्रिय को सुख देने वाले होते हैं। 'गुञ्जन' के प्रथम गीत में भौरों का सुखद 'गुञ्जन' प्रत्यक्ष सुनाई पड़ता है, ऐसा लगता है—

रे गंध-अन्ध हो ठौर-ठौर
उड़ पाँति-पाँति में चिर-उन्मन,
करते मधु के बन में गुञ्जन।

गंगा में उठती हुई चंचल लहरों की ध्वनि को हम स्पष्ट सुनते हैं—

जिनके लघु दीपों के चंचल, अंचल की ओट किये अविरल
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल।

× × ×

पतवार घुमा, अब प्रतनु-भार
नौका घूमी विपरीत धार।
डाँड़ों के चल कर तल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार,
बिखरती जल में तार-तार।
—*नौका-विहार पृ० १०३*

अंत में, मैं 'गुञ्जन' के छंदों के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना चाहता हूँ। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों 'में' 'गुञ्जन' में आकर पंत जी ने अधिक संयम से काम लिया है और छंदों में अधिक उलट-फेर नहीं किया। उसमें अनुक्रम (Symmetry) का विशेष ध्यान रखा गया है। 'गुञ्जन' के छंदों में भाषा की विशेष कोमलता के कारण रुन-झुन मिलती है जो 'ज्योत्स्ना' के नाट्य-गीतों में एक विशेष लय और ताल से संचालित होती है। वास्तव में, पंत की छन्द-योजना विशद है। उनके प्रत्येक छंद में राग की एक धारा अनिवार्य रूप से व्याप्त मिलती है—कहीं भी शब्दों की कड़ियाँ अलग-अलग असम्बद्ध नहीं दिखलाई पड़तीं—उनकी दरारें लय से भर कर एकाकार कर दी गयी हैं।'[1]

संक्षेप में, पन्त की काव्य कला चटकीली, रंगीन, स्वाभाविक, और आकर्षक है जिसमें गंगा और थेम्स नदियों की धारा एकमुख होकर बहाई गई है।

---

[1] सु० न० पं० पृ० ७२,

'गुंजन' की भाषा

"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है—यह विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में यह अभिव्यक्ति पाता है।"

—सुमित्रानन्दन पंत

आधुनिक खड़ी बोली की भाषा के सूत्रधार तथा शब्द-शिल्पी पंत की कविता की भाषा विषय और भावों की अनुगामिनी है। भाषा का इतना समृद्ध रूप हिन्दी के कम ही कवियों में पाया जाता है। डॉ० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि " जिस खड़ी बोली का रूप, अनस्थिरता के वाग्जाल से निकाल कर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्थिर किया, जिसको द्विवेदीय स्कूल ने परिमार्जित और नियंत्रित किया और कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने जिसे प्रांजल और मधुर बना कर काव्योचित रूप दिया, उसकी समस्त शक्तियों को विकसित एवं गूढ़ निधियों को प्रकाशित करने का श्रेय पंतजी को ही है। मैथिली बाबू की भी खड़ी बोली को पढ़ कर ब्रजबोली का रसिक उसे कविता की भाषा मानने में आपत्ति कर सकता है परन्तु पन्तजी के स्वरस्पर्श से जो उसके नेत्रों में अपूर्व ओज, कपोलों पर अनिंद्य माधुर्य और वक्ष पर दुग्धधवल प्रसाद की लहरें लहर उठी हैं उनको देखकर मतिराम और घनानन्द की जुनाई भी अपना चिरसंचित महत्व खो बैठती है। उसमें नए कटाक्ष, नये रोमांच, नये स्वप्न, नया हास, नया रुदन, नया हृत्कम्पन, नवीन वसन्त, नवीन कोकिलाओं का गान है।"[1]

आधुनिक हिन्दी-काव्य-भाषा के क्षेत्र में पन्त क्रांति के उपासक

१ सुमित्रा नन्दन पंत, पृ० ७३

हैं। 'पल्लव' के 'प्रवेश' में 'खड़ी बोली' का जोरदार समर्थन करते हुये उन्होंने अपनी क्रान्तिकारिता का परिचय दिया है। वे लिखते हैं:- 'अब व्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन-संग्राम का युग बीत गया। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पिय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कंठ फूट गया, अस्फुट अंग कट-छट गये,... मुझे तो उस तीन-चार सौ वर्षों की वृद्धा (व्रजभाषा) के शब्द बिलकुल रक्तमांस-हीन लगते हैं, जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गयी हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुरझा गये हों...।...खड़ी बोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बाल-कला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश की स्वर्गंगा है। यह समस्त भारत की हृत्कम्पन है।" पंत की कविता की भाषा 'खड़ी बोली' का उत्कृष्ट रूप है। 'गुंजन', कवि की काव्य-चेतना में, खड़ी बोली का विकसित रूप प्रस्तुत करता है। खड़ी बोली के हिमायती पंत ने इसकी भाषा को व्रजभाषा की ही तरह कोमल, सुकुमार और मधुर बनाया है। खड़ी बोली की कर्कशता सदा के लिये जाती रही। भाषा को रेशम के बालों की तरह चिकना बनाने का एकमात्र श्रेय इसी कवि को है। कवि ने आज से ३०-३२ वर्ष पहले जिस कविता की भाषा की स्वर्णाशा की थी उसकी पूर्ति 'गुंजन' में हुई है, ऐसा कहा जा सकता है। उसकी भाषा छायावादी काव्य-भाषा का प्रतिनिधित्व भी करती है और आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा के विकसित रूप का परिचय भी देती है। कवि ने अपने सपने को साकार करके यह दिखला दिया है कि खड़ी बोली कविता के भावों का भार ढोने में अच्छी तरह समर्थ है, व्रजभाषा और खड़ी बोली की भाव-व्यंजना में किसी तरह का अन्तर नहीं है।

'पल्लव' की भूमिका में पंत ने खड़ी बोलीभाषा के व्यापक रूप का स्वप्न देखा था। उन्होने उन दिनों (१९२६ ई०) कहा था कि "हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है, पुस्तकों की नहीं, मनुष्यों

की भाषा, जिसमें हम हँसते-रोते, खेलते-कूदते, गले-मिलते, स्पँस लेते और रहते हैं, जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिये आदर्श हो सके।.....यह अत्यंत हास्यजनक तथा लज्जास्पद है कि हम सोचें।एक स्वर में, प्रकट करें उसे दूसरे स्वर में, हमारे मन की वाणी मुँह की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के 'सारेगम' पृथक् हों, वाद्य-यंत्र के पृथक्; हमारी भाव-तंत्री तथा शब्द-तंत्री के स्वरों में मेल न हो; मूर्धन्य 'ष' की तरह हमारे साहित्य का हृदय, वेश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों में बाँट दी जाय।" पंत के इन शब्दों में भाषा-विद्रोह का विस्फोट हुआ है। वे कविता की भाषा और बोलचाल की भाषा में किसी भी तरह का भेद रखना नहीं चाहते। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) ने, ठीक पंत की ही तरह, आज से लगभग सौ-डेढ़-सौ वर्ष-पहले, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Lyrical Ballads' की भूमिका में इस बात की स्पष्ट घोषणा की थी कि कविता की भाषा साधारण लोगों की बोल-चाल की भाषा होनी चाहिये। उन दोनों कवियों ने अपने भाषा संबंधी-सिद्धांतों का प्रयोग अपनी काव्य-रचनाओं में किया था। शुरू में तो वे इनका निर्वाह कर सके लेकिन पीछे चल कर वे अपने पथ से दूर जा पड़े। पंत की रचनाओं में, उनके विचारों की ही तरह, उनकी भाषा भी बदलती रही। 'वीणा' से 'गुंजन' तक उनकी भाषा का एक क्रम, एक गति रही—प्रखर कल्पना, चित्रमयी भाषा, संगीतमय प्रवाह, सांकेतिकता और अलंकृति। लेकिन, जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है कि पंत की समस्त रचनाओं में 'गुंजन' मध्यम कड़ी का काम करता है। इसलिये इसकी भाषा में सुबोधता और दुर्बोधता, सरलता और साज-शृंगार दोनों के रूप साथ-साथ मिलते हैं। दो उदाहरण लीजिये—

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
मैं नहीं चाहता चिर-सुख;

सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख। —गुंजन, पृ० १५

इसमें भाषा और भाव दोनों सरल हैं। एक साधारण व्यक्ति को इसको समझने में किसी तरह की कठिनाई नहीं होगी। इसके विपरीत,

तुम्हारी तनु-पनिया लघुभार
बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल
मृदुलता सिरिस-मुकुल सुकुमार
विपुल पुलकावलि चीना-डाल

रेखांकित पदों को समझने में थोड़ी मत्था-पच्ची करनी ही होगी। इस तरह सामूहिक रूप से हम कहेंगे कि 'गुंजन' की भाषा दुरंगी है—उसमें सरलता भी है और क्लिष्टता भी। मैं कह चुका हूँ कि पंत छायावादी काव्य-शैली के अनन्य उपासक हैं। उनकी शैली पर पाश्चात्य और भारतीय शैलियों का प्रभाव पड़ा है। इसलिये इनकी भाषा भी दोमुखी हो गयी है। प्रतीक, लक्षणा, व्यंजना, विशेषण-विपर्यय, तथा मानवीकरण के पुजारी पंत की भाषा में सुबोधता न होना उनकी प्रकृति के अनुकूल स्वाभाविक ही है। कविता में सरलता का होना एक बात है और क्लिष्टता का होना दूसरी बात। सिद्धांत का प्रतिपादन करना सरल कार्य है, उसका व्यावहारिक प्रयोग उतना ही कठिन है। भाषा-संबंधी जिन कठोर सिद्धांतों को लेकर पंत चले हैं उनका निर्वाह विश्व के कम ही कवि कर पाते हैं। सच तो यह है कि कविता-रचना के क्रम में जब कवि-हृदय में भावावेश की आँधी मचने लगती है तब कवि अपने वाह्य-सिद्धांतों को भूल कर अपनी अन्तर्वाणियों को ही सुनने के लिये मजबूर हो जाता है। भावुक कवि पंत की भाषा भी इस भावावेश के प्रहार से बच नहीं सकी है। साथ ही, कवि के 'गुंजन में यह भी पाया जाता है कि जहाँ कवि सजग (Conscious) और सचेत

होकर जीवन और जगत् के सार्वभौम प्रश्नों पर मनन और चिन्तन करता है वहाँ की भाषा बड़ी ही सुबोध और सरल है, जैसे—

अस्थिर है जग का सुख दुख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन।
सुख-दुख से ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलम्बन ! —*गुंजन, पृ० २०*

इसके विपरीत, जब कवि अपने प्रणय की स्मृतियों की मार्मिक अनुभूतियों से व्यथित होता है या जब वह प्रकृति की बहुरंगी सुषमा पर दृष्टि-निक्षेप करता है तब उसकी भाषा अलंकृत, बोझिल, तथा क्लिष्ट हो जाती है, जैसे—

मृदुर्भिल-सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,
मुग्ध-कवि के उर के छू तार
प्रणय का-सा नव-गान ;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण ;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान। —*गुंजन, पृ० ७३*

उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर
दिखा मुख कनक-किशोर;
प्रेम की प्रथम मदिरतम-कोर
दृगों में दुरा कठोर —*गुंजन पृ०६३*

'गुञ्जन' के बाद की रचनाओं में कवि की भाषा में सरलता तथा सुबोधता अपने मुक्तरूप में आने लगी है। 'गुंजन' की भाषा दोमुखी अवश्य है लेकिन कवि ने सरसता को कभी भी अपने हाथ से जाने नहीं दिया। यह इस कवि की भाषा की एक दिव्य विशेषता है :

जहाँ अन्य कवि अपनी भाषा को सरल और सुबोधरूप देने में इतना श्रम करते हैं कि भाषा की सरसता, कोमलता और मधुरता जाती रहती है। पंत की भाषा सरल, भावगर्भित और सरस है। एक उदाहरण लीजिये—

अपने मधु में लिपटा कर
कर सकता मधुपन गुंजन,
करुणा से भारी अन्तर
खो देना जीवन-कम्पन। —*गुंजन*, पृ० २०

इसकी भाषा सरलता, भावना और सरसता से विभूषित है। अब तक मैंने 'गुंजन' की सामान्य भाषा की विवेचना की। अब यह देखना है कि भाषा की शक्ति और शुद्धि की दृष्टि से इसकी भाषा का रूप क्या है।

'गुंजन' की भाषा की शक्ति—पंत की भाषा में ओज नहीं, गतिमय शक्ति है। ओज मस्तिष्क का गुण है और शक्ति आत्मा का शृंगार। इस दृष्टि से पंत की भाषा ओजस्विनी न होकर, शक्तिशालिनी है। आत्मा की समस्त विभूतियों का भार सम्हालने में इनकी भाषा समर्थ है। कवि ने स्वयं लिखा है कि 'कविता परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।' इनकी भाषा भी उनकी हृत्तन्त्री की झंकार है। इसीलिये 'गुंजन' में भाषा का साज-सँवार उतना नहीं है जितना उसकी स्वाभाविकता। अपने पिछले लेख 'गुंजन' की काव्य-कला में मैं कह चुका हूँ कि पंत का शब्द-चयन अद्भुत है। उनका शब्द-भांडार भी सब तरह के शब्दों से भरा-पुरा है। उनकी भाषा में व्यंजना और ध्वनि की प्रचुरता है। 'गुंजन' में संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। लेकिन इन तत्सम शब्दों में कोमलता अधिक है। पंत अपनी भाषा को स्वाभाविक रूप देने के लिये कभी-कभी फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग कर देते हैं। लेकिन 'गुंजन' में इस प्रकार के शब्दों का अभाव ही है। भाषा को कोमल बनाने के लिये कवि ने कहीं-कहीं ब्रजभाषा के कुछेक शब्दों का प्रयोग भी किया है—

आज छाया चहुँ-दिशि चुपचाप —पृ० ४६

बंगला और अंग्रेजी से प्रत्यक्ष संबंध रखने के कारण पंत की भाषा पर बंगला और अंग्रेजी के शब्दों तथा वाक्य-खंडों का प्रभाव पाया जाता है। लेकिन चूँकि 'गुंजन' कवि की एक प्रौढ़ कृति है इसलिये इसमें कवि ने इस प्रभाव से अपने को दूर ही रखा है। संक्षेप में, हम कहेंगे कि 'गुंजन' की भाषा में उन्हीं शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है जो संस्कृत के कोमल तत्सम शब्द हैं, जिनके समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। फिर भी, कुछ ऐसे शब्द अवश्य आगये हैं जो अप्रचलित हैं—उदाहरणार्थ, वपुमान, तन्वि मृदूर्मिल, कौरक, श्लथ, व्रतति-प्रतति, तनु-तनिमा आदि। लेकिन ऐसे शब्द कम ही आये हैं। सामूहिक रूप से यह मानना पड़ता है कि 'गुंजन' की भाषा कोमल, सरस और प्रांजल है। संस्कृत के तत्सम-शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग होने पर भी भाषा क्लिष्ट नहीं हो पायी है, यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता है।

'गुंजन' की भाषा की शक्ति चित्रांकन में है। कुछ शब्दों के योग से एक सजीव चित्र उपस्थित कर देने में पंत की भाषा अद्भुत क्षमता रखती है। 'उदाहरणार्थ'

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रांत। —पृ० ८४

'नीरव संध्या' से वातावरण की स्तब्धता का चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। यह कवि की भाषा की मूर्तिविधायिनी शक्ति है। पंत की भाषा में इतनी अपूर्व क्षमता है कि उनका 'एक शब्द' भी मूर्तचित्र प्रस्तुत करने की शक्ति रखता है —

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भू-तल !

इन पंक्तियों का एक-एक शब्द अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है और वह अपना गुण व्यक्त कर रहा है।

पंत की भाषा की बहुत बड़ी विशेषता इस बात में है कि वह हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान की अनुभूति को प्रखर बनाती है। किसी भी बाह्य-दृश्य का ज्ञान हम नेत्र, कर्ण और नासा से करते हैं। वसन्त की सुषमा का ऐन्द्रिक ज्ञान कराने में कवि की भाषा चित्र-ग्राहिणी शक्ति का परिचय देती है। 'गुंजन' के प्रथम गीत में हम अपनी नम्र आँखों से बसन्त की सुषमा को देखते हैं, अपने कानों से भौंरों का गुंजन सुनते हैं और अपनी नाक से पुष्प के सौरभमय पराग की सुगंध लेते हैं—

वन के विटपों की डाल-डाल
कोमल कलियों से लाल-लाल
फैली नव मधु की रूप-ज्वाल, —पृ० १०

'नौका-विहार' में कवि की भाषा-शक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी है। इसमें उसकी शक्तिशालिनी भाषा के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। उसने कुछ शब्दों के प्रयोग से नाद-ध्वनि की सफल योजना की है—निम्न लिखित पंक्तियों में नौका के तैरने की ध्वनि स्पष्ट सुनायी पड़ रही है—

मृदु मंद मंद मंथर मंथर
लघु तरणि हँसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर। —पृ० १०२

संक्षेप में, यह कहा जायगा कि पंत की भाषा चित्रमयी भाषा है। उसमें भाषा की लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता अपूर्व है। 'आँसू की नवरी माला' में लाक्षणिक वैचित्र्य है। इसका लाक्षणिक अर्थ होगा—दुःख के कारण अत्यधिक रोना। इसी तरह 'मेरे मानस के स्पन्दन' का लाक्षणिक अर्थ होगा—हृदय को आनन्द प्रदान करना। 'प्रणय हँसिनी' का लाक्षणिक अर्थ होगा उज्ज्वल, पवित्र आदि।

'गुंजन' की भाषा की शुद्धि (व्याकरण) पंत की भाषा का अपना स्वतंत्र व्याकरण है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' में उन्होंने, विशेषतः

लिंग के बारे में, विस्तारपूर्वक लिखा है। 'गुंजन, में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे, 'प्रभात', 'प्रात', 'सौरभ' आदि जिन पर विद्वानों के दो मत हैं। पंत का कहना है कि "जो शब्द केवल आकारान-इकारान्त के अनुसार ही स्त्रीलिंग अथवा पुलिंग हो गए हैं और जिनमें लिंग का अर्थ से सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित हो जाती है।" तात्पर्य यह कि कवि अर्थ के अनुसार किसी शब्द को स्त्रीलिंग या पुलिंग मान लेता है। 'गर्जन' शब्द को कहीं कवि ने पुलिंग माना है और कहीं स्त्रीलिंग—

करुणार्द्र विश्व की गर्जन,

(पृ० २२)

इसी तरह 'सौरभ' को कवि ने स्त्रीलिंग के अन्तर्गत रखा है—

अपने उर की सौरभ से,

(पृ० ३१)

'प्रात' भी कवि की दृष्टि में स्त्रीलिंग है—'कुन्द-कलियों की कोमल-प्रात।'

पंत की भाषा का वास्तविक सौन्दर्य उनकी अलंकार-योजना में है। पाश्चात्य और भारतीय अलंकारों ने उनकी भाषा का वैभवपूर्ण शृंगार किया है, जिस पर मैं विचार कर चुका हूँ।

'सुन्दरम्' के कवि पंत ने अपनी भाषा को भी 'अकेली सुन्दरता कल्याणि' का अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया है।

परिशिष्ट १

'गुञ्जन': शब्दार्थ और टिप्पणी

गुञ्जन—भौरों का गुनगुन करना ; डॉ० नागेन्द्र ने 'गुंजन' के पहले-गीत-'वन-'वन उपवन' की महत्ता बतलाते हुये अपनी पुस्तक 'सुमित्रा नन्दन पंत' (पृ० १२२) में लिखा है: 'पहले गीत में ही आत्मा गूँज उठी है। मधुऋतु के आगमन के साथ ही वन-वन उपवन में नववस्यक अलियों का गुंजन छा गया। कवि-प्राण भी जीवन-मधु के संचय को उन्मन होकर गुंजन करने लगा। इस कविता की शब्द-योजना इतनी विशद है कि इसको पढ़ने पर गुञ्जन की ध्वनि सुनाई देने लगती है। युग-प्रवर्त्तक कवि नववय के अलियों (कवियों) का दिगन्त व्यापी गुंजन सुनकर आह्लाद से भर जाता है।'

उन्मन—व्याकुल, चंचल; उन्मन गुञ्जन—यह लाक्षिणिक प्रयोग है। गुंजन उन्मन नहीं हो सकता, गुंजन करने वाला जीव भले ही उन्मन हो। 'उन्मन-गुञ्जन' का अर्थ विशेषण-विशेष्य के आधार पर लक्षणा द्वारा उन्मन भौरों का गुंजन लिया जायगा। उसको अंग्रेजी में Transferred epithet (विशेष-विपर्यय) कहते हैं। **नव-वय के अलियों**—१ नये भौरों का दल, २ हिन्दी के नये उदीयमान कवि गण (छायावादी कवि); **रूपहले**—रूपे के रंग का; **आम्र-बौर-आम** की मंजरी, फूल ; **ताम्र**—ताँबा ; **रे गन्ध-अंध**—यह भी लाक्षणिक प्रयोग है। अर्थ होगा: गंध की तीव्रता के कारण बेसुध, अर्थात् परिणाम देखने में असमर्थ। यहाँ पर सादृश्य-संबंध से लक्षणा हुई ; **ठौर-ठौर, जगह-जगह; चिर-सदैव, मधु के वन**, वन में बसन्त के आ जाने से चारों ओर मनोहरता, मादकता और मधुरिमा छा गयी है, इसलिये कवि ने वन

को 'मधु का वन' कहा है। विटपों—वृक्षों; नव-मधु—नयी मधुरिमा, नयी मादकता ; रूप-ज्वाल—चतुर्दिक भिन्न-भिन्न प्रकार के उजले और रंगीन फूल खिले हैं, जिनसे ऐसा मालूम होता है कि सब जगह सौन्दर्य का प्रकाश' फैला हुआ है, मुकुलों—फूलों।; मदिर-वास—मादक सुगंधी, हृदय की मधुर अनुभूति, प्रेम की पीर ; सौरभ—सुगंध, आम की मंजरी की सुगन्ध; मलय-श्वास, हवा का झोंका ; मधु-संचय—मधु का संग्रह। अंतिम पद (Stanza) में कवि ने 'अप्रस्तुत बसन्त और भौरों के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक नव-जागरण की व्यंजना की गयी है।' (प्रो० शिवनन्दन प्रसाद)।

× × ×

गीत १—(पृ० ११) इस गीत के बारे में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है। 'यह बड़ी ऊँची कविता है। इसमें कवि के व्यापक भाव का अनुभव होता है। वह विश्व-वेदना में तपकर और जीवन की ज्वाला में जल कर अकलुष और अधिक उज्ज्वल बनाना चाहता है, जिससे कि अपने तप्त-स्वर्ण से वह जीवन की पूर्णतामूर्ति गढ़ कर संसार में अपनापन स्थापित कर सके। यहाँ कवि के भावों में परम प्रौढ़ता है।'

विश्व-वेदना—संसार के दुःख तथा परिताप ; प्रतिपल-प्रतिक्षण सदैव; अकलुष—निष्पाप, निर्मल; विधुर—स्त्री हीन पुरुष (Widower), विकल; विधुर-मन—कवि ने मन को विधुर इसलिये कहा है कि वर्तमान विश्व ऋद्धि वादी हो गया है, उसके मन की पत्नी कोमलता तथा सहृदयता की मृत्यु हो गयी है, इसीसे मन आज इतना विकल और विह्वल है। अपने सजल-स्वर्ण से पावन—आग में सोने को तपाने से वह निर्मल और पवित्र हो जाता है, आज मन को विश्व-वेदना की अग्नि में तपाकर सजल और सदय बनाने की आवश्यकता है। अपनापन—विश्व के साथ आत्मीय संबंध रखना; आतुर-मन—चंचल मन; तेरी मधुर-मुक्ति ही बन्धन—जो मुक्ति संसार से विरक्त तथा विमुख

होकर प्राप्त हो वह कवि को स्वीकार नहीं है। वे उस तरह की मुक्ति की कामना नहीं करते जिस तरह प्राचीन काल के ऋषि-मुनि चाहते थे। जीवन की मधुर-मुक्ति संसार के बन्धन को स्वीकार करने में है। मन का निर्द्वन्द्व हो जाना मन की निष्क्रियता है, मुक्ति नहीं। पंत बंधन को ही मुक्ति कहते हैं। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य जीवन और जगत् के प्रति विरागी होना नहीं, अनुरागी होना है। **गन्ध हीन तू गंध-युक्त बन**—पहली पंक्ति के भावों की व्याख्या इस दूसरी पंक्ति में की गई है। पंत मन को विरज (गन्ध हीन) नहीं करना चाहते, वे चाहते हैं उसे रजयुक्त बनाना। फूल का विशेष गुण उसकी पंखुरियों में न होकर उसके सौरभ में है; इसी तरह मन का प्रधान गुण सद्गुणों को अपनाने में है, निर्गुण होने में नहीं। प्राचीन संतों ने मन को निर्गुण-निर्द्वन्द्व और निरुपाधि युक्त बनाने की चेष्टा की थी, लेकिन इसके विपरीत पन्त अपने मन को स्नेहार्द्र बनाना चाहते हैं, उसको अच्छे-अच्छे गुणों से भरना चाहते हैं। **गंधहीन**—विरज, हृदयहीन, सद्गुणों का अभाव, बुद्धिवादी; **गन्ध-युक्त**—रज-युक्त, सहृदय, सद्गुणों से पूर्व। **निजअरूप**—भाव की शून्यता; **भर स्वरूप**—साकारता; **मूर्तिमान**—साकार; **गल रे गल निष्ठुर मन**—विश्व-वेदना की अग्नि में कठोर मन को तपाकर, गला कर निर्मल और सदय बनाने की आवश्यकता है। पंत को ब्रह्म में आत्मसात करने की कामना नहीं है। वे मन के सात्विक भावों को विश्व-कल्याण के लिये जगाना चाहते हैं।

नोट—इस गीत का लक्ष्य करते हुये पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'पल्लव के उपरान्त 'गुंजन' में हम पन्त जी को जगत् और जीवन के प्रकृत क्षेत्र के भीतर और बढ़ते हुये पाते हैं, यद्यपि प्रत्यक्ष बोध से अतृप्त होकर कल्पना की रुचिरता से तृप्त होने और बुद्धि-व्यापार से क्लान्त होकर रहस्य की छाया में विश्राम करने की प्रवृत्ति भी साथ-साथ बनी हुई है।' 'निराला' जी ने अपनी पुस्तक 'प्रबन्ध-

पद्म' में इस गीत के अंतिम पद (Stanga) पर रवि बाबू के एक गीत की छाया देखी है—

> वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय,
> असंख्य बंधन माझे महानन्द मय
> लभिव मुक्तिर स्वाद ।
>
> —*रवि बाबू,*

'यशोधरा' में कविवर गुप्त जी ने इस गीत के भाव को इस तरह रखा है—

> भव भावे मुझको और उसे मैं भाऊँ ।
> कह मुक्ति भला किस लिये तुझे मैं पाऊँ ।
>
> —*गुप्तजी,*
>
> × × ×
>
> निज बंधन को संबंध सयत्न बनाऊँ ।
>
> —*गुप्तजी*

गीत २—यह गीत पंत की रहस्य-भावना का एक ज्वलंत उदाहरण है । इसमें जड़-चेतन के संबंध में कवि की जिज्ञासा जाग पड़ी है । मनन और चिन्तन के पूर्व जिज्ञासा होती है । प्रबल जिज्ञासा ही ज्ञान का मूल है । कवि जिज्ञासा करता है कि संसार में जो इतनी हलचल है, उसका मूल कारण क्या है ? उसका सूत्रधार कौन है ? उसका कारण क्या है ? येही भाव विविध रूपों द्वारा—सरोवर, वीणा और मनुष्य—इस गीत में व्यक्त हुये हैं । विश्व-वैचित्र्य को देखकर उसकी परिचायिका शक्ति की जिज्ञासा कवि को होती है ।

शान्त—निस्तब्ध, लहरों की हल चल का अभाव; **सरोवर**—तालाब; **सोये वीणा**—निस्पन्द वीणा के तार ; **भर-भर**-वीणा के तारों की मधुर ध्वनि; **अंकुर**—कोंपल, कली ; **फड़काकर**—पल्लवित होना, फैलना; **दल-पर-दल**—डालियों का निकलना; **पिघल-पिघलगल**—आँसुओं के

निरंतर झरने से मन कोमल और सदय हो जाता है ; **उत्कंठातुर**—अत्यधिक उत्सुक, जिज्ञासु; **जगती**—संसार ; **अखिल चराचर, सारी सृष्टि; मौन-मुग्ध**—नियंत्रित, संचालित ।

गीत ३—सन् १९३२ की कविताएँ अधिकतर जीवन-चिन्तन से संबंध रखती हैं । इनमें क्रमशः विस्मय-भावना, फिर मनन और ज्ञान का विकास और सुख-दुःख का परिज्ञान, अंत में जीवन के प्रति अविरोध आकर्षण और तज्जन्य शांति मिली है ।

आते कैसे.....सूने पल—कवि विचार करता है कि जीवन में सूनी, नीरस घड़ियाँ क्यों आती हैं ; **जब लगना सब...नभ मंडल**—समस्त जड़-चेतन प्रकृति (सृष्टि) विशृंखल (टूटी-फूटी, छिन्न-भिन्न) मालूम पड़ती है; **खो देती उर.....मधुर जीवन की**—मानव हृदय, जिसे सदैव वीणा के समान मधुर भावनाओं की झंकार से भरा रहना चाहिये, हृदयहीन, रस हीन और निस्पंद क्यों पड़ जाता है ; **बस साँसों .. ..सूनेपन की**—मनुष्य-जीवन एकाकी हो जाता है, वीणा के निस्पंद तारों की तरह वह भी शांत हो जाता है । अतीत की स्मृतियाँ ही उसके प्राण में अँटकी रह जाती हैं ।

बह जाता बहने का सुख...जाता जीवन से जीवन—जीवन में विशृंखलता, असामंजस्य और अव्यवस्था का मूल कारण 'अति-इच्छा', मानव की असंयत और अमर्यादित अभिलाषाएँ हैं । उसके स्वभाव की यह बहुत बड़ी दुर्बलता है कि वह किसी से दबकर, घटकर रहना नहीं चाहता । वह प्रतियोगिता की दौड़ में भाग लेना चाहता है । जिस तरह सरिता की लहरें एक दूसरों को धक्का देते हुये तट को छूने के लिये बेचैन रहती हैं, उसी तरह मनुष्य भी अपनी उच्छृंखल भावनाओं को सदैव प्रश्रय देता रहता है । दुष्परिणाम यह होता है कि आपस में संघर्ष और अवरोध पैदा होते हैं । जीवन का संगीत जाता रहता है । जीवन की धारा तेजी से बहना चाहती है लेकिन अति इच्छा के होने से

उसकी प्रकृत गति कभी-कभी छिन्न-भिन्न और कुण्ठित हो जाती है। संसार में दुःख का यही मूल कारण है।

आत्मा है सरिता के भी—जीवन की सरिता में भी आत्मा का संगीतात्मक स्वर है इसकी भी अपनी सूझ-बूझ है ; **सृति**—मार्ग ; **आत्मा है चिर भरिता**—पहले पद की भावधारा इसमें आकर बदल गई है। कवि कहता है कि जीवन की सरिता में गति तो हो, लेकिन वह मर्यादित हो। सरिता का अस्तित्त्व उसकी गतिशीलता में ही सुरक्षित है। श्री शांति प्रिय द्विवेदी ने इस पद की व्याख्या इस तरह की है—'गांधी की आत्मा, रवीन्द्र की रसात्मकता और मार्क्स की प्रगति-शीलता का पन्त के कवि-मानस में समन्वय पाया जाता है। इनमें विरोधाभास नहीं, बल्कि एक ही जीवन-सरिता की छंदोबद्धता है। जीवन के भाव-सागर में 'लहर' है, यह रवीन्द्र के छायावाद की रसात्मकता है; उसमें 'सृति' (मार्ग) है, यह गांधीवाद की उन्मुक्त आत्मा है ; उसमें 'गति' है, यह मार्क्स की प्रगति शीलता है।' इन चार पंक्तियों में पंत ने अपने जीवन-दर्शन का निचोड़ उपस्थित किया हैं।

जीवन—जल; **जल भार मुखर कर देना**—सागर में गंभीर गर्जन भरना; **कुसुमित-पुलिनों**—फूलों से आच्छादित किनारे; **क्रीड़ा**—शोभा; **व्रीड़ा**—लज्जा। **क्या यह जीवन सागर तनिक न लेना ?**—प्रो० शिव नंदन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'पंत का गुंजन' में इन पंक्तियों की व्याख्या इस तरह की है—'जीवन (जिसका अर्थ जल भी है) की धारा का उद्देश्य गंभीर गर्जन करते हुए सागर में विलीन हो जाना ही नहीं है, हरे भरे किनारों की शोभा का आनन्द लेते चलना भी है।'

सागर-संगम—एक स्थान पर दो नदियों के मिलन-बिन्दु को 'संगम' कहते हैं। यहाँ अर्थ है सागर के गर्भ में नदियों का विलीन हो जाना। इस गीत का अंतिम पद पंत के जीवन-दर्शन की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। कवि कहता है कि सागर में नदियों के अन्तर्धान हो जाने में—मोक्ष-पद

प्राप्ति में—सुख और आनन्द अवश्य है, लेकिन जीवन की स्वाभाविक गति में बहना कम सुखकर नहीं है ! संसार के वास्तविक आनन्द व प्राप्ति तभी हो सकती है जब हम जीवन के प्रत्येक क्षण की संगी माधुरी का, उसके सौन्दर्य का, उसके रस का संयत होकर समुचित उप योग करें। कवि का यही अमर जीवन-संदेश है। शुक्ल जी ने इस गी का सारांश बतलाते हुये लिखा है—'कवि जीवन का उद्देश्य बतलात है कि चारों ओर खिले हुये जगत् की सुषमा से अपने हृदय क सम्पन्न करना।'

गीत—४—सुख-दुख पंत के काव्य का प्रिय विषय रहा है। 'सुमित्रा नन्दन पंत और गुंजन' के लेखक श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने इस गीत का सारांश इन शब्दों में लिखा है—'कवि ने जीवन की सार्थकत के विषय में चिन्तन किया है, उसी का परिणाम इस कविता की सरल और आडम्बरहीन पंक्तियों में है। कवि का मत है कि मानव-जीवन की पूर्णता और सार्थकता इसी में है कि उसका जीवन सुख और दुख दोनों का समान क्रीड़ा-क्षेत्र रहे, किसी की भी अति न हो। सतत व्याप्त होने वाला दुख मानव-जीवन को रस-रहित बना देता है, उसी प्रका निरन्तर सुख भी मानव की मानवता का अपहरण कर लेता है, उसे अधूरा बना देता है।'

चिर-सुख—सदा व्याप्त रहने वाला सुख; खोले जीवन अपना मुख —जीवन का विकास हो। इस गीत का केन्द्रीय भाव इसके पहले छंद में प्रकट कर दिया गया है।

परिपूरण—पूर्ण; घन—बादल; शशि—चाँद।

अविरत-दुःख—निरन्तर दुख; उत्पीड़न—कष्टकर; निशादिवा —रात-दिन।

हास-अश्रु मय—हँसी और आँसू; आनन—मुखमंडल। अंग्रेज कवि

लॉर्ड बायरन (Byron) ने इस गीत के मुख्य भाव को एक वाक्य में व्यक्त करते हुये लिखा है कि 'Man, thou art pendulum betwixt a smile and tear.'

गीत-५—इस मधुर कविता में व्यक्ति-हृदय में उठने वाली भावनाओं का वर्णन किया गया है। कवि कहता है कि मैंने संसार के अनेक मानव-प्राणियों के हृदय का अन्वेषण और अध्ययन किया, उनमें मुझे सुख और दुःख दोनों ही समान भाव से व्याप्त मिले। यह सुख-दुख का जोड़ा मानव-जीवन में अनिवार्य है। यह भाव कवि ने बहुत ही सुन्दर रूपक द्वारा व्यक्त किया है। संसार एक उपवन है जिसमें फूल, पत्ती, अंकुर तथा काँटे सभी कुछ हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने हृदय रूपी फूल रखने के लिये डाली लेकर निकलता है और उस उपवन से सुख रूपी सुन्दर पुष्प तथा दुख रूपी काँटे इकट्ठे करता है।' (ह० नि० दि०) इस गीत में मानव जीवन को एक उपवन का रूपक दिया गया है और सुख-दुख के लिये फूल और शूल के उपमान आये हैं।

छवि-उपवन—सौन्दर्य रूपी उपवन; किसलय—फूल; शूल—काँटे। दुराव—छिपाव; पिक—कोयल; फुल्ल-कुसुम—खिले कुसुल के फूल; मुकुल-म्लान—मुरझायी कलियाँ; तरुण-फूल—ताजे फूल; करुण शूल—विरह रूपी काँटे।

गीत ६—गोस्वामी तुलसीदास ने संसार की तुलना सागर से करते हुए समुद्र के अमृत और विष के समान संसार को गुण और दोषमय माना है, इसी प्रकार इस गीत में संसार को मानव-जीवन के परिपूर्ण समुद्र से उपमा दी है। समुद्र के अमृत और विष की तरह इस मानव-जीनव से परिपूर्ण समुद्र में सुख और दुख का जोड़ा है। यह समझ कर हमें जीवन की प्रत्येक लहर से अधिक-से-अधिक आनन्द लेने की चेष्टा करनी चाहिये। साथ ही एक भाव और इस कविता में निहित है। सागर ऊपर से देखने में बहुत प्रफुल्लित शात होता है,

वही यदि भीतर से देखा जाय तो विषादपूर्ण दिखाई देगा। संसार में भी मानव-जीवन ऊपर से जितना हर्षपूर्ण दिखाई देता है, भीतर से वह उतना ही विषादपूर्ण है।

है हास स्वर्ण किरणों का—समुद्र की प्रत्येक लहर पर आनन्द की सुनहली किरणें नाचती हुई दिखाई देती हैं, अर्थात् सागर ऊपर से देखने से उल्लासपूर्ण दिखाई देता है; **अन्तस्तल**—हृदय; **अवसाद**—विषाद, दुख; **मूक जीवन की लहर लहर से...बूड़-बूड़ रे'''मानिक**—इस गीत के अंतिम छंद में कवि ने 'नाविक' और 'भाविक' शब्दों का उपयोग बहुत ही सार्थक है। जब हम संसार-सागर के नाविक के रूप में जीवन-यात्रा करें तब हमें उचित है कि हम अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु से ममता रखकर, उस जीवन-सागर की प्रत्येक लहर से हँसते-खेलते जीवन-यापन करें, परन्तु, अपने हृदय की भावनाओं को संसार में व्याप्त विषाद की ओर भी आकृष्ट होते रहें, उससे सहानुभूति रखें। इस प्रकार संसार-यात्रा को हंस-खेल कर तो बिताएँ परन्तु साथ ही समवेदना से हीन भी न बनें।' (ह० नि० द्वि) **भाविक**—मर्मज्ञ, जानने वाला।

गीत ७—इस गीत में दार्शनिक चिन्तन की अधिकता है, कवित्व कम। इसमें कवि ने जीवन के नित्य स्वरूप पर प्रकाश डाला है, जिसमें सुख और दुःख दोनों की प्रतिष्ठा है पर कुछ ऐसी भी अनुभूतियाँ हैं जो इनसे परे हैं। इस गीत का अंतिम छंद इस गीत का निष्कर्ष है। कवि अन्य छंदों में सुख और दुख के अस्तित्व की महत्ता को प्रकट कर चुका है, साथ ही उनमें अधिक लिप्त न होने की बात भी कह चुका है। अब वह कहता है कि मानव-जीवन में सुख या दुःख कोई प्रधान वस्तु नहीं है—वे दोनों क्षणिक हैं; नित्य और चिरस्थायी तो जीवन है; अतः जीवन को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है।

जीवन पूर्ण तभी हो सकेगा जब वह सुख और दुःख से उदासीन तथा अलिप्त होगा। ऐसा जीवन ही हमारे हृदय को सहारा दे सकता है। इस कविता में कवि ने सुख और दुःख दोनों के अस्तित्व की आवश्यकता महसूस की है। साथ ही, मनुष्य के हृदय, आत्मा और जीवन के पारस्परिक सबंध पर भी विचार व्यक्त किये गये हैं। दुख आत्मा का पोषक है और आत्मा हृदय को प्रकाश देने वाली है। संसार का सुख-दुख अस्थायी है और जीवन चिरस्थायी है। साथ ही सुख-दुख को समान रूप से अपने भीतर निमग्न करने वाला जीवन ही हृदय की उत्फुल्लता तथा विश्वास प्रदान कर सकता है।' (ह० नि० द्वि) **अभिवादन**—वंदना, स्तुति। **अपने मधु में·····जीवन कम्पन**—शहद में पंखों को लिपटा कर भौंरा आसानी से गुंजन नहीं कर सकता, आनन्द में अत्यधिक लिप्त रहने से जीवन के वास्तविक आनंद से वह अर्थात् वंचित रह जाता है, साथ ही अत्यधिक दुःख से व्यथित व्यक्ति का जीवन भी निस्पंद और निष्प्राण हो जाता है, जीवन की वीणा के तार ढीले पड़ जाते हैं। **जीवन-कम्पन**—जीवन-वीणा का स्पंदन; **पुलिन**—किनारा; **दुःख के तम को···से वह मन**—हमारी आत्मा दुःख रूपी अंधकार को खाकर अपने प्रकाश से मानव-मन को आलोकित करती है, दुख का अंधकार सह लेने पर ही हमें प्रकाश की प्राप्ति होती है, मानव-मन में शुभभावों का उदय होता है। **अवलम्बन**—आश्रय, संबल। **दुःख-सुख से ऊपरमन का**—दुःख-सुख क्षणिक है, मन की महत्ता इनसे बढ़ कर है।

गीत—८—इस सुन्दर कविता में सुख-दुःख की दार्शनिक व्याख्या की गयी है। कवि कहता है कि सम्पूर्ण सृष्टि इस बात की साक्षी दे रही है कि जीवन सुख और दुःख की क्रीड़ा भूमि है तथा हमें दुःख को प्रसन्नतापूर्वक अपना लेना चाहिये। प्रकृति का चिरन्तन रूप मनुष्य को इसी तरह का पाठ पढ़ाता है। फूलों का जीवन यद्यपि छोटा होता है तथापि वे सदैव हँसते-ही रहते हैं। लेकिन, इसके विपरीत, हम

लोगों का जीवन सदैव व्यथा से पीड़ित रहता है। प्रकृति और मानव में यही भारी विषमता है। **कुसुमों**—फूलों; **जीवन का पल**—जीवन का प्रत्येक क्षण; **म्लान**—मुरझाया; **मलिन अधरों**—सूखे-साखे ओठ; **स्मित**—धीमी हँसी। इस पहले अवतरण में Pathetic Fallacy है जिसमें प्रकृति और मानव के जीवन के बीच वैषम्य दिखलाया गया है। प्रकृति अपनी दिशा में है और मानव उसकी प्रतिकूल दशा में बह रहा है। **सूनी-डाली**—पत्र विहीन डालें, एकान्त डाली। तीसरे अवतरण में कवि ने मानव-जीवन को एक वृक्ष की डाली का रूपक दिया है। जीवन में दुःख की अधिकता होने पर भी सुख की कमी नहीं है। चतुर्थ पद—जिस प्रकार डाली के काँटे पल्लवों और कुसुमों का कुछ भी नहीं बिगाड़ते उसी तरह हमारे दुखसुख में बाधक नहीं होता। जैसे सोना आग में तपाने से अधिक पवित्र और उज्ज्वल होता है, उसी तरह मनुष्य की अन्तरात्मा दुख की आँच से तपकर पवित्र हो जाती है। अंतिम पद—वन की आग (दावाग्नि) से जंगल नष्ट नहीं होता, फिर से नये पल्लव उग आते हैं। **करुणार्द्र विश्व की गर्जन··· जीवन-कण**—जिस तरह गर्मी के भयानक ताप को वेदना से व्यथित होकर संसार नवीन जीवन का संचार करता है, आकाश में काले बादल पानी बरसाने के लिये ही गर्जन-तर्जन करते हैं; उसी तरह दुःख आरंभ में कष्टदायक भले ही मालूम हो लेकिन अंत में वह कल्याणकर ही होता है।

टिप्पणी—इस कविता की अंतिम पंक्तियों में एक 'गर्जन' शब्द आया है जिसका व्यवहार स्त्रीलिंग में हुआ है, जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है लेकिन कवि ने अपने रुचि-स्वातंत्र्य के अनुसार इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है क्योंकि संभवतः 'करुणार्द्र विश्व' के रुदन में गर्जन नहीं हो सकता और यदि होगा भी तो कठोर और भयंकर नहीं होगा।

गीत—१—इस कविता का विषय सुख-दुःख है। इसमें कवि ने 'अति इच्छा' और 'साधना' दोनों को वर्जित समझा है। दुःख का मूल कारण हमारी 'अति इच्छा' ही है। कामना और साधना के बीच सदैव द्वन्द्व चलता रहता है। 'सम इच्छा' ही जीवन को पूर्ण बना सकती है। बुद्ध के इस मध्यम-मार्ग में ही जीवन और जगत का कल्याण है।

तीसरा पद (Stanza)—**पुलकों से लद जाता तन**—इच्छा के प्रभाव से सारा शरीर आनन्द (पुलक) से विह्वल हो जाता है। **तत्क्षण सचेत करता मन**—मन की चेतना इच्छा के मद को भंग करते हुये कहती है कि कामना की प्रवृत्ति (इच्छा) अच्छी नहीं है। साधना जीवन का चरम सत्य है, कामना भ्रम है। इस पद में कवि ने आत्म-नियंत्रण करने पर जोर दिया है।

पाँचवाँ—**पद**—**फिरतीं नीरव नयनों में·····ज्यों घिर-घिर उठते हों घन**—इसमें कवि ने जगत की इच्छाओं की निरर्थकता सिद्ध की है। हमारी सूनी आँखों में तरह-तरह की भौतिक छवियाँ (सुन्दरताएँ) चक्कर लगाया करती हैं, वे हमारे मन और प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करती रहती हैं, प्राचीन संतों ने इसी को 'माया' कहा था; हम संसार की नाशवान सुन्दर वस्तुओं के पीछे पड़े रहते हैं लेकिन ये सभी भ्रम हैं। ये उसी प्रकार नष्ट-विनष्ट तथा विलीन होने वाली प्रतिमाएँ हैं जिस तरह आकाश में घिरने वाले बादल विलीन हो जाते हैं। कवि भौतिक छवि से दूर भागता है क्योंकि इससे अति-इच्छा का जन्म होता है।

छठा पद—अति इच्छा मिथ्या और भ्रम है। यह साधना में बाधा उपस्थित करती है। अतः कामना जीवन की वास्तविक बाधा है। सुख और दुःख दोनों सत्य हैं। व्यक्ति किसी भी एक की उपेक्षा नहीं कर

सकता इसलिये उचित तो यह होगा कि हम 'सम-इच्छा' सयत इच्छा के पक्षपाती हों। जीवन में बीच का रास्ता सुखकर होता है।

टिप्पणी—श्रीहरिनिवास द्विवेदी लिखते हैं—"ये आधी-अति इच्छाए ..." उक्त पदका अर्थ कुछ विद्वान् यों करते हैं—आधी इच्छाएँ (जो मन में मलिन होकर विलीन हो जाती हैं, जिनकी पूर्ति का प्रयत्न हम नहीं करते और अति-इच्छाएँ (जिनकी पूर्ति माननीय प्रयत्नों द्वारा सम्भव नहीं)—दोनों ही जीवन की साधना में बाधक हैं। अतः हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि न तो अति-इच्छाएँ उत्पन्न हों और न आधी इच्छाएँ ही। इच्छाएँ संयमित होनी चाहिये।

गीत १०—इस कविता में कवि ने अपने आदर्श और जीवन-दर्शन को व्यक्त किया है। इसमें पंत की आत्मा की अभिव्यक्ति हुई है। कवि का मन उन्मन है। वह कुछ खोज रहा है। उसकी खोज ही उसकी कविता का विषय बन गई है। मनन और चिन्तन के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जगत की जड़ और चेतन वस्तुएँ मुझे प्रिय हैं। दोनों सुन्दर और अमर हैं। सृष्टि का नाश कभी नहीं होता। वर्तमान मनुष्य दु खी इसलिये है वह अपनी संकुचित इच्छाओं में आबद्ध है। कवि की आत्मा विश्व से सहानुभूति स्थापित करती है। वह यह मानता है कि जीवन में उच्च आदर्श सदैव अभीष्ट रहेंगे। मानव में देवत्व की झलक लाने वाली संस्कृति को और जीवन में आने वाले सुख तथा दुखों से वह प्रेम करता है। उसकी दृष्टि में वर्तमान मानव-जीवन अपूर्ण है। फिर भी, कवि को आशा, विश्वास, श्रद्धा और आस्तिकता में आस्था है। आज के अधूरे विश्व को 'नव-जीवन' चाहिये, इस नये युग की कल्पना में कवि व्यस्त है।

गीत ११—यह कविता 'गुंजन' की पहली कविता पूरक-सी जान पड़ती है। वही विचार-धारा, वही मधुर शब्दावलि और उल्लास इसमें

भी मौजूद है। इसमें नवयुवक के लिये वसन्त की सुषमा का रूपक बाँधा गया है। यहाँ वसन्त की सौंदर्य-श्री का भी वर्णन किया गया है और वर्तमान युग के प्रति भी कवि का आह्लाद व्यक्त हुआ है। **मधुमादक; नवसुषमा**—नयी भावना; **परिमल-धन**—सौरभ, सुवास कलियों के पक्ष में और सुन्दर विचार नवयुग के पक्ष में। **छवि-सौंदर्य; मुकुलित**—अधखिली कलियाँ; **पुलकित**—आह्लादमय; **सालससुख**—उद्वेग रहित सुख; **सौरभ**—पराग; **मलय-समीरण**—मानव-जीवन का प्रत्येक श्वास; दूसरे पद में पुलिंग शब्द 'सौरभ' का स्त्रीलिंग में प्रयोग किया गया है। यह कवि का रुचि-स्वातंत्र्य है। **मधुवन**—नवजीवन; **अभिनव**—नितान्त नवीन; **मधु-संचय**—जीवन के सुन्दर विचारों का संग्रह; **स्पन्दन**—गतिमान; **दल**—पत्रे; **प्राण का मधुकर**—शाश्वत आत्मा; **मधुरस**—आध्यात्मिक सत्य का आस्वादन।

गीत १२—इस कविता में पंत कहते हैं कि जीवन के प्रत्येक लघुतम क्षणों पर विश्वास करने से, अर्थात् उनकी सार्थकता और उपयोग को मानकर उनमें आनन्द लेने से ही जीवन सुखमय बनता है : इस प्रकार प्रतिक्षण में विश्वास रखने पर दुःख को भी हँसते-हँसते सहा जा सकता है। जीवन के प्रति उदासीनता मधुर ज्ञात भले ही हो, परन्तु उससे मानव हृदय का जो बन्धन होता है, वह कष्टकर है। (हरिहर निवास द्विवेदी. **सुन्दर विश्वास**—श्रद्धा, प्रेम आदि; **ज्यों सहज-सहज साँसों··· मृदुस्पन्दन** स्वाभाविक गति से चलने वाली साँसों पर हृदय की गति सन्तुलित रहती है। जिस तरह प्रत्येक साँस की गति का महत्व है, उसी तरह जीवन के छोटे-छोटे क्षणों पर विश्वास रखने की आवश्यकता है।

महिमा के विशद-जलधि में··· लघु अणु का गुरुतम साधन—विशद जलधि, महान् समुद्र; जिस तरह महान् समुद्र जल के छोटे-छोटे कणों से बना है, उसी तरह जगत का जीवन बना है। क्षुद्र वस्तुओं का महान् योग महान् वस्तुओं का निर्माण करता है। जीवन की लक्ष्य-प्राप्ति

के लिये निरन्तर प्रयास करने के अतिरिक्त अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को आनन्द दायक बनाना चाहिये। यही छोटे-छोटे क्षण हमारे जीवन का निर्माण करते हैं।

इस गीत में कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वर्तमान सभ्यता में बुद्धि-पक्ष की प्रधानता होने के कारण हृदय-पक्ष गौण हो गया है और श्रद्धा, प्रेम, विश्वास आदि का ह्रास होता जा रहा है। फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक अनातोले फ्रांस जैसे कुछ विवेकशील पुरुषों ने जिस हृदयवाद का आंदोलन उठाया था उसका आभास पंत की इन पंक्तियों में मिलता है। 'सुन्दर विश्वासों से ही बनता रे सुखमय जीवन' में अनातोले की छाया है।

इस गीत का अंतिम पद गीत संख्या १ के अन्तिम पद के समान-अर्थी हैं।

गीत १३—इस कविता में यह बतलाया गया है कि जीवन का क्रम विकास है और विकास की परिणति चरम सौंदर्य है: World is Progressive, and dynamic, not static जो लोग यह मानते हैं कि सृष्टि विनाश के पथ पर है, वे लोग भ्रम में हैं। भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक श्री अरविन्द के भी विचार हैं कि 'सुन्दर जीवन का क्रम रे।' इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि मानव-जीवन का क्रम सुन्दर है। कवि की दृष्टि में जीवन, जगत, मानव, जड़, चेतन सभी विकासावस्था में हैं। सभी उस चरम सौन्दर्य की झाँकी लेने के लिये उस ओर उन्मुख हैं।

गीत १४—इस कविता में गीत संख्या ३ और ७ के भावों का विस्तार किया गया है। पिछले गीतों में जीवन और जगत के प्रति कवि के हृदय में जिज्ञासा पैदा हुई थी। इसमें उसने उसका समाधान दिया है। सांसारिक जीवन सुखमय, सौन्दर्यमय और मधुमय है, इसका

प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण और सार्थक है। प्रातःकाल पक्षी उठकर इसी भाव का गीत गा-गाकर लोगों को सुनाता रहता है। अवलोक आँख आँसू की भर आतीं आँखें नीरव—आकाश के तारे निरन्तर अपनी 'अपलक आँखों से संसार का निरीक्षण करते रहते हैं। उनका अनुभव कहता है कि यह संसार वेदना से भरा हुआ है और उस वेदना को देखकर उनकी आँखों में भी समवेदना के आँसू छलछला आते हैं।' हँसमुख प्रसून—विकसित और खिले फूल; उर की सौरभ—मन की कोमल भावनाएँ। कूल विलोक न पावें—लक्ष्य रूपी किनारा न मिले। कँप-कँप हिलोर रह जाती···पा जाता आशय सारा—जीवन का लक्ष्य लय हो जाने में ही है। सरिता के बुद्बुद् जिसमें कोई भी महत्वाकांक्षा नहीं है, जो अपने क्षणभंगुर जीवन में दो पल हँसकर विलीन हो जाना ही अपना उद्देश्य मानते हैं, कभी निराश नहीं होते। पंत ने सूखे दर्शन में अपने प्राणों का मधुल उड़ेल दिया है। इन पंक्तियों में (डॉ० नगेन्द्र) जीवन का रहस्य उसमें लय हो जाने से ही जाना जा सकता है। इस कथन को कवित्वपूर्ण ढंग से कहा गया है। इसी भाव को कवि ने गीत संख्या ६ के अंतिम पद में इस प्रकार कहा है—

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़-बूड़ रे भाविक!

(पृ० १८)

टिप्पणी—"इस कविता के पहले छंद का 'खग' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है' यहाँ 'खग' से कवि का क्या तात्पर्य है, इसके लिये पृष्ठ १०५ देखना होगा। वहाँ कवि 'विहंगम' को दसवीं पंक्ति में 'गीत-खग' कहता है। ऐसा ही अर्थ इस कविता का है, यहाँ यह गायक-खग के

अर्थ में अर्थात् कवि के अर्थ में आया है। कवि यह गाता है कि जीवन सुन्दर, सुखमय, मंगलमय और मधुर है।" (ह० नि० द्वि) पंत का 'खग' बर्ड्सवर्थ के स्काइलार्क के समान ही गायक है।

गीत १६ (चाँदनी)—'गुंजन' में चाँदनी पर दो कविताएँ हैं। गीत संख्या ४१ में वर्णित चाँदनी की अपेक्षा यह कविता अधिक भाव-पूर्ण और चित्रोपम है। इसमें चाँदनी का रुग्ण-चित्र खींचा गया है। दूसरी कविता में चाँदनी का हर्षोत्फुल्ल उज्ज्वल चित्र अंकित किया गया है। यह कविता एक रूपक (Allegory) है जिसमें चाँदनी दुखी जीवन का प्रतीक मानी गयी है—वह तापसबाला के रूप में दिखलाई गई है। वह घोर दुःख की साधना में प्रवृत्त है, उसकी देह घुलती जा रही है। संसार को नव-जीवन प्रदान करने के लिये वह तपस्या कर रही है। यह निःसंदेह दूसरी कविता से उत्कृष्ट है।

पहला अवतरण—यहाँ चाँदनी रुग्णाबाला के रूप में अंकित की गई है। वह संसार की दुःख रूपी शय्या पर, आँसू की माला पहने, बैठी जाग रही है।

विवसना—वस्त्रविहीन। वह स्वर्ण-भोर को·····ठहरी पाने नवजीवन का वर—वर्तमान संसार की निराशा में भी यह चाँदनी-नारी प्रकाशपूर्ण नवयुग के आगमन की आशा लगाये बैठी है। स्वर्ण-भोर प्रफुल्ल प्रभात, जीवन की स्वर्णाशा। यह विश्व-जीवन रूपी तापस-बाला जीवन का संताप इसलिये भोग रही है कि अन्ततोगत्वा उसे नवीन जागृति और नवजीवन का वरदान मिलेगा ही।

गीत-१७ मानव—शुक्ल जी के शब्दों में 'इसमें कवि जीवन-सौंदर्य की नूतन-भावना का उदय अपने मन में करता है।' प्रकृति का कवि अब मानव का कवि हो गया है। वह उसकी मानवता पर मुग्ध हो गया है। जीवन का रहस्य उसमें लय हो जाने से ही जाना जा सकता है।

श्री हरिहर निवास द्विवेदी के शब्दों में 'यह कविता पिछली सारी कविताओं का चरम-विकास है।' कवि की दृष्टि में मानव सुख-दुख का सार है। संक्षेप में, इस कविता में कवि मानव की महानता का गान करता है। वर्तमान विश्व में जहाँ मानव का पारस्परिक संबन्ध ढीला पड़ गया है वहाँ कवि उसको श्रद्धा, प्रेम और विश्वास की दृष्टि से देखता है पंत का व्यक्तित्व वास्तव में महान् है। **मेरे विमुग्ध-नयनों की तुम कान्त-कली हो उज्ज्वल**—तुम्हारे रूप पर मोहित मेरे नेत्रों की तुम पुतली हो; **मुख के स्मिति की मृदु-रेखा करुणा के आँसू कोमल**—आनन्द की जो मुसकुराहट होती है उसकी मधुर रेखा तुम हो। इसके साथ ही, तुम करुणा के कोमल आँसुओं के कारण हो। **करुणा-किरणों-ओसकण; सुखमा के शिशु**—सौंदर्य के शिशु मानव है।

गीत १८—यह कविता पिछले गीतों से बिलकुल भिन्न है। यहाँ से पंत का प्रणय-गीत आरंभ होता है। इसमें एक अपना मादक वातावरण है। अपना मधुवन है। यौवन-प्रमत्त कवि को समस्त प्रकृति में प्रेयसी की मदिर छवि का दर्शन होता है और वह पागल होकर प्रत्येक लता-फूल-द्रुम आदि पर मँडराता फिरता है। इस कविता में कवि ने 'कली' को प्रतीक मानकर 'जीवन की क्षण-भंगुरता' और मृत्यु के प्रश्न पर विचार किया है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने इस गीत के संबंध में एक प्रश्न किया है—'क्या यह कविता प्रकृति के एक व्यापार का सुन्दर चित्र-मात्र है अथवा उसमें किसी ऐसी सुकुमारी की जीवन-कथा कही गई है जिसने अनेक प्रलोभनों में जकड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लिया है। हमें दूसरी बात ही ठीक ज्ञात होती है।" इस कविता में कवि स्वानुभूतियाँ हैं। 'ग्रंथि' का निराश प्रेम यहाँ संयमित होकर व्यक्त हो गया है। कवि ने अपनी प्रेयसी के बारे में जो कुछ कहा है उसको उसने अन्योक्ति अलंकार के आवरण में रखकर कहा है। 'कली' उसकी प्रेयसी की प्रतीक बन कर आई है। **चल-सरित पुलिन पर**—चंचल नदी के

किनारे; **विकसी**—विकसित हुई; **उर के सौरभ से सहज बसी**—वह कली (प्रेयसी) हृदय की मधुर भावनाओं से पूर्ण थी, आकांक्षाओं से पूर्ण थी; **सरला प्रातः ही तो विहँसी**—उसमें यौवन का प्रफुल्ल प्रात आ ही रही थी—चंचल जवानी आ ही रही थी; **सलिल**-जल। इस पहले छंद का प्रसंग 'पल्लव' में इस तरह मिल जाता है—

रंगीले, गीले फूलों से
अधखिले - भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित।

आई लहटी चुम्बन करने·····चंचल सुख से गई छली—'उस कली के झड़ने और बहने का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि अदम्य वासना रूपी लहर उसको चुम्बन करने, झूठे सुख रूपी फेन के मोतियों से उसका मुँह भरने आई। वह कली क्षणभंगुर सुख को सच्चा मोती समझकर उनसे छली जाकर पथ-भ्रष्ट हो गई।

है लेन देन ही जग जीवन·····गई निगली—"संसार का यह लेना-देना तो लगा ही रहता है परन्तु उस कली को उसे ध्यान में रखा चाहिये था कि अपनी स्वतंत्र एक पृथक् वस्तु है, उसे अपनी आत्मा की स्वतंत्रता सुरक्षित रखनी चाहिये थी, लेकिन वह तो अपनी आत्मा का धन—संयम—खोकर भ्रमित हो गई और लहरों द्वारा निगल ली गई।

इस गीत में कवि के व्यक्तित्व की एक स्पष्ट वेदना छिपी हुई है। इसलिये कवि के इस निराश-प्रेम की वेदना का रहस्य और उसका कारण; हम लोगों को मालूम नहीं है।

गीत-१६—'भावीपत्नी के प्रति—डॉ० नगेन्द्र इस कविता के बारे में लिखते हैं—"इसमें कवि ने अपनी प्रेयसी का भावचित्र दिया है। इसमें रूप और प्रणय के चित्र बहुत ही सुन्दर और सजीव हैं। साथ ही, कवि काल्पनिक प्रेयसी के शैशव से लेकर यौवन तक का विकास चित्रित करता हैं। इसमें कवि विश्व के समस्त सौन्दर्य को उसमें देखता है। यह कविता 'पल्लव'-सीरिज की ही कविता अधिक प्रतीत होती है—उसमें दोनों शैलियों का संयोग-स्थल मिलता है। यह काफी लंबी कविता है—उसके चित्र बड़े ही भावपूर्ण और सुन्दर हैं। प्रथम मिलन का चित्र अद्‌भुत् है। कवि की भावुक कल्पना अत्यन्त उत्तेजित हो उठती है और वह उस चित्र को अत्यन्त व्यापक बना देता है।...'भावी पत्नी के प्रति' में इसकी कला की मादकता मिल जातीं है।' प्रथम पाँच छंदों में कवि ने अपनी प्रेयसी की शैशवावस्था का चित्र अंकित किया है, शेष पंक्तियों में उसकी यौवनास्था की मधुर तस्वीर खींची गई हैं। यह आधुनिक भारतीय साहित्य की अमर कविता है। नारी के भावात्मक रूप-सौन्दर्य की इतनी मूर्त कल्पना कम ही कवि कर पाते हैं। पंत को इसमें आशातीन सफलता मिली है। "निराला" जी ने अपनी पुस्तक 'प्रबन्ध-पद्य' में इस कविता की आलोचना करते हुये लिखा है कि "पंत जी नारी-सौन्दर्य के दिव्यभाव पर सफल नहीं हो सके। उनकी ऐसी अनेक पंक्तियाँ हैं, जिनमें दिव्य-भाव की जगह बहुत साधारण भाव मिलते हैं।" इसके विपरीत, कवि ने इस कविता में यह स्पष्ट कर दिया है कि उनकी प्रेयसी उनके मानस-लोक की सृष्टि है। कवि को यह विश्वास नहीं होता कि उनकी भावीपत्नी केवल कल्पना मात्र है अथवा उसका कहीं परिमेय अस्तित्व भी हैं—'कल्पना हो, जाने, परिप्राण !' ऐसी हालत में उनकी पत्नी के दिव्यादिव्य का प्रश्न ही नहीं उठता ! इस कविता के बारे में प्रो० शिवनन्दन प्रसाद लिखते हैं—"इस कविता में पूर्ववर्ती कविताओं के समान दार्शनिक चिन्तन नहीं हैं। इसमें कवि विशुद्ध भावनाओं के धरातल पर कल्पना के सहारे यानी पत्नी का भावमय रूप चित्रित करता

है। इसमें रूपक, उपमा, आदि के अन्तर्गत प्राकृतिक उपमानों के सहारे नारी-रूप के भावात्मक तत्वों (लज्जा, कोमलता, क्रीड़ा, मुग्धता आदि) की सहज व्याख्या की गई है।"

स्वर्गीय विधान—पत्नी का रूप-विधान किसी अलौकिक शक्ति द्वारा हुआ है, वह अनिंद्य सुन्दरी है; **नवल कलिकाओं की-सी वाणा**—माधवी प्रभात की कलियों के समान जिसका शरीर अर्द्ध-विकसित होगा; **जनन-अंचल में भूल सकाल**—बचपन में वह अतुल सुन्दरी माँ के आँचल में पल कर बड़ी हुई, उसके स्निग्ध-प्रेम द्वारा उसका सिंचन हुआ; **मृदुल उर-कपन सी वयुमान**—उसके हृदय-कम्पन की तरह नन्हा-सा होगा; **स्नेह-सुख में बढ़ि**—अपनी माँ के स्नेह में बड़ी हुई; **दीप की अकलुष-शिखा-समान**—वह निष्कलुष दीप शिखा के समान पवित्र, और सुन्दर होगी।

पाँचवाँ अवतरण—उसकी प्रेयसी के व्यक्तित्व में केवल कलियाँ और भ्रमरों से अलंकृत बसन्त ही नहीं है, बल्कि सुख-सौन्दर्य और सुरभि का सार भी है, मधुर भावनाओं का उद्रेक ही नहीं बल्कि समस्त विश्व की सुषमा का कोष उसकी स्मृति में शरत् कालीन निर्मल आकाश के दर्शन जैसा उल्लास कवि को अनुभूत होता है।

छठा अवतरण—"प्रकृति ने अपनी सुन्दरता मानो उसी से उधार ली हो। कोमल किसलय उसके लाल अधरों की मुसकान में प्रभात कालीन आह्लाद की व्यंजना है और उसके सहज श्रम-सीकर हिमकणों के तुल्य हैं। इन्द्र-धनुष के रंग वाले वस्त्र से ढँका उसका शरीर वर्षा कालीन नवीन विद्युत् के समान सुन्दर है और उसकी सुन्दरता के अनुमान मात्र से, उस अर्द्धविकसित अंगों के स्मरण-मात्र से वसन्त-सुषमा का अनुभव होने लगता है।" (प्रो० शि० न० प्र०)

७वाँ अवतरण—"यद्यपि यह उसका शैशव काल होगा, फिर भी

विस्मित मुग्ध यौवन झाँकने की चेष्टा में होगा। यहाँ पर सौन्दर्य और कोमलता को घोषित करने के लिये दो साम्यों की योजना की गई है। एक उपमान मृदुल लहरियों के झील में उठता हुआ अरुण सरोज है और दूसरा कवि के हृदय में प्रेम-गीत की शनैः-शनैः उद्भावना है। यौवन का विकास कमल की क्रमशः बढ़ती हुई शोभा और कवि-हृदय में धीरे-धीरे उठते हुये प्रेम के गीत के समान है।" (प्रो० शि० न० प्र०)

१०वाँ अवतरण—इसमें कवि ने सुहाग की मधुरात्रि में प्रियतम के पास जाती हुई पत्नी का चित्र अंकित किया गया है, जो भावात्मक नहीं, बिलकुल स्वाभाविक और सरस है। इन पंक्तियों ने निराला जी ने रवि बाबू की 'उर्वशी' की छाया देखी है और उन्होंने कहा है कि 'पंत चौर-कला में निपुण हैं।' उसका प्रत्येक शब्द सजीव चित्र की तरह जड़ दिया गया है। 'जड़ित पद, नमित पलक दृग-पात' में ठिठकी हुई म्लान मुखी लज्जावती नारी का कितना स्वाभाविक रूप चित्रित किया गया है। प्रथम-मिलन में नारी का मन प्रकंपित, शरीर रोमांचित, लाज से उसके पाँव पृथ्वी में जम जाते हैं, आँखें झुकी होती हैं। इस अवसर पर नारी-कोमलता, लज्जा, और उसका अलौकिक सौन्दर्य दार्शनीय होता है।—(अपूर्ण)

———

परिशिष्ट २

'गुञ्जन' के कुछ महत्वपूर्ण अवतरण

[१]

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रति पल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधु-विधुर मन। (पृ० ११)

[२]

तेरी मधुर-मुक्ति ही बन्धन,
गन्ध हीन तू गन्ध-युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन।
मूर्तिमान बन, निर्धन !
गल रे गल निष्ठुर-मन ! (पृ० ११)

[३]

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता ;
जल जल है, लहर लहर रे,
गति गति; सृति सृति चिर-भरिता। (पृ० १४)

[४]

सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय ;

मेरे क्षण-क्षण के लघु-कण,
जीवन-लय से हों मधुमय। (पृ० १४)

[५]

सुख-दुख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरण;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि में ओझल हो घन। (पृ० १६)

[६]

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास—अश्रुमय आनन,
रे इस मानव—जीवन का!

[७]

देखूँ सब की उर की डाली—
किसके रे क्या-क्या चुने फूल,
जग के छबि-उपवन से अकूल!
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल। (पृ० १७)

[८]

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़—बूड़ रे भाविक! (पृ० १८)

[९]

कँप-कँप हिलोर रह जाती
रे, मिलता नहीं किनारा,

बुद् बुद् विलीन हो चुपके,
पा जाता आशय सारा। (पृ० ३१)

[१०]

अपने मधु में लिपटा कर
कर सकता मधुप. न गुञ्जन,
करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन—कम्पन। (पृ० २०)

[११]

विश्वास चाहता है मन,
विश्वास पूर्ण जीवन पर;
सुख-दुख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन-सागर! (पृ० २०)

[१२]

अस्थिर है जग का सुख-दुख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन!
सुख-दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन! (पृ० २०)

[१३]

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि, ने मुसकाना (पृ० २२)

[१४]

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली। (पृ० २२)

[१५]

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने-सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणों का धन। (पृ० २२)

[१६]

इच्छा है जग का जीवन,
पर साधन आत्मा का धन,
जीवन की इच्छा है धन,
इच्छा का जीवन जीवन। (पृ० २४)

[१७]

ये आधी अति इच्छाएँ
साधन में बाधा-बन्धन;
साधन भी इच्छा ही है,
सम—इच्छा ही रे साधन। (पृ० २४)

[१८]

सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यों सहज-सहज साँसों से
चलता उर का मृदु-स्पन्दन। (पृ० २८)

[१९]

महिमा के विशद-जलधि में
हैं छोटे-छोटे-से कण,
अणु से विकसित जग-जीवन,
लघु अणु का गुरुतम साधन। (पृ० २८)

[२०]

जीवन के नियम सरल हैं,
पर है चिर-गूढ़ सरलपन,
है सहज मुक्ति का मधु-क्षण,
पर कठिन मुक्ति का बन्धन! (पृ० २८)

[२१]

सुन्दर से नित सुन्दर तर,
सुन्दर तर से सुन्दर तम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन! (पृ० २९)

[२२]

हँस-मुख प्रसून सिखलाते
पल भर है, जो हँस पाओ,
अपने उर की सौरभ से
जग का आँगन भर जाओ। (पृ० ३१)

[२३]

मेरे मन के मधुवन में
सुखमा के शिशु! मुसकाओ,
नव-नव साँसों का सौरभ
नव मुख का सुख बरसाओ। (पृ० ३६)

[२४]

है लेन-देन ही जग-जीवन,
अपनापर सब का अपनापन,
खो निज आत्मा का अक्षय-धन (पृ० ३८)

[२५]

अरुण-अधरों की पल्लव प्राप्त
मोतियों-सा हिलता-हिम-हास ।
इन्द्र धनुषी-पट से ढँक गात
बाल-विद्युत का पावस-लास;
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले-अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छबि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्रश्न ! (पृ० ४२)

[२६]

खोल सौरभ का मृदु कच-जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग-बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद;
चूम लघु-पद-चंचलता, प्राण !
फूटते होंगे नव जल-स्रोत
मुकुल बनती होगी मुसकान
प्रिय, प्राणों की प्राण ! (पृ० ४३)

[२७]

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु-उर पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक दृग-पात;

पास जब आ न सकोगी, प्राण !
मधुरता में-सी भरी अजान;
लाज की छुई-सी म्लान
प्रिय, प्राणों की प्राण ! (पृ० ४३)

[२८]

सुनता हूँ, इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली। (पृ० ७१)

[२९]

आयेगी मेरे पुलियों पर
वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर। (पृ० ७१)

[३०]

खोल कलियों ने उर का द्वार
दे दिया उसको छवि का देश;
बजा भौंरों ने मधु के तार
कह दिया भेद भरे सन्देश; (पृ० ७२)

[३१]

दूर, उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील झङ्कार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार
स्वर्ग की परियों का संसार;

वहीं, उन पेड़ों के अज्ञात
चाँद का है चाँदी का वास,
वहीं से खद्योतों के साथ
स्वप्न आते उड़-उड़ कर पास।
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान
मिला कवि को निज गान। (पृ० ७४)

[३२]

नित्य-कर्म-पथ पर तत्पर,
निर्मल कर अन्तर,
पर-सेवा का मृदु-पराग भर
मेर मधु-संचय में। (पृ० ८०)

[३३]

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।
खग-कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म, क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
संध्य-प्रशान्ति को कर गंभीर। (पृ० ८४)

[३४]

दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल-इच्छा से निर्धन!

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बन्धन-विवेक !
चिर आकांक्षा से ही थर् थर्, उद्वेलित रे अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर। (पृ० ८५)

[३५]

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनी
मृदु-करतल पर शशि-मुखधर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि। (पृ० ८७)

[३६]

निखिल-कल्पनामयि अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ, अलौकि, अमर, अगोचर
भावों की आधार !
गूढ़, निरर्थ असम्भव, अस्फुट
भेदों की शृंगार !
मोहिनी, कुहुकिनि, छल-विभ्रममयि,
चित्र-विचित्र अपार। (पृ० ९२)

[३७]

प्रति युग में आती हो रंगिणि !
रच-रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर मुनि-ईप्सित-अप्सरि !
त्रिभुवन भर में लीन।

अंग-अंग अभिनव शोभा का !
नव वसन्त सुकुमार,
भृकुटि-भंग नव नव इच्छा के
भृंगों का गुंजार। (पृ० ९९)

[३८]

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव, भू-तल !
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
बैठी हैं श्रान्त, कलात, निश्चल
तापस-बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु-करतल
लहरें उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी-विभा भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर। (पृ० १०१)

[३९]

हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन - नौका - विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान। (पृ० १०४)

[४०]

बंधु ! गीतों के पंख पसार
प्राण मेरे स्वर में लयमान,
हो गये तुमसे एकाकार
प्राण में तुम औ' तुममें प्राण। (पृ० १०८)

हिन्दी छायावाद के चार प्रहरीः सांकेतिक तुलना

पन्त	प्रसाद	निराला	महादेवी
सुकुमार	सरस	कठोर	करुण
सूर	तुलसी	केशव	मीरा
भाषा	भाव	छन्द	गीति
समन्वयी	द्रष्टा	विप्लवी	विरागिणी
स्वप्नाविष्ट	गतिधीर	गतिशील	गतिहीन
चित्रभाषावाद	प्रतीकवाद	प्रकृतिवाद	रहस्यवाद
कल्पना-तरंग	उदात्तचिन्तन	सावेश-चिन्तन	सूक्ष्म कल्पना
शृंगार (सौंदर्य)	शान्त (वासना)	वीर (अतृप्ति)	करुण (वेदना)
अवसाद	विषाद	उत्साह	नैराश्य
सरल	सज्जन	हितवादी	गंभीर
मधुर	प्रसाद	ओज	माधुर्य
आधुनिक(संस्कृति)	पुरातन	मध्य युगीन	उत्तर प्राचीन
चित्र मत्ता	व्यंजना	व्यंग्य	मार्मिकता
शब्द-शिल्पी	भाव व्यंजक	नाद-शिल्पी	चित्रकार
सुखैषी	गृहस्थ	परमहंस	दुखिनी
युग के साथी	पथ-प्रदर्शक	प्रतिनिधि	छाया
चंचल (शैली)	संयत	निर्बन्ध	बोझिल

'गुंजन:' कुछ प्रश्न

१. "पंत के कवित्व की प्रगति-रेखा चाहे टीढ़ी मेढ़ी हो, पर विचार का विकास सीधा और स्पष्ट है।" (डा० नगेन्द्र)—पंत की रचनाओं को ध्यान में रखकर इस कथन के सत्यासत्क की परीक्षा कीजिये।

२. "हिन्दी साहित्य में पंत एक नई धारा की कविता के युग-प्रवर्त्तक कवि हैं।" इसकी समीक्षा कीजिये।

३. "नये और पुराने कवियों में पंत ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने जीवन-काल में दो युगों के साहित्य का पथ-प्रदर्शन किया।" इस कथन को प्रमाणित कीजिये।

४. छायावादी कवियों में पंत का स्थान निरूपित कीजिये। (पटना यूनि० १९४९)

५. "काव्य-रचना के लिये जीवन में अनुकूल परिस्थिति तो चाहिये ही, अवस्था-भेद का भी प्रभाव उस पर पड़ता है।" ('सुधांशु') इसके आधार पर 'गुंजन' की काव्य-रचना की प्रेरक शक्तियों का उल्लेख कीजिये।

६. 'गुंजन' की रचना करने में कवि को किन-किन स्रोतों से प्रेरणाएँ मिली हैं ? तर्कसंगत उत्तर दीजिये।

७. "गुंजन' में पहली बार पन्त के स्वस्थ्य दार्शनिक विचारों की क्रमबद्धता देखने को मिली।" इस कथन की समीक्षा कीजिये

८. "सच्चे अर्थ में पन्त न तो दार्शनिक हैं और न आध्यात्मिक, वरन् मानव-हित-चिन्तक मात्र हैं।" 'गुंजन' के आधार पर इस कथन के सत्यासक्त की परीक्षा कीजिये।

९. "गुंजन' में महादेवी की सी आध्यात्मिक दार्शनिकता तो नहीं है किन्तु एक भौतिक दार्शनिकता अवश्य है।" (श्री शांतिप्रिय द्विवेदी) इसकी आलोचना कीजिये।

१०. "पन्त के 'गुंजन' की दार्शनिकता का आधार गाँधीवाद है।" इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिये।

११. "'गुंजन' में मैं अपने को 'सुन्दरम्' से 'शिवम्' की भूमि पर पदार्पण करते हुये पाता हूँ!" पंत के इस कथन पर प्रकाश डालिये।

१२. 'गुंजन' में जीवन के प्रति कवि के जो दृष्टिकोण हैं, उन्हें स्पष्ट कीजिये। (पटना यू० १९४८ S)

१३. 'गुंजन' का कवि केवल कल्पना-जगत् का ही प्राणी नहीं है, वरन् सुख-दुःख के बीच संचरण करने वाला व्यक्ति है।" इस कथन की परीक्षा कीजिये। (पटना यू० १९४८ H)

१४. 'गुञ्जन' में पन्त ने अपने जीवन-दर्शन को किस रूप में व्यक्त किया है, समझाइये। (पटना यू० १९४९ S)

१५. "गुंजन" का जीवन-दर्शन अंधकार में पड़े मानव को बाहर निकाल कर प्रकाश के लोक में ले जाने की पर्याप्त सामर्थ रखता है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

१७. "संसार अपने मन के भीतर से ही सुखी और सुन्दर बनेगा, बाहर से नहीं—यही 'गुंजन' का अमर और आदर्श संदेश है।"—इस उक्ति के आधार पर पन्त के आदर्शवाद पर प्रकाश डालिये।

१८. 'गुंजन' पन्त की काव्य-साधना का वह संगम-स्थल है जहाँ उनकी विविध विरोधी प्रवृत्तियाँ एक साथ मिल गयी हैं।" इस कथन की आलोचना कीजिये।

१९. "पन्त जी सुन्दरम् के ही कवि हैं—यद्यपि उनका सुन्दरम्, शिवम् और सत्यम् से शून्य नहीं है।" (डॉ० नगेन्द्र) इस कथन के आलोक में पन्त के सौन्दर्य-चिन्तन पर प्रकाश डालिये।

२०. "'पलायन' और 'प्रगति' छायावादी-काव्य की एक भारी

असंगति है जिसका स्पष्ट निदर्शन 'गुंजन' है।" इस कथन के सत्य पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

२१. "'गुंजन' छायावाद-काव्य की समस्त विभूतियों से विभू है।" इसकी आलोचना कीजिये।

२२. "'गुंजन' में कुतूहल और विस्मय के आधार पर पन्त प्रकृति का खूब शृंगार किया है।" इस कथन की मीमांसा कीजिये।

२३. "'गुंजन' में पन्त प्रकृति-प्रेमी उतनी नहीं हैं, जितना वे सौन्दर्य-प्रेमी हैं।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

२४. "काव्यानुभूति की मृदुल-मधुर अभिव्यंजना पंत की सबसे बड़ी विशेषता है।"—क्या आप भी ऐसा ही समझते हैं? (पटना २ १९४९ A)

२५. "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।" पंत की कविता-परिभाषा 'गुंजन' पर कहाँ तक लागू होती है?

२६. "पंत चिन्तक भी हैं और एक कुशल कलाकार भी।" 'गुंज के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिये।

२७—"'गुंजन' के कवि पन्त ने वर्तमान हिन्दीकविता-कला अभिव्यंजना-शैली का बिलकुल नया रूप दिया है—नये छंद, आभरण, नये रस-विधान, नये गीतितत्व—सब कुछ नये हैं।" कथन का विश्लेषण कीजिये।

२८—'गुंजन' के गीतों में वे समस्त विशेषताएँ हैं जिसकी प्र मुक्तक में अपेक्षा रहती है।" प्रो० शिवनन्दन प्रसाद के इस कथन आप कहाँ तक सहमत हैं?

२९—'गुंजन' में उच्चकोटि के गीतों का अभाव ही है।" कथन के सत्यासत्य पर अपना अभिमत दीजिये।

३०—"पंत की काव्य-कला की सबसे बड़ी शक्ति चित्रण की शक्ति है।" 'गुंजन' के गीतों से उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिये।

३१—"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है—विश्व की हृत्तंत्री की झंकार है।" पंत के ये शब्द 'गुंजन' की भाषा कहाँ तक लागू होते हैं? सिद्ध कीजिये।

३२—"आधुनिक हिन्दी काव्य-भाषा के क्षेत्र में पंत क्रांति के गायक हैं।" 'गुंजन' के आधार पर इस कथन पर प्रकाश डालिये।

———